पूज्य-गुरु

महामहोपाध्याय

श्री डा० गङ्गानाथ झा,

एम्० ए०, डी० लिट्०, एलेल्० डी०

वाइस-चैंसलर

प्रयाग-विश्वविद्यालय

के

कर कमलों में

उनके प्रिय शिष्य

ग्रन्थकार

द्वारा

भक्तिपूर्वक समर्पित ।

PREFACE

Several Grammars of Sanskrit written in English have been in use in Northern India at our Schools and Colleges With the adoption of the vernaculars, however, as the media of instruction and examination, there was felt a necessity of a standard Sanskrit Grammar in Hindi The present work is primarily intended to supply this need

It is impossible to say anything original in Sanskrit grammar But there may be some originality with respect to the treatment of the subject-matter. An effort has been made in this work to compare the Sanskrit usage with that of Hindi and thus to impress the student with the points of difference This *comparative* method, I hope, will eliminate Hindism from Sanskrit composition which a teacher so often notices in students' exercises An endeavour has also been made to explain the technical terms of Sanskrit Grammar. The following are some of the other points which have been kept in view

The *sūtras* have been quoted in the footnotes throughout in order to enable the students to have the whole

idea in a concise form The names of suffixes, etc, as used by Panini, have been retained in their original form e. g, *lyap* has been written as such and not as *ya* This was felt necessary since the student feels confounded to find and to use the technical terms in higher classes when his training in the lower classes was different

Copious examples have been adduced to elucidate the rules particularly in *sandhi*, declension and conjugation. The numerals have been treated in great detail since it is noticed that the students even in the University classes commit mistakes in them The treatment of the use of cases is full and the *sūtras* in this case have been given as head lines rather than as footnotes since they are the only sure guide for the student to understand the complicated system of case-use The *samāsa*, *taddhita* and *kṛdanta* have been explained almost exhaustively Considerable attention has been paid to treat the verb in all its aspects and it has, therefore, taken up about one-third of the book Small but informing chapters on gender and indeclinables have been added and will, it is hoped, be found useful

Of the three appendices the first gives a very brief account of the Sanskrit grammarians, the second treats

of prosody and the third gives the transliteration alphabet

No effort has thus been spared to make the book as useful as possible The fulness of the treatment together with the choice of the type and spacings has increased the bulk of the book which I hope will not be grudged.

The subject-matter has been put into two grades—one for the lower classes being in bolder type than the other which is for the higher classes

In preparing this book I have freely consulted the existing grammars of Sanskrit, particularly Kale's Higher Sanskrit Grammar. My best thanks are, therefore, due to their writers My pupil, Pt Ram Krishna Shukla, M. A, Head Pandit, C A-V High School, has kindly collaborated with me all through in the preparation of this book and has also looked through the proofs But for his enthusiasm, industry and disinterested work it would not have been possible to bring out the work this year

I tender my most respectful thanks to my revered teacher, Mahámahopadhyáya Dr Ganganatha Jha for his kind permission to dedicate the book to him

It is trusted that the work will prove useful Any suggestions for its improvement will be thankfully accepted.

BABURAM SAKSENA

" यद्यपि बहु नाधीषे पठ पुत्र तथापि व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो माभूत्सकलः शकलः सकृच्छकृत् ॥"

विषय-सूची

प्रथम सोपान

वर्ण-विचार

द्वितीय सोपान

सन्धि विचार

स्वरसन्धि

तृतीय सोपान

संज्ञा-विचार

स्वरान्त संज्ञाएँ

चतुर्थ सोपान

सर्वनाम-विचार

पञ्चम सोपान

विशेषण-विचार

षष्ठ सोपान

कारक-विचार

सप्तम सोपान

समास-विचार

अष्टम सोपान

तद्धित-विचार

नवम सोपान

क्रिया—विचार

दशम सोपान

क्रिया—विचार (उत्तरार्ध)

एकादश सोपान

कृदन्त—विचार

द्वादश सोपान

लिङ्ग—विचार

स्त्रीप्रत्यय

त्रयोदश सोपान

अव्यय—विचार

परिशेष

संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

प्रथम सोपान

वर्ण विचार

१–'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—संस्कार की हुई, परि-
त, शुद्ध वस्तु। सम्प्रति 'संस्कृत' शब्द से आर्यों की साहि-
भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य
तो की बोली थी और इस के ही द्वारा चिरकाल तक आर्य-
नो का परस्पर व्यवहार होता था। जन साधारण की भाषा
ाम 'प्राकृत' था। संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषतः आज
; क्योंकि आर्य सभ्यता के द्योतक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं
इसी के ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

२–'व्याकरण' का अर्थ है—किसी वस्तु के टुकड़े टुकड़े
के उसका ठीक स्वरूप दिखाना। यह शब्द 'भाषा' के सम्बन्ध
ी अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा
क्यों का समूह है। वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे। बड़े वाक्य

बहुधा छोटे २ वाक्यों के सुसम्बद्ध समूह होते हैं। वस्तुतः वाक्य ही भाषा का आधार है। वाक्य शब्दों का समूह होता है। प्रत्येक शब्द में कई वर्ण होते हैं जिनको अक्षर भी कहते हैं। 'अक्षर' शब्द का अर्थ है अविनाशी—जिसका कभी नाश न हो। वर्ण को यह नाम इसलिए दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक नाद (sound) अविनश्वर है। यदि किसी शब्द का उच्चारण करें तो उसके अक्षर उच्चारण काल में 'नाद' कहलावेंगे और उस दशा में शब्द नादों का समूह होगा। सृष्टि में इन नादों का भण्डार अनन्त है। प्रत्येक भाषा एक परिमित संख्या में ही नादों का प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, चीनी भाषा में बहुत से ऐसे नाद हैं जो संस्कृत भाषा में नहीं, संस्कृत में कई ऐसे हैं जो फारसी, अँगरेज़ी आदि में नहीं।

३—संस्कृत भाषा में—जिन अक्षरों का उपयोग होता है वे ये हैं :—

अ[1] इ उ ऋ ऌ	—ह्रस्व (सादे)	स्वर
ए ऐ ओ औ	—मिश्रविकृत दीर्घ Compound	
आ ई ऊ ॠ	—दीर्घ (सादे)	
क ख ग घ ङ	—कवर्ग (कु)	
च छ ज झ ञ	—चवर्ग (चु)	
ट ठ ड ढ ण	—टवर्ग (टु)	

---

[1] पाणिनि ने इन्हीं अक्षरों को इस क्रम में गोंथा है :—

त	थ	द	ध	न	—तवर्ग (तु)
प	फ	ब	भ	म	—पवर्ग (पु)
य	र	ल	व		—अन्तःस्थ
श	ष	स	ह		—ऊष्म वर्ण
				ं	—अनुस्वार
				ँ	—अनुनासिक
				:	—विसर्ग

अइउण्[१], ऋलृक्[२], एओङ्[३], ऐऔच्[४];

हयवरट्[५], लण्[६];

ञमङणनम्[७];

झभञ्[८], घढधष्[९], जबगडदश्[१०], खफछठथचटतव्[११], कपय्[१२];

शषसर्[१३], हल्[१४]।

यही चौदह सूत्र माहेश्वर कहलाते हैं, यतः पाणिनि को महेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए थे। ऐसा सम्प्रदाय है। इनको प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं; क्योंकि इनके द्वारा सरलता से और सूक्ष्म रीति से सब अक्षरों का बोध हो जाता है। ऊपर के जो अक्षर हल् हैं वे इत् कहलाते हैं, जैसे ण्, क् आदि। इनके द्वारा प्रत्याहार बनते हैं। कोई वर्ण लेकर उसके साथ यदि इत् जोड़ दें तो उस अक्षर के और उस इत् के बीच के सभी वर्णों का (बीच में पड़ने वाले इतों को छोड़कर) बोध होता है, यथा अक् से अ इ उ ऋ लृ का, शल् से श ष स ह का।

'स्वर' का अर्थ है, ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके, उसको दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। ऐसे वर्ण जो विना किसी दूसरे वर्ण (अर्थात् स्वर) से मिले हुए उच्चारण नहीं किये जा सकते 'व्यञ्जन' कहलाते हैं। ऊपर क से लेकर ह तक के सारे वर्ण व्यञ्जन हैं। क में अ मिला हुआ है, इसका शुद्ध रूप केवल क् होगा। स्वरो का दूसरा नाम "अच्" भी है, यतः पाणिनि के क्रमानुसार स्वरवाची प्रत्याहार सूत्र सब इसके अन्तर्गत आजाते हैं (प्रथम सूत्र का प्रथम अक्षर अ और चतुर्थ सूत्र का अन्तिम अक्षर च्)। इसी प्रकार व्यञ्जन का दूसरा नाम "हल्" भी है, क्योकि व्यञ्जनवाची प्रत्याहार सूत्र सब (८ से १४ तक) इसके अन्तर्गत आजाते है। इसी कारण व्यञ्जन सूचक चिह्न (्) को भी हल् कहते हैं।

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ और मिश्रविकृत दीर्घ। मिश्रविकृत दीर्घ किन्हीं दो भिन्न स्वरो के मिश्रण विशेष से बनता है; जैसे अ+इ=ए। स्वर के उच्चारण में यदि एक मात्रा समय लगे तो वह ह्रस्व, जैसे अ, और यदि दो मात्रा समय लगे तो दीर्घ कहलाता है, जैसे आ। मिश्रविकृत स्वर दीर्घ होते है।

यदि तीन मात्रा समय लगे तो प्लुत कहलाता है, इस प्रकार के स्वर का प्रयोग प्राय: पुकारने में होता है, यथा राम ३।

सभी स्वर फिर दो प्रकार के होते है। एक अनुनासिक जिन नासिका से भी उच्चारण में कुछ सहायता ली जाती है, यथा अँ, ?

ऐं, ऐं आदि और दूसरे सारे अर्थात् अननुनासिक यथा अ, आ, ए, ऐ आदि।

व्यजनों के भी कई भेद हैं—क से लेकर म तक के "स्पर्श" कहलाते हैं। इनमें कवर्ग आदि पाँच वर्ग है। य र ल व "अंतःस्थ" हैं, अर्थात् स्वर और व्यञ्जन के बीच के है। श ष स ह "ऊष्म" हैं, अर्थात् इनका उच्चारण करने के लिए भीतर से ज़रा अधिक ज़ोर से श्वास लानी पड़ती है। पाँचो वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ) तथा ऊष्म वर्णों को "परुष व्यञ्जन" और शेष को "मृदुव्यञ्जन" भी कहते है।

विसर्ग को वस्तुतः एक छोटा ह समझना चाहिए। यह सदा किसी स्वर के अन्त में आता है। यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है, किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका व्यक्तित्व अलग है।

क् और ख् के पूर्व कभी २ एक अर्धविसर्ग सा उच्चारण के प्रयोग में आता है उसे ⌣ इस चिह्न द्वारा व्यक्त करते हैं और उसकी संज्ञा जिह्वामूलीय बताते है। इसी प्रकार से प् और फ् के पूर्व वाले नाद को उपध्मानीय कहते हैं और उसी (⌣) चिह्न से व्यक्त करते हैं।

अनुस्वार यदि पञ्चवर्गीय अक्षरो के पूर्व आवे तो उसका उच्चारण उस वर्ग के पञ्चम अक्षर सा होता है, यदि अन्यत्र आवे

तो एक विभिन्न ही उच्चारण होता है, इस कारण इसका व्यक्तित्व भी अलग है।

व्यंजनों का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण में भी किया जाता है। जिनके उच्चारण मे कम साँस की आवश्यकता होती है वे अल्पप्राण, और जिनमें अधिक की वे महाप्राण होते हैं। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण तथा अन्तःस्थ अल्पप्राण हैं और शेष—अर्थात् वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ तथा श, ष, स, ह महाप्राण है।

४—उच्चारण करने का उपाय यह है कि अन्दर से आती हुई श्वास को स्वच्छन्दता से न निकाल कर उसे मुख के अवयव विशेषो से तथा नासिका से विकृत करके निकाला जाय। यह विकार उत्पन्न करने में मुख के भाग तथा नासिका प्रयोग में आते है। विकार के कारण ही नादों में भेद पड़ जाता है। जिन जिन अवयवों से विकार उत्पन्न किया जाता है उनको उन नादों का स्थान कहते है।

हमारे वर्णों के स्थान इस प्रकार है।

अ	आ	विसर्ग	क	ख	ग	घ	ङ	ह	—कण्ठ
इ	ई	य	च	छ	ज	झ	ञ	श	—तालु
ऋ	ॠ	र	ट	ठ	ड	ढ	ण	ष	—मूर्धा
लृ		ल	त	थ	द	ध	न	स	—दाँत
उ	ऊ	उपध्मानीय	प	फ	ब	भ	म		—ओंठ

ञ, म, ङ, ण, न—इनके उच्चारण में नासिका की भी सहायता आवश्यक है, इस प्रकार ञ् के उच्चारण स्थान मिलकर तालु और नासिका दोनो हैं, ङ के कण्ठ और नासिका —इत्यादि।

ए और ऐ—कण्ठ और तालु
ओ और औ—कण्ठ और ओठ
व —दाँत और ओठ
जिह्वामूलीय —का जिह्वा की जड़
अनुस्वार —का स्थान नासिका है।

एक ही स्थान से निकलनेवाले वर्ण "सवर्ण" कहलाते हैं। भिन्न स्थानो से उच्चारण किये हुए वर्ण परस्पर असवर्ण कहलाते है।

ऊपर वर्णों के उच्चारण के स्थान संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार दिये गये है। आज कल इनके उच्चारण में किसी किसी वर्ण में भेद पड़ गया है, यथा ऋ का उच्चारण हम लोग शुद्ध नहीं करते। कोई रि करते हैं कोई रु। ष का उच्चारण मूर्धा (तालु के सब से ऊपर के भाग) से होना

अकुहविसर्जनीयाना कण्ठः।
इचुयशाना तालु।
ऋटुरषाणां मूर्धा।
लृतुलसाना दन्ताः।
उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ।
ञमङणनानां नासिका च।

एदैतोः कण्ठतालु।
ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।
वकारस्य दन्तोष्ठम्।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
नासिकानुस्वारस्य।

चाहिए किन्तु बहुधा लोग इसे श् की तरह बोलते हैं और कोई २ स की तरह। लृ का उच्चारण तो साहित्यिक संस्कृत के समय में ही लुप्तप्राय होगया था।

वर्णमालाओं में ह के उपरान्त बहुधा क्ष, त्र, ज्ञ देने की रीति है, किन्तु ये शुद्ध वर्ण नहीं हैं—दो वर्णों के मेल हैं।

क्ष = क् + ष, त्र = त् + र, ज्ञ = ज् + ञ। इसकारण इनको वर्णमाला में सम्मिलित करना भूल है।

द्वितीय सोपान

सन्धि विचार

५—ऊपर कहा जाचुका है कि प्रत्येक वाक्य में कई शब्द रहते हैं। संस्कृत के शब्द किसी भी स्वर अथवा व्यञ्जन से आरम्भ होकर, किसी स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार अथवा विसर्ग में अन्त हो सकते हैं।

दो शब्द जब पास पास आते हैं तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण में अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण में अथवा दोनों में कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ

हिन्दी भाषा को लें। जब हम संभाल २ कर बोलते हैं तब तो कहते हैं—चोर् ले गया, मार् डाला, पहुँच् जाऊँगा। किन्तु इन्हीं वाक्यो को यदि बहुत जल्दी मे बोलें तो उच्चारण इस प्रकार होगा—चोल् ले गया, माड् डाला, पहुँज् जाऊगा। इसी प्रकार जितनी बोल चाल को भाषाएँ है उनमें परिवर्त्तन होता है। साधारण वक्ता इस परिवर्त्तन को नहीं जान पाता, किन्तु यदि हम ध्यान पूर्वक अपनी अथवा दूसरे को बोलो को सुनें तो हमें इस कथन के सत्य का निश्चय हो जायगा। संस्कृत भाषा मे इस प्रकार के परिवर्त्तन को 'सन्धि' कहते हे। सन्धि का साधारण अर्थ है "मेल"। दो शब्दो के निकट आने से जो मेल उत्पन्न होता है उसे इसी लिए सन्धि कहते हैं। सन्धि के लिए दोनो शब्द एक दूसरे के पास २ सटे हुए होने चाहिए, दूरवर्त्ती शब्दो में सन्धि नहीं हो सकती। इस लिए संस्कृत भाषा में सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दो में निकटता की घनिष्ठता हो उनमें सन्धि अवश्य हो, जहाँ निकटता घनिष्ठ न हो वहाँ सन्धि करना न करना बोलनेवाले की इच्छा पर निर्भर है। नियम है:—

[१] एकपद के भिन्न भिन्न अवयवो में, धातु और उपसर्ग में और समास में सन्धि अवश्य होनी चाहिए, वाक्य के अलग २ शब्दों के

---

१ संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

बीच में सन्धि करना न करना बोलनेवाले की इच्छा पर है।
उदाहरणार्थ—

एक पद—पौ+अकः = पावकः।

उपसर्ग और धातु—नि+अपठत् = न्यपठत्, उत्+अलोकयत् = उद्लोकयत्।

समास—कृष्ण+अस्त्रम् = कृष्णास्त्रम्, श्री+ईशः = श्रीशः।

वाक्य—रामः गच्छति वनम्, अथवा रामो गच्छति वनम्।

६ सन्धि के कारण नीचे लिखे परिवर्त्तन उपस्थित हो सकते हैः—

(१) लोप—प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का (यथा रामः आयाति = राम आयाति), अथवा द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का (यथा दोपः+अस्ति = दोपोऽस्ति)।

(२) दोनों के स्थान में कोई नया वर्ण (यथा, रमा+ईशः =

वाक्य में जो विवक्षा दी गई है, इसको भी अच्छी शैली के लेखक उचित नहीं समझते हैं और विवक्षा रहते हुए भी सन्धि करते ही हैं। पद्य में तो यदि सन्धि का अवकाश हो और न की जावे तो उसे विसन्धि दोष कहते हैं—

न संहितां विवक्षामीत्यसन्धानं पदेषु यत्तद्विसन्धीति निर्दिष्टम् (काव्यादर्श)

रमेशः =), अथवा दो में से किसी एक के स्थान में नया वर्ण (यथा, नि+अवसत् = न्यवसत्, कस्मिन्+चित् = कस्मिंश्चित्)।

(३) दो मे से एक का द्वित्व (यथा, एकस्मिन्+अवसरे = एकस्मिन्नवसरे)

ऊपर बताया जा चुका है कि कोई भी अक्षर विसर्ग से आरम्भ नहीं हो सकता। शब्दों की निकटता इस लिए नीचे लिखे प्रकारों की होगीः—

(१) जहाँ प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण तथा द्वितीय का प्रथम वर्ण दोनों स्वर हों।

(२) जहाँ दो मे से एक स्वर हो एक व्यञ्जन।

(३) जहाँ दोनों व्यञ्जन हो।

(४) जहाँ प्रथम का अन्तिम विसर्ग हो और द्वितीय का प्रथम स्वर अथवा व्यञ्जन।

इनमें से (१) को स्वर-सन्धि, (२) और (३) को व्यञ्जन सन्धि और (४) को विसर्ग-सन्धि कहते है।

स्वर-सन्धि

७—यदि साधारण[1] ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर के अनन्तर सवर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवे तो दोनों के स्थान में सवर्ण दीर्घ स्वर होता है, यथाः—

दैत्य + अरिः = दैत्यारिः ।

यहाँ पर "य" के "अकार" के पश्चात् "अरिः" का ह्रस्व "अकार" आता है, इस लिए उपर्युक्त नियम के अनुसार दोनों ह्रस्व अकारो के स्थान में दीर्घ "आ" हो गया।

तव + आकारः = तवाकारः ।

यहाँ पर "व" में जो ह्रस्व "अकार" है उसके उपरान्त "आकारः" का दीर्घ "आ" आता है, इस लिए उपर्युक्त नियम के अनुसार दोनों के (ह्रस्व "अ" तथा दीर्घ "आ" के) स्थान में दीर्घ "आ" हो गया।

यदा + अभवत् = यदाभवत् ।

यहां पर "दा" में जो दीर्घ "आकार" है उसके बाद "अभवत्" का ह्रस्व "अ" आता है, इस लिए इसी नियम के अनुसार दोनों के (दीर्घ "आ" तथा ह्रस्व "अ" के) स्थान में दीर्घ "आ" हो गया।

---

१ अकः सवर्णे दीर्घः । ६ । १ । १०१ ।

विद्या+आतुरः=विद्यातुरः ।

यहाँ पर "द्या" में जो "आकार" है उसके बाद "आतुरः" का दीर्घ "आ" आता है, इस लिए इसी नियम के अनुसार दोनों दीर्घ "आ" के स्थान में दीर्घ "आ" हो गया । इसी प्रकार ।

इति	+	इव	=	इतीव ।
अपि	+	ईक्षते	=	अपीक्षते ।
श्री	+	ईशः	=	श्रीशः ।
राज्ञी	+	इह	=	राज्ञीह ।
विष्णु	+	उदयः	=	विष्णूदयः ।
साधु	+	ऊचुः	=	साधूचुः ।
चमू	+	ऊर्जः	=	चमूर्जः ।
वधू	+	उपरि	=	वधूपरि ।
अभिमन्यु	+	उपाख्यानम्	=	अभिमन्यूपाख्यानम् ।
शिशु	+	उदरे	=	शिशूदरे ।
कर्तृ	+	ऋजुः	=	कर्तॄजुः ।
कृ	+	ऋकारः	=	कॄकारः ।
होतृ	+	ऌकारः	=	होतॄकारः ।

इन उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिए ।

यदि ऋ या ऌ के बाद ह्रस्व ऋ या ऌ आवे तो दोनों के स्थान में ह्रस्व ऋ या ऌ भी स्वेच्छा से कर सकते हैं, जैसे—

होतृ + ऋकारः = होतृकारः या होतृऋकारः।

इस प्रकार सब मिला कर तीन रूप हुए:—

(१) होतॄकारः (२) होतृकार (३) होतृऋकारः।

होतृ + ऌकारः = होत्लृकारः अथवा होतृऌकार ।

८—यदि[१] अ या आ के बाद (१) ह्रस्व इ या दीर्घ ई आवे तो दोनो के स्थान में "ए" हो जाता है, (२) यदि ह्रस्व उ या दीर्घ ऊ आवे तो दोनो के स्थान में "ओ" हो जाता है; (३) यदि ह्रस्व ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनो के स्थान में "अर्" हो जाता है, (४) यदि ऌ आवे तो दोनो के स्थान में "अल्" हो जाता है। इस सन्धि का नाम गुण है। जैसे—

उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः।

यहाँ पर उप के "प" मे जो "अ" है उसके बाद "इन्द्रः" की "इ" आती है, इसलिए इस नियम के अनुसार दोनो के (प में के "अ", और "इन्द्रः" में की "इ" के) स्थान में "ए" हो गया। इसी प्रकार।

गण	+	ईशः	=	गणेशः।
देव	+	इन्द्रः	=	देवेन्द्रः।
नर	+	ईशः	=	नरेशः।

१ अदेङ् गुणः। आद्गुणः। १। १। २॥ ६। १। ८७।

पुत्र + इष्टिः = पुत्रेष्टिः }
ईश्वर + इच्छा = ईश्वरेच्छा } इत्यादि को समझना चाहिए।

रमा + ईशः = रमेशः।

यहाँ पर "रमा" के "मा" में जो "आ" है उसके बाद "ईशः" का "ईकार" आता है, इस लिए दोनो के ("अ" और "ई" के) स्थान मे "ए" हो गया। इसी प्रकार —

गङ्गा + ईश्वरः = गङ्गेश्वरः।
ललना + इच्छति = ललनेच्छति।
द्वारका + इहैव = द्वारकेहैव।
पाठशाला + इतः = पाठशालेतः।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

तडाग + उदकम् = तडागोदकम्।

यहाँ पर तडाग के "ग" में जो "अ" है उसके बाद "उदकम्" का "उ" आता है, इस लिए दोनो के ("अ" और "उ" के) स्थान में "ओ" हो गया। इसी प्रकार —

वृत्त + उपरि = वृत्तोपरि।
गगन + ऊर्ध्वम् = गगनोर्ध्वम्।
विशाल + उदरम् = विशालोदरम्।
अत्र + उद्देशे = अत्रोद्देशे।
अस्य + उल्लेखः = अस्योल्लेखः।

नगर + उपकराठे = नगरोपकराठे ।
शब्द + उच्चारणम् = शब्दोच्चारणम् ।
सरल + उपायः = सरलोपायः ।
संसार + उपकारः = संसारोपकारः ।
युद्धाय + उद्यतः = युद्धायोद्यतः ।
संग्राम + उपकरणम् = संग्रामोपकरणम् ।
सूर्य + उदयः = सूर्योदयः ।
शिशिर + उपचारः = शिशिरोपचारः ।
सागर + ऊर्मिः = सागरोर्मिः ।
नव + ऊढा = नवोढा ।
मम + ऊरुः = ममोरुः ।
वृषभ + ऊढः = वृषभोढः ।

इत्यादि उदाहरणो को समझना चाहिए ।

गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् ।

यहाँ पर गङ्गा के "ङ्गा" में जो "आ" है उसके बाद "उदकम्" का "उ" आता है, इसलिए दोनों के ("आ" और "उ" के) स्थान में " ओ " हो गया । इसी प्रकार :—

मायया + ऊर्जस्वि = माययोर्जस्वि ।
भार्या + ऊरुः = भार्योरुः ।
मया + ऊह्यते = मयोह्यते ।

मया	+	उपक्रियते	=	मयोपक्रियते।
भार्या	+	उपजीवी	=	भार्योपजीवी।
मया	+	उक्तम्	=	मयोक्तम्।
राज्ञा	+	उच्यते	=	राज्ञोच्यते।
राधा	+	उक्तिः	=	राधोक्तिः।
यमुना	+	उद्गमः	=	यमुनोद्गमः।
सीता	+	उत्तरम्	=	सीतोत्तरम्।
शय्या	+	उत्सङ्गे	=	शय्योत्सङ्गे।
शिला	+	उच्चये	=	शिलोच्चये।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः।

यहाँ पर "ण" में जो "अ" है, उसके बाद "ऋद्धिः" का "ऋ" आता है, इसलिए इसी नियम के अनुसार दोनों ("अ" और "ऋ") के स्थान में "अर्" हो गया। इसी प्रकार —

ग्रीष्म	+	ऋतुः	=	ग्रीष्मर्तुः।
शीत	+	ऋतौ	=	शीतर्तौ।
ब्रह्म	+	ऋषिः	=	ब्रह्मर्षिः।
महा	+	ऋषिः	=	महर्षिः।
महा	+	ऋद्धिः	=	महर्द्धिः।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

तव + ऌकारः = तवल्कारः ।

यहाँ पर "तव" के "व" में जो "अ" है उसके बाद "ऌकारः" का "ऌ" आता है, इसी से दोनों ("अ" और "ऌ") के स्थान में "अल्" हो गया।

कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ पर यह निमय नहीं लगता, वे नीचे दिखाए जाते हैं :—

(क) अक्ष+ऊहिनी = अक्षौहिणी । यहाँ पर "न" के स्थान में "ण" कैसे हो गया, यह आगे बताया जायगा ।

(ख) जब "स्व" शब्द के बाद "ईर्" और "ईरिन्" आते हैं तो "स्व" के 'अकार" के, और "ईर्" व "ईरिन्" के "ईकार" के स्थान में "ऐ" होजाता है; जैसेः—

स्व + ईरः = स्वैरः (स्वेच्छाचारी) ।
स्व + ईरिणी = स्वैरिणी ।
स्व + ईरम् = स्वैरम् ।
स्व + ईरी = स्वैरी (जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो) ।

(ग) [१] यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु जिसके आदि में ह्रस्व "ऋ" हो आवे तो "अ" और "ऋ" के स्थान में "आर्" हो जाता है, जैसेः—

१ उपसर्गादृति धातौ ॥ ६ । १ । ९१ ॥

उप + ऋच्छति = उपार्च्छति ।

यहां पर "उप" उपसर्ग है उसके "प" में जो "अ" है उसके बाद "ऋच्छति" का "ऋ" आता है, इसलिए इस नियम के अनुसार दोनों ("अ" और "ऋ") के स्थान में "आर्" होगया ।

इसी प्रकार, प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति ।

किन्तु यदि नामधातु हो तो "आर्" विकल्प करके होगा, जैसेः—

प्र+ऋषभीयति=प्रार्षभीयति (बैल की तरह आचरण करता है) ।

९—जब "अ" अथवा[1] "आ" के बाद (१) "ए" या "ऐ" आवे तो दोनों के स्थान में "ऐ" हो जाता है, और (२) जब "ओ" या "औ" आवे तो दोनो के स्थान में "औ" हो जाता है । इस सन्धि का नाम वृद्धि है ।

क्रमशः उदाहरण

कृष्ण	+	एकत्वम्	= कृष्णैकत्वम् ।
देव	+	ऐश्वर्यम्	= देवैश्वर्यम् ।
मम	+	एकः	= ममैकः ।
अत्र	+	एकदा	= अत्रैकदा ।
इह	+	एति	= इहैति ।
तत्र	+	एव	= तत्रैव ।

१ वृद्धिरेचि ॥ ६ । १ । ८८ ॥

तदा	+	एकदा	=	तदैकदा ।
सा	+	एव	=	सैव
कदा	+	एते	=	कदैते ।
सर्वदा	+	एकत्र	=	सर्वदैकत्र ।
इन्द्र	+	ऐरावतः	=	इन्द्रैरावतः ।
नर	+	ऐक्यम्	=	नरैक्यम् ।
चित्त	+	ऐकाग्र्यम्	=	चित्तैकाग्र्यम् ।
सर्वथा	+	ऐकमत्यम्	=	सर्वथैकमत्यम् ।
शब्द	+	ऐकार्थ्यम्	=	शब्दैकार्थ्यम् ।
तदा	+	ऐन्द्रजालिकः	=	तदैन्द्रजालिकः ।
एषा	+	ऐन्द्री	=	एषैन्द्री
बाला	+	ऐडकी	=	बालैडकी ।
भव	+	औषधम्	=	भवौषधम् ।
राम	+	औदार्य्यम्	=	रामौदार्य्यम् ।
विद्या	+	औत्सुक्यम्	=	विद्यौत्सुक्यम् ।
गङ्गा	+	ओघः	=	गङ्गौघः ।
कृष्ण	+	औत्कण्ठ्यम्	=	कृष्णौत्कण्ठ्यम् ।

नियमातिरेक :—

(क) यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एकारादि या ओकारादि धातु आवे तो दोनों के स्थान में "ए" वा "ओ" हो जाता है; यथा:—

प्र	+	एजते	=	प्रेजते ।
उप	+	ओपति	=	उपोषति ।

किन्तु यदि वह धातु नामधातु हो तो विकल्प करके वृद्धि होती है; जैसे :—

उप + एडकीयति = उपेडकीयति या उपैडकीयति ।

प्र + ओघीयति = प्रोघीयति या प्रौघीयति ।

१०—[1]यदि ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ तथा ऌ के बाद असवर्ण स्वर आवे तो इ, उ, ऋ, ऌ के स्थान में क्रमशः य्, व्, र् और ल् हो जाते हैं. जैसे :—

दधि	+	अत्र	=	दध्यत्र ।
इति	+	आह	=	इत्याह ।
बीजानि	+	अवपन्	=	बीजान्यवपन् ।
कलि	+	आगमः	=	कल्यागमः
मधु	+	अरिः	=	मध्वरिः ।
गुरु	+	आदेशः	=	गुर्वादेशः
प्रभु	+	आज्ञा	=	प्रभ्वाज्ञा ।
शिशु	+	ऐश्वर्यम्	=	शिश्वैश्वर्यम् ।
धातृ	+	अंशः	=	धात्रंशः ।
पितृ	+	आकृतिः	=	पित्राकृतिः ।

१ इको यणचि ॥ ६ । १ । ७७ ॥

सवितृ	+	उदयः	=	सवित्रुदयः ।
मातृ	+	औदार्य्यम्	=	मात्रौदार्य्यम् ।
ऌ	+	आकृतिः	=	लाकृतिः ।

[1] अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, तथा ॡ जब किसी श॰ के अन्त में रहे, और इनके बाद ह्रस्व "ऋ" आवे तो सन्धि करना न करना इच्छा पर निर्भर है। किन्तु जब सन्धि नहीं होत तो दीर्घ आ, ई, ॠ, तथा ॡ ह्रस्व हो जाते हैं, जैसे :—

ब्रह्मा	+	ऋषिः	=	ब्रह्मर्षिः, ब्रह्म ऋषिः ।
सप्त	+	ऋषीणाम्	=	सप्तर्षीणाम्, सप्त ऋषीणाम्

[2] जब ओ या औ के बाद में यकारादि प्रत्यय (ऐसा प्रत्यय जिस॰ आरम्भ में 'य्' हो) आवे तो "ओ" और "औ" के स्थान मे क्रम से अव् और आव् हो जाते है; यथा :—

गो	+	यम्	=	गव्यम् ।
नौ	+	यम्	=	नाव्यम् ।

[3] ११—ए, ऐ, ओ, औ के उपरान्त यदि कोई स्वर आवे तो उनके स्थान में क्रम से अय्, आय्, अव्, आव् हो जाते है, यथा:—

---

१ ऋत्यकः ॥ ६ । १ । १२७ ॥

२ वान्तो यि प्रत्यये ॥ ६ । १ । ७९ ॥

३ एचोऽयवायावः ॥ ६ । १ । ७८ ॥

हरे	+	ए	=	हरये।
नै	+	अकः	=	नायकः।
विष्णु	+	ए	=	विष्णवे।
पौ	+	अकः	=	पावकः।

[1] शब्दान्त य् या व् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् को कोई स्वर आवे तो य् और व् का लोप करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है; जैसे :—

हरे	+	एहि	=	हरयेहि या हर एहि।
विष्णो	+	इह	=	विष्णविह या विष्ण इह।
तस्यै	+	इमानि	=	तस्यायिमानि या तस्या इमानि
श्रियै	+	उत्सुकः	=	श्रियायुत्सुकः या श्रिया उत्सुकः।
गुरौ	+	उत्कः	=	गुरावुत्कः या गुरा उत्कः।
रात्रौ	+	आगतः	=	रात्रावागतः या रात्रा आगतः।
ऋतौ	+	अन्नम्	=	ऋतावन्नम् या ऋता अन्नम्।

मध्यस्थ व्यञ्जन अथवा विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समीप आ जायँ तो उनकी आपस में सन्धि नहीं होती।

[2] १२—पदान्त एकार या ओकार के बाद यदि "अ" आवे तो "अकार" का लोप हो जाता है (और ऽ चिह्न लोप की सूचना-मात्र देने को रख दिया जाता है जैसे :—

---

१ लोपः शाकल्यस्य ॥ ८ । ३ । १९ ॥

२ एङः पदान्तादति ॥ ६ । १ । १०९ ॥

हरे +अव=हरेऽव। हे हरि रक्षा कीजिए।
विष्णो+अव=विष्णोऽव। हे विष्णु रक्षा कीजिए।

१३—यदि[1] प्लुत स्वर के उपरान्त अथवा प्रगृह्यसंज्ञक वर्णों के उपरान्त स्वर आवे तो सन्धि नहीं होती। प्रगृह्यसंज्ञा वाले वर्ण इस प्रकार हैं:—

(क)[2] जब कि संज्ञा अथवा सर्वनाम अथवा क्रिया के द्विवचन के अन्त में "ई" "ऊ" या "ए" रहता है तो उस "ई" "ऊ" और "ए" को प्रगृह्य कहते हैं, जैसे, हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ।

[ख][3] जब अदस् शब्द के मकार के बाद ई या ऊ आते हैं तो वे प्रगृह्य होते हैं, जैसे, अमी ईशा, अमू आसाते।

[ग][4] जब कि अव्यय ओकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य बोलते हैं, जैसे, अहो ईशाः।

संज्ञा शब्दों के सम्बोधन के अन्त के ओकार के बाद यदि "इति" शब्द आवे तो विकल्प करके सन्धि होती है, जैसेः—

---

१ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।

२ ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्।

३ अदसो मात्॥ १। १। ११। १२॥

४ निपात एकाजनाङ्। ओत्। सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे॥ १। १४-१६॥

विष्णो + इति = विष्णविति, विष्ण इति, विष्णो इति।

प्लुतों के साथ भी सन्धि नहीं होती; जैसे—एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति।

हल्-सन्धि

१४-जब[1] "स्" अथवा दंतस्थानीय कोई व्यञ्जन श् या किसी तालुस्थानीय व्यञ्जन के समीप आता है तो दंतस्थानीयों के स्थान में सवर्ण तालुस्थानीय और "स्" के स्थान में "श्" हो जाता है, जैसेः—

हरिस्	+ शेते	= हरिश्शेते	—	हरि सोता है।
रामः	+ चिनोति	= रामश्चिनोति	—	राम इकट्ठा करता है।
सत्	+ चित्	= सच्चित्	—	सत्य और ज्ञान।
शार्ङ्गिन्	+ जय	= शार्ङ्गिञ्जय	—	हे विष्णु जय हो।

नियमातिरेकः—जब दन्तस्थानीय व्यञ्जन "श्" के बाद आते हैं तो उनके स्थान में सवर्ण तालुस्थानीय नहीं होते, जैसे :—

विश् + न = विश्नः। प्रश् + नः = प्रश्नः।

(ख)[2] जब स् अथवा दन्तस्थानीय व्यंजन के बाद ष् या कोई मूर्धन्य वर्ण आवे तो स् के स्थान मे ष् और दन्तस्थानीय के स्थान पर मूर्धा स्थान वाले वर्ण हो जाते हैं; जैसे :—

---

१ स्तोःश्चुनाश्चुः। ८। ४। ४०।

२ ष्टुना ष्टुः। ८। ४। ४१।

रामस्	+	षष्ठः	=	रामष्षष्ठः।
रामस्	+	टीकते	=	रामष्टीकते—राम जाते हैं।
तत्	+	टीका	=	तट्टीका—उसकी व्याख्या।
चक्रिन्	+	ढौकसे	=	चक्रिण्ढौकसे—हे कृष्ण, तू जाता है।
पेष्	+	ता	=	पेष्टा—पीसने वाला।

१५—यदि[1] तवर्ग के किसी अक्षर के बाद ष् आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता; जैसे :—

सन् + षष्ठः = सन्षष्ठः।

१६—जब[2] अन्तःस्थ और अनुनासिक व्यंजन को छोड़कर और किसी भी व्यंजन के उपरांत किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण आवे तो पूर्ववर्ती व्यञ्जन अपने वर्ग के तृतीय वर्ण में परिणत हो जाता है; जैसे :—

एतत् + दुष्टं = एतद्दुष्टं।
जलमुक् + गर्जति = जलमुग्गर्जति।

१७—यदि[3] र् और ह् को छोड़कर किसी पदान्त व्यञ्जन के बाद कोई नासिका स्थानवाला वर्ण आवे तो उसके स्थान

---

१ तो. षि ॥ ८ । ४ । ४३ ॥
२ झलां जश् झशि । ८ । २ । ३९ ।
३ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ॥ ८ । ४ । ४५ ॥
विधिरयं रेफेऽपि न प्रवर्त्तते (सि० कौ०)

में उसी वर्गवाला नासिकास्थानीय वर्ण विकल्प करके होता है: जैसे :—

एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः ।
षट् + मासाः = षण्मासाः ।
षट् + नगर्यः = षण्णगर्यः ।

१८—दन्तस्थान वाले[1] अक्षर के बाद यदि ल् आवे तो उसके स्थान मे ल् हो जाता है. और न् के स्थान में अनुनासिक ल् (अर्थात् ँल्) होता है. जैसे :—

तत् + लयः = तल्लयः (उसका नाश) ।
वृक्षात् + लगुडम् = वृक्षाल्लगुडम् ।
तस्मात् + लालयेत् = तस्माल्लालयेत् ।
पराक्रमात् + लावण्यम् = पराक्रमाल्लावण्यम् ।
विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति ।

१९—यदि[2] वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्णों के बाद ह् आवे तो ह् के स्थान में उसी वर्ग का चौथा अक्षर कर देना या न कर देना अपनी इच्छा पर रहता है जैसे :—

वाक् + हरिः = वाग्हरिः अथवा वाग्घरिः ।

यहाँ कवर्ग के प्रथम अक्षर क् के उपरान्त ह् आया, इस कारण ह् के

१ तोर्लि ॥ ८ । ४ । ६० ॥

२ झयो होऽन्यतरस्याम् ॥ ८ । ४ । ६२ ॥

स्थान में कवर्ग का चतुर्थ अक्षर घ् हो गया। (क् के स्थान में ग् कैसे हुआ इसके लिए ऊपर देखिए नियम १६)

२०—अनुनासिक व्यञ्जन (ञ्, म्, ङ्, ण्, न्) तथा अन्तःस्थ वर्णों को छोड़ कर और किसी व्यञ्जन के उपरान्त यदि क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ् में से कोई वर्ण आवे तो पूर्वोक्त व्यञ्जन के स्थान मे उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है, परन्तु जब उसके बाद कुछ भी नहीं रहता तब उसके स्थान मे प्रथम अथवा तृतीय वर्ण हो जाता है; जैसेः—

भयात् करोति = भयात्करोति।
सुहृद् क्रीडति = सुहृत्क्रीडति।
वृक्षाद् पतति = वृक्षात्पतति।
वाक्। वाग्। रामात्। रामाद्।

२१—श्[1] यदि किसी ऐसे शब्द के बाद आवे जिसके अन्त में वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ वर्ण हो और श् के बाद कोई स्वर, अन्तःस्थ, अनुनासिक व्यञ्जन या ह् रहे तो श् के स्थान में कभी छ् हो जाता है, कभी नहीं; जैसे :—

तद् + शिवः = तच्छिवः, तत् शिवः।
{ तच्शिवः, तद् शिवः, तद् छिवः भी होता है। }

वनात् + शशः = वनाच्छशः, वनात् शशः

१ शश्छोटि। खरि च। ८। ४। ६३॥ ८। ४। ५५।

वनाच् शशः, वनाट् शशः, वनाट् क्रशः भी।

(तच्छिवः, तच्शिवः, वनाच्क्रशः आदि में ट् अथवा त् के स्थान में नियम १४ के अनुसार च् हो गया)

२२[1]—पदान्त म् के बाद यदि व्यञ्जन आवे तो उसके स्थान में अनुस्वार करना या न करना अपनी इच्छा पर रहता है, जैसे :—

हरिम्	+	वन्दे	=	हरिं वन्दे।
गृहम्	+	चलति	=	गृहं चलति।

किन्तु गम् + य + ते = गम्यते, न कि गंयते होगा: क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है बल्कि बीच में है। इसी तरह से सम् + राट् = सम्राट्। यहाँ भी अनुस्वार न होगा : क्योंकि म् पद के अन्त मे नहीं है।

२३[2]—अपदान्त म्, न् के बाद यदि अनुनासिक व्यजन तथा अन्तस्थ और ह् को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो म्, न् के स्थान में अनुस्वार हो जाता है, जैसे:—

आक्रम्	+	स्यते	=	आक्रंस्यते।
यशान्	+	सि	=	यशांसि।

परन्तु मन्+यते=मन्यते, न कि मंयते होगा: क्योंकि यहाँ पर न् के बाद य आ जाता है जो कि अन्तःस्थ है।

---

१ मोऽनुस्वारः । ८ । ३ । २३ ।

२ नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ३ । २४ ।

ग्रामान् + गच्छति = ग्रामान्गच्छति ।

यहाँ पर ग्रामा गच्छति नहीं होगा; क्योंकि न् पद के अंत में है ।

२४—यदि[1] पद के मध्य में स्थित अनुस्वार के बाद श्, ष्, स् और ह् को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो अनुस्वार के स्थान में सर्वदा ही उस वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है जिस वर्ग का व्यञ्जन वर्ण अनुस्वार के बाद रहता है; जैसेः—

गम् + ता = गं + ता (२३) = गन्ता,
सन् + ति = सं + ति (२३) = सन्ति
अन्क् + इतः = अंक् + इतः (२३) = अङ्कित
शाम् + तः = शां + तः (२३) = शान्त
सम् + कटा = सं + कटा (२३) = सङ्कटा
शम् + भुः = शं + भुः (२३) = शम्भुः
अन्च् + इतः = अंच् + इतः (२३) = अञ्चितः

(क) यदि[2] अनुस्वार किसी पद के अन्त में रहे तो ऊपर वाला नियम लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है, जैसे :—

त्वम् + करोषि = त्वं करोषि या त्वङ्करोषि,
तृणम् + चरति = तृणं चरति या तृणञ्चरति,
ग्रामम् + गच्छति = ग्रामं गच्छति या ग्रामङ्गच्छति,
इदम् + भवति = इदं भवति या इदम्भवति,

१ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८ । ४ । ५८ ।
२ वा पदान्तस्य । ८ । ४ । ५९ ।

नदीम् + तरति = नदीं तरति या नदीन्तरति
पुस्तकम् + पठति = पुस्तकं पठति या पुस्तकम्पठति,

२५—किसी[1] एक ही पद मे यदि र्, ष् अथवा ह्रस्व या दीर्घ ऋ के बाद न् आवे तो न् के स्थान में ण् हो जाता है। यदि र्, ष्, ऋ और न् के बीच में कोई स्वर, य्, व्, र् तथा अनुस्वार, कण्ठस्थान वाला, ओष्ठस्थान वाला तथा ह् में से कोई एक अथवा कई आ जांय तब भी न् के स्थान में ण् होता है। इस नियम के प्रयोग को णत्वविधान कहते है . जैसेः—

पुष्	+	ना	=	पुष्णा,
पितृ	+	नाम्	=	पितृणाम्,
मित्रा	+	नि	=	मित्राणि,
द्रव्ये	+	न	=	द्रव्येण,
रामे	+	न	=	रामेण,
शीर्षा	+	नि	=	शीर्षाणि,

किन्तु

ऋषि + निवासः = ऋषिनिवासः,

यहाँ "ऋषिणिवासः" न होगा, क्योकि "ऋषि" और "निवासः" अलग अलग शब्द हैं।

किन्तु[2] जब न् किसी पद के अन्त में आता है तो

---

1 रषाभ्या नो णः समानपदे। अट्कुप्वाड् नुम्व्यवायेऽपि ॥८।४।१-२।
2 पदान्तस्य न।८।४।३७।

यह नियम नहीं लगता, जैसे, रामान्, पितॄन्, नृपभान्, ऋषीन्।

२६—यदि[२] अ, आ को छोड़कर किसी स्वर के अनन्तर अथवा अन्तःस्थ वर्ण अथवा कण्ठस्थानीय वर्ण अथवा ह् के अनन्तर कोई प्रत्यय सम्बन्धी स् या किसी दूसरे वर्ण के स्थान में आदेश किया हुआ स् आवे तो उस स् के स्थान में ष् हो जाता है। इस विधि का नाम षत्वविधान है, यथा :—

रामे	+	सु	=	रामेषु।
वने	+	सु	=	वनेषु।
ए	+	साम्	=	एषाम्।
अन्ये	+	साम्	=	अन्येषाम्।

इसी प्रकार मतिषु, नदीषु, धेनुषु, वधूषु, धातृषु, गोषु, ग्लौषु आदि जानना चाहिये।

किन्तु राम+स्य=रामस्य ; यहाँ ष् नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ स् के पूर्व 'अ' आया है, इसी प्रकार विद्यासु में भी षत्व नहीं हुआ। पेस्+अति=पेसति (पेषति नहीं), क्योंकि यह स् न तो किसी प्रत्यय का है न आदेश का।

(क) यदि स् पद के अन्त में हो तो षत्वविधान न होगा, यथा हरिः (यहाँ हरि शब्द के अनन्तर 'स्' सु प्रत्यय वाला अवश्य है, किन्तु पद के अन्त में है, इस कारण षत्व नहीं हुआ)।

---

२ अपदान्तस्य मूर्धन्यः। इण्कोः। आदेशप्रत्यययोः।८।३।५५,५७,५९।

(ख) ऊपर[1] वर्णित वर्णों में से यदि कोई वर्ण स् के ठीक पहले न हो न्तु अनुस्वार (न् के स्थान में आया हुआ), विसर्ग, श्, ष्, स् में से कोई एं और पूर्व वर्णित वर्णों के बीच में आजाय तब भी षत्वविधि होगी : था:—

धेनून्+सि=धेनूं+सि=धेनूंषि ।

२७—सम् उपसर्ग के म् के उपरान्त यदि कृधातु का कोई रूप आवे तो म् के स्थान में अनुस्वार और विसर्ग दोनों मिलकर आ जाते हैं, यथा:— सम्+कर्ता=सः+कर्ता=संस्कर्ता । कभी कभी इस अनुस्वार के स्थान में अनुनासिक (ँ) हो जाता है ; यथा:—सँस्कर्ता अथवा संस्कर्ता ।

२८—[2]छ् तथा छ् के पूर्व वाले ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बीच में च् अवश्य आता है; जैसे:—

शिव + छाया = शिवच्छाया ।
वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया ।
लता + छविः = लताच्छविः ।

(क) [3]किन्तु छ के पूर्व आ उपसर्ग को तथा "मा" के आ को छोड़कर कोई पदान्त दीर्घ स्वर आवे तो ऊपर वाला नियम इच्छानुसार लगता है और नहीं भी लगता है, जैसे—

---

१ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ ।

२ छे च । ६ । १ । ७३ ।

३ आङ्माङोश्च । दीर्घात् । पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७४–७६ ।

लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मी छाया या लक्ष्मीच्छाया।

किन्तु मा + छिन्धि = माच्छिन्धि। यहाँ यही एक रूप होगा "माछिन्धि" न होगा। इसी प्रकार—

आ + छादयति = "आच्छादयति"। यहाँ भी एक रूप होगा "आछादयति" न होगा।

विसर्ग-सन्धि

२९—पदान्त स् के बाद चाहे कोई वर्ण आवे या न आवे उसके स्थान में विसर्ग होजाता है; जैसेः—

रामस् + पठति = रामः पठति, राम + स् = रामः।

३०—यदि सजुष् के ष् अथवा पदान्त र् के बाद कोई परुष व्यञ्जन आवे या कुछ भी न आवे तो उस ष् तथा र् के स्थान में विसर्ग हो जाता है; जैसेः—

सजुष् = सजुः, पितर् = पितः, भ्रातुर् कन्यका = भ्रातुः कन्यका।

३१—विसर्ग[1] के बाद यदि च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ् आवे, किन्तु इनके बाद ऊष्म वर्ण (श्, ष्, स्) न आवे तो विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है; जैसेः—

---

१ विसर्जनीयस्य सः। ८।३।३४।

विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता ।
हरिः + चरति = हरिस् + चरति = हरिश्चरति ।
रामः + टङ्कारयति = रामस् + टङ्कारयति
= रामष्टङ्कारयति ।

किन्तु कः + त्सरुः = कः त्सरुः । यहाँ पर विसर्ग के स्थान में स् नहीं होगा, क्योंकि त् के बाद स् आ गया है ।

(क) परन्तु[1] यदि विसर्ग के बाद श्, ष्, स् आवे तो विसर्ग के स्थान में स् करना न करना अपनी इच्छा पर रहता है, जैसेः—

रामः + स्थाता = रामस्स्थाता ।
हरिः + शेते = हरिस् + शेते = हरिश्शेते या हरिः शेते ।

३२—ककारादि[2], खकारादि, पकारादि, फकारादि धातुओं के पूर्व यदि नमः तथा पुरः ये दोनो शब्द अव्यय के तौर पर लगे हो तो नमः के विसर्ग के स्थान में विकल्प करके स् होता है, किन्तु पुरः के विसर्ग के स्थान में सर्वदा ही स् होता है, जैसे—

नमः + करोति = नमस्करोति या नमः करोति ।
पुरः + करोति = पुरस्करोति, इसमें अवश्य विसर्ग का स् होगा ।
पुरः + प्रवेष्टव्याः = पुरः प्रवेष्टव्याः । यहाँ पर पुरः के विसर्ग के स्थान में स् नहीं हुआ, क्योंकि पुरः यहाँ पर अव्यय नहीं है, संज्ञा है ।

---

[1] वा शरि । ८ । ३ । ३६ ।
[2] नमस्पुरसोर्गत्योः । ८ । ३ । ४० ।

३३–यदि तिरस् के बाद क्, ख्, प्, फ् आवे तो स् विकल्प करके रख लिया जाता है; जैसे —[1]

तिरस् + करोति = तिरस्करोति या तिरः करोति ।

३४–द्विः, त्रिः और चतुः पौनःपुन्यवाचक क्रियाविशेषण अव्यय हैं। यदि इनके बाद क्, ख्, प्, फ् आवें तो विसर्ग के स्थान में विकल्प करके ष् हो जाता है; जैसेः—[2]

द्विः + करोति = द्विष्करोति या द्विः करोति

किन्तु चतु + कपालम् = चतु. कपालम् (चतुष्कपालम् नहीं) —चार कपालों में बना हुआ अन्न; क्योंकि चतुः क्रियाविशेषण अव्यय नहीं है।

३५–स् के स्थान में किए हुए विसर्ग के (र् के स्थान में किए हुए विसर्ग के नहीं) पूर्व यदि ह्रस्व "अ" आवे और बाद को ह्रस्व "अ" अथवा मृदु व्यञ्जन आवे तो विसर्ग का "उ" होजाता है, जैसेः— शिवः + अर्च्यः = शिव + उ + अर्च्यः = शिवो + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः,

इसी प्रकार

देवः	+	वन्द्यः	=	देवो वन्द्यः ।
रामः	+	अस्ति	=	रामोऽस्ति ।
सः	+	अपि	=	सोऽपि ।

१ तिरसोऽन्यतरस्याम् । ८ । ३ । ४२ ।

२ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे । ८ । ३ । ४३ ।

एषः	+	अब्रवीत्	=	एषोऽब्रवीत् ।
बालः	+	गच्छति	=	बालो गच्छति ।
हरः	+	याति	=	हरो याति ।
वृक्षः	+	वर्धते	=	वृक्षो वर्धते ।

किन्तु प्रातः+अत्र=प्रातरत्र। यहां पर विसर्ग का उ नहीं हुआ, क्योंकि यह विसर्ग र् के स्थान में किया गया है न कि स् के स्थान मे. इसी प्रकार प्रातः+गच्छ=प्रातर्गच्छ।

३६—यदि विसर्ग के पूर्व आ रहे और बाद में कोई मृदु व्यञ्जन आवे तो विसर्ग का लोप हो जाता है: जैसे :—

बालाः	+	गच्छन्ति	=	बाला गच्छन्ति ।
भक्ताः	+	जपन्ति	=	भक्ता जपन्ति ।
नराः	+	वदन्ति	=	नरा वदन्ति ।
अश्वाः	+	धावन्ति	=	अश्वा धावन्ति ।
जनाः	+	ध्यायन्ति	=	जना ध्यायन्ति ।
कन्याः	+	यान्ति	=	कन्या यान्ति ।

किन्तु जब विसर्ग के पूर्व आ और बाद को कोई स्वर आवे, अथवा विसर्ग के बाद अ को छोड़कर कोई स्वर और पूर्व में अ आवे तो विसर्ग का लोप करना न करना इच्छा पर निर्भर है; और जब लोप नहीं होता तो विसर्ग के स्थान में य् हो जाता है; जैसेः—

देवाः+इह =देवा इह या देवायिह ।

नराः	+आगच्छन्ति	=नरा आगच्छन्ति या नरायागच्छन्ति
रामः	+एति	=राम एति।
जनः	+इच्छति	=जन इच्छति।
शत्रवः	+आपतन्ति	=शत्रव आपतन्ति।
मुनय	+आप्नुवन्ति	=मुनय आप्नुवन्ति।
ऋषयः	+एते	=ऋषय एते।
कवयः	+ऊहन्ति	=कवय ऊहन्ति

३७–विसर्ग के पूर्व यदि अ और आ को छोड़कर कोई स्वर हो और बाद को कोई स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो विसर्ग के स्थान में र् हो जाता है ; जैसेः—

हरिः	+	जयति	=	हरिर्जयति
भानुः	+	उदेति	=	भानुरुदेति
कविः	+	वर्णयति	=	कविर्वर्णयति
मुनिः	+	ध्यायति	=	मुनिर्ध्यायति
यतिः	+	गदति	=	यतिर्गदति
ऋषिः	+	हसति	=	ऋषिर्हसति
लक्ष्मीः	+	याति	=	लक्ष्मीर्याति
श्रीः	+	एषा	=	श्रीरेषा
सुधीः	+	गति	=	सुधीर्गति

(क) र्[1] के बाद यदि र् आवे और ढ् के बाद यदि

[1] रोरि। ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः। ८। ३। १४, १११।

है, यथा—भगवत्+टा=भगवत्+आ=भगवता। किन्तु कहीं टा का स्थान इन ले लेता है; यथा—नर+इन=नरेण। इसी कारण जब तक पाणिनि के व्याकरण का अच्छे प्रकार ज्ञान प्राप्त न करले तब तक प्रातिपदिकों में सुप् प्रत्यय जोड़ कर रूप सिद्ध करना दुःसाध्य है। इसी कारण नीचे साधारणतया प्रचलित प्रातिपदिकों के सिद्ध रूप दिये जाते है।

४३—संस्कृत मे प्रातिपदिक पहले दो भागों में विभक्त किये जाते है—(१) स्वरान्त, (२) व्यञ्जनान्त। स्वरान्त में अकारान्त शब्द प्रायः सभी पुंलिङ्ग अथवा नपुंसक लिङ्ग में होते है। आकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग मे होते है, थोड़े से ही पुंलिङ्ग में होते है। इकारान्त शब्द कोई पुंलिङ्ग में, कोई स्त्री लिङ्ग में और कोई नपुंसक लिङ्ग में होते है। ईकारान्त प्रायः स्त्री लिङ्ग में, किन्तु कुछ पुंलिङ्ग में भी होते हैं। उकारान्त प्रायः तीनों लिङ्गों में होते है। ऊकारान्त बहुधा स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग में होते हैं। ऋकारान्त प्रायः सभी पुंलिङ्ग में होते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त बहुत कम शब्द है। शेष स्वरों मे अन्त होने वाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं के बराबर है।

व्यञ्जनान्त प्रातिपदिक प्रायः ङ्, ञ्, म्, य् इन वर्णों को छोड़ कर सभी व्यञ्जनों में अन्त होने वाले पाये जाते है। इनमें भी बहुधा चकारान्त, जकारान्त, तकारान्त, दकारान्त, धकारान्त, नकारान्त, शकारान्त, षकारान्त, सकारान्त और हकारान्त ही अधिक प्रयोग में आते है। नीचे क्रमानुसार उनके रूप दिखाये जाते हैं।

स्वरान्त संज्ञाएँ

४४—अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

बालक—लड़का

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बालकः	बालकौ	बालका
सम्बोधन	हे बालक	हे बालकौ	हे बालकाः
द्वितीया	बालकम्	बालकौ	बालकान्
तृतीया	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकैः
चतुर्थी	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
पञ्चमी	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
षष्ठी	बालकस्य	बालकयोः	बालकानाम्
सप्तमी	बालके	बालकयोः	बालकेषु

राम, वृक्ष, अश्व, सूर्य, चन्द्र, नर, पुत्र, सुर, देव, रथ, मुन, गज, रासभ (गदहा), मनुष्य, जन, दन्त, लोक, ईश्वर, पाद, भक्त, मास, शठ, दुष्ट, कुक्कुर, वृक (भेड़िया), व्याघ्र, सिंह, इत्यादि समस्त अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप बालक के समान होते हैं। इसी प्रकार यादृश, तादृश, भवादृश, मादृश, त्वादृश, एतादृश आदि शब्द भी चलते हैं। स्पष्टता के लिए तादृश के रूप दिए जाते हैं।

तादृश—उसकी तरह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृशः	तादृशौ	तादृशाः
स०	हे तादृश	हे तादृशौ	हे तादृशाः
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशान्
तृ०	तादृशेन	तादृशाभ्याम्	तादृशैः
च०	तादृशाय	तादृशाभ्याम्	तादृशेभ्यः
पं०	तादृशात्	तादृशाभ्याम्	तादृशेभ्यः
ष०	तादृशस्य	तादृशयो	तादृशानाम्
स०	तादृशे	तादृशयो	तादृशेषु

नोट—यही शब्द इसी अर्थ में शकारान्त होते है। उनके रूप व्यञ्जनान्त सज्ञाओं में मिलेंगे।

४५—आकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

विश्वपा—संसार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपा	विश्वपौ	विश्वपाः
स०	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः
द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः

तृ०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
च०	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पं०	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
ष०	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
स०	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु

गोपा (गाय का रक्षक), शंखध्मा (शंख बजाने वाला), सोमपा (सोमरस पीनेवाला), धूम्रपा (धुआँ पीने वाला), बलदा (बल देने वाला या इन्द्र), तथा और भी दूसरे आकारान्त धातुओं से निकले हुए समस्त संज्ञा शब्दों के रूप विश्वपा के समान होते है।

४६—इकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

(क) कवि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कविः	कवी	कवयः
सं०	हे कवे	हे कवी	हे कवयः
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविभ्याम्	कविभिः
च०	कवये	कविभ्याम्	कविभ्यः
पं०	कवेः	कविभ्याम्	कविभ्यः

ष०	कवेः	कव्योः	कवीनाम्
स०	कवौ	कव्योः	कविषु

हरि, मुनि, ऋषि, कपि, यति, विधि (ब्रह्मा), विरञ्चि (ब्रह्मा), जलधि, गिरि (पहाङ), सखि (घोड़ा), रवि (सूर्य), वह्नि (आग), अग्नि, इत्यादि इकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप कवि के समान होते हैं।

नोट--विधि (विधान तरकीब, के अर्थ में) हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग है; किन्तु संस्कृत में यही शब्द पुंलिङ्ग में है, इसका ध्यान रखना चाहिए।

(ख) पति शब्द के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार से होते हैं

पति—स्वामी, मालिक, दूल्हा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पतिः	पती	पतयः
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
पं०	पत्युः	,,	,,
ष०	.	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु

किन्तु जब पति शब्द किसी शब्द के साथ समास के अन्त आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते है ; जैसे:—

भूपति—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
सं०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
च०	भूपतये	,,	भूपतिभ्य
पं०	भूपतेः	,,	,,
ष०	,,	भूपत्योः	भूपतीनाम्
स०	भूपतौ	,,	भूपतिषु

महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अधिपति, सुरपति, गजपति, गणपति (गणेश), जगत्पति, बृहस्पति, पृथ्वीपति, इत्यादि शब्दो के रूप भूपति के समान कवि शब्द की भाँति होंगे।

(ग) सखि (मित्र) शब्द के भी रूप बिलकुल भिन्न प्रकार के होते है, जैसे

आवे तो र् और ढ् का लोप हो जाता है, और पूर्व में आए हुए "अ" "इ" "उ" यदि ह्रस्व रहे तो साथ ही साथ वे दीर्घ हो जाते हैं।

जैसे—पुनर्	+	रमते	=	पुना रमते
हरिर्	+	रम्यः	=	हरी रम्यः
शम्भुर्	+	राजते	=	शम्भू राजते
कविर्	+	रचयति	=	कवी रचयति
गुरुर्	+	रुष्टः	=	गुरू रुष्टः
शिशुर्	+	रोदिति	=	शिशू रोदिति
वृढ्	+	ढः	=	वृढः

३८[1]—यदि किसी व्यंजन के पूर्व सः अथवा एषः शब्द आवे तो उनके विसर्ग का लोप हो जाता है; जैसेः—

सः+शम्भुः=स शम्भुः। एषः+विष्णुः=एष विष्णुः।

(क) यदि नञ् तत्पुरुष में ये सः और एषः (अर्थात् असः, अनेषः शब्द) आवें अथवा क में परिणत होकर आवे (अर्थात् सकः, एषकः) तब विसर्ग-लोप की यह विधि नहीं लगती; यथा—असः शिवः का अस शिवः न होगा, और न एषकः हरिणः का एषक हरिणः होगा।

---

[1] एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि। ६।१।१३२।

तृतीय सोपान

संज्ञा-विचार

३९—वाक्य भाषा का आधार है और शब्द वाक्य का यह पहिले कह आए है। संस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो ऐसे जिनका रूप वाक्य के और शब्दों के कारण बदलता रहता है और दूसरे ऐसे जिनका रूप सदा समान ही रहता है। न बदलने वालों में यदा, कदा आदि अव्यय हैं तथा कर्तुं, गत्वा आदि कुछ क्रियाओं के रूप हैं। बदलने वालों में संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया आदि हैं।

४०—हिन्दी की भांति संस्कृत में भी तीन पुरुष होते है-उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। अन्य पुरुष को प्रथम पुरुष भी कहते हैं। हिन्दी में केवल दो वचन होते हैं—एकवचन, बहुवचन। किन्तु संस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता है जिससे दो का बोध कराया जाता है। संज्ञाएँ सब अन्य पुरुष में होती हैं।

४१—संज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं—पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग। संस्कृत भाषा में यह लिङ्गभेद किसी स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नहीं है, ऐसा नहीं है कि सब नर वस्तुएँ पुंलिङ्ग शब्दों द्वारा दिखाई जायँ, मादा स्त्रीलिङ्ग द्वारा और निर्जीव वस्तुएँ नपुंसक लिङ्ग द्वारा। प्रत्युत यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ 'स्त्री' का अर्थ बताने के लिए कई शब्द है—स्त्री, महिला, गृहिणी, दार

आदि। इनमे 'दार' शब्द स्त्री का बोधक है, तिसपर भी यह पुंलिङ्ग में है। इसी प्रकार निर्जीव शरीर का बोध कराने के लिए कई शब्द है—तनु (स्त्रीलिङ्ग), देह (पुंलिङ्ग) और शरीर (नपुंसक लिङ्ग) तथा जल के लिए आप् (स्त्री०) और जल (नपुंसक)। कई शब्द ऐसे है जिनके रूप एक से अधिक लिङ्गो में चलते है, जैसे गो शब्द पुंलिङ्ग में 'बैल' वाचक है और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' वाचक। किन्हीं किन्हीं पुलिङ्ग शब्दो मे प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द होते है और किन्हीं से नपुंसक लिङ्ग के शब्द बन जाते हैं। उदाहरणार्थ सर्वनाम शब्द 'अन्यत्' के रूप तीनो लिङ्गो में अलग अलग होते है। पुत्र—पुत्री, नायक—नायिका, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि जोड़ी वाले शब्द हैं। इनका सविस्तर विचार आगे चलकर होगा। परन्तु अधिकांश ऐसे शब्द हैं जो एक ही लिङ्ग के हैं—या तो पुंलिङ्ग, या स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग।

४२—हिन्दी मे कर्त्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए ने, को, से आदि शब्द संज्ञा के पीछे अथवा सर्वनाम के पीछे जोड़ देते हैं जैसे—गोविन्द ने मारा, गोविन्द को मारा, तुमने बिगाड़ा, तुमको डाटा आदि। किन्तु संस्कृत में यह सब सम्बन्ध दिखाने के लिए संज्ञा या सर्वनाम आदि का रूप ही बदल देते है; यथा 'गोविन्द ने' की जगह "गोविन्दः", 'गोविन्द को' की जगह 'गोविन्दम्' और 'गोविन्द का' की जगह 'गोविन्दस्य'। इस प्रकार एक ही शब्द के

कई रूप हो जाते है। प्रथमा, द्वितीया आदि से लेकर सप्तमी तक सात विभक्तियाँ (अथवा भाग) होते हैं।

किसी शब्द में जब विभक्ति के प्रत्यय नहीं लगे रहते तब उसे " प्रातिपदिक " कहते हैं । प्रातिपदिक में प्रत्यय जोड़ जोड़ कर विभक्तियो के रूप तय्यार किये जाते है। पाणिनि के अनुसार वे प्रत्यय इस प्रकार हैं :—

विभक्ति	—	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	—	सु	औ	जस्
द्वितीया	—	अम्	औट्	शस्
तृतीया	—	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	—	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	—	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	—	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	—	ङि	ओस्	सुप्

सम्बोधन के लिए अलग प्रत्यय नहीं दिये गये, क्योंकि इस रूप बहुधा प्रथमा विभक्ति के अनुसार चलते है, केवल कहीं क एकवचन में अन्तर पड़ जाता है। विभक्तिसूचक इन प्रत्ययों क सुप् कहते हैं। इनके जोड़ने की विधि बड़ी जटिल है। उदाहरणा "सु" का "उ" उड़ा दिया जाता है, केवल स् रह जाता है, यथा- राम+सु=रामस्=रामः। कहीं कहीं यह स् भी नहीं जोड़ा जाता यथा—विद्या+सु=विद्या। टा का ट् लोप करके यह प्रत्यय जुड़त

सखि—मित्र

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सखा	सखायौ	सखायः
हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः
सखायम्	सखायौ	सखीन्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभि
सख्ये	"	सखिभ्यः
सख्यु	"	"
"	सख्योः	सखीनाम्
सख्यौ	"	सखिषु

४७—ईकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

(क) प्रधी—अच्छा ध्यान करने वाला

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः
पध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
प्रध्ये	"	प्रधीभ्यः
प्रध्यु	"	"

ष०	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	,,	प्रधीषु

वेगी (फुर्ती से जानेवाला) तथा जलपी के रूप प्रधी के समान होते हैं।

उन्नी, ग्रामणी, सेनानी शब्दो के रूप भी प्रधी के समान होते हैं, केवल सप्तमी के एक वचन में उन्न्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् ऐसे रूप हो जाते है।

(ख) सुधी—पण्डित, विद्वान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
सं०	हे सुधीः	,,	,,
द्वि०	सुधियम्	,,	,,
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	,,	सुधीभ्य
पं०	सुधियः	,,	,,
ष०	,,	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	,,	सुधीषु

शुष्की, पक्की, सुश्री, शुद्धधी, परमधी के रूप भी सुधी के समान होते है।

(ग) सखी (सखायमिच्छतीति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथ०	सखा	सखायौ	सखायः
सं०	हे सखीः	हे सखायौ	हे सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्यः
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
च०	सख्ये	,,	सखीभ्यः
प०	सख्युः	,,	,,
ष०	,,	सख्योः	सख्याम्
स०	सख्यि	,,	सखीषु

(घ) सखी (सखमिच्छतीति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सखी	सख्यौ	सख्य.
सं०	हे सखी	हे सख्यौ	हे सख्यः
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्यः

शेष रूप पहिले वाले सखी के समान होते हैं। (सुतमिच्छतीति) सुती, (सुखमिच्छतीति) सुखी, (लूनमिच्छतीति) लूनी, (क्षाममिच्छतीति) क्षामी, (प्रस्तीममिच्छतीति) प्रस्तीमी के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

४८—उकारान्त पुलिङ्ग शब्द

भानु—सूर्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भानुः	भानू	भानवः
सं०	हे भानो	हे भानू	हे भानवः
द्वि०	भानुम्	भानू	भानून्
तृ०	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
च०	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पं०	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
ष०	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
स०	भानौ	भान्वोः	भानुषु

शत्रु, रिपु, विष्णु, गुरु, ऊरु (जाँघ), जन्तु, प्रभु, शिशु, विधु (चन्द्रमा), पशु, शम्भु, वेणु (बाँस) इत्यादि समस्त उकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप भानु की तरह चलते हैं।

४९—ऊकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

स्वयम्भू—ब्रह्मा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
सं०	हे स्वयम्भूः	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुवः
द्वि०	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः
च०	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
पं०	स्वयम्भुवः	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
ष०	स्वयम्भुवः	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भूषु

सुभ्रू (सुन्दर भौं वाला), स्वभू (स्वयं पैदा हुआ), प्रतिभू, (जामिन) के रूप इसी प्रकार होते हैं।

५०—ऋकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

(क) पितृ—बाप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
पं०	पितुः	,,	,,
ष०	,,	पित्रोः	पितॄणाम्
स०	पितरि	,,	पितृषु

भ्रातृ (भाई), देवृ (देवर), जामातृ (दामाद) इत्यादि पुंलिङ्ग सम्बन्धसूचक ऋकारान्त शब्दोंके रूप पितृ के समान होते हैं।

(ख) नृ—मनुष्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा०	ना	नरौ	नरः
सं०	हे नः	हे नरौ	हे नरः
द्वि०	नरम्	नरौ	नॄन्
तृ०	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
च०	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पं०	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
ष०	नुः	न्रोः	नृणाम् / नॄणाम्
स०	नरि	न्रोः	नृषु

(ग) दातृ—देने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दाता	दातारौ	दातारः
सं०	हे दातः	हे दातारौ	हे दातारः
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
च०	दात्रे	,,	दातृभ्यः
पं०	दातु	,,	,,
ष०	,,	दात्रोः	दातॄणाम्
स०	दातरि	,,	दातृषु

धातृ (ब्रह्मा), कर्तृ (करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), नेतृ (ले जाने वाला), कर्तृ (कोई कार्य करने वाला) आदि शब्दों के तथा नप्तृ (पोता) के रूप दातृ के समान चलते हैं।

५१—ऐकारान्त पुलिङ्ग शब्द

रै—धन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	राः	रायौ	रायः
सं०	हे राः	हे रायौ	हे रायः
द्वि०	रायम्	रायौ	रायः

तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पं०	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
ष०	रायः	रायो	रायाम्
स०	रायि	रायोः	रासु

५२—ओकारान्त पुंलिङ्ग

गो—साँड़, बैल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गौः	गावौ	गावः
सं०	हे गौ	हे गावौ	हे गावः
द्वि०	गाम्	गावौ	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पं०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
ष०	गोः	गवोः	गवाम्
स०	गवि	गवोः	गोषु

समस्त ओकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

५३—औकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
सं०	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पं०	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
ष०	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु

और भी औकारान्त पंलिङ्ग शब्दो के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
स	हे फल	हे फले	हे फलानि

तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पं०	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
ष०	रायः	रायोः	रायाम्
स०	रायि	रायोः	रासु

५२—ओकारान्त पुंलिङ्ग

गो—साँड़, बैल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गौः	गावौ	गावः
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः
द्वि०	गाम्	गावौ	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पं०	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
ष०	गोः	गवोः	गवाम्
स०	गवि	गवोः	गोषु

समस्त ओकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

५३—ओकारान्त पुंलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
सं०	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य.
पं०	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
ष०	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु

और भी औकारान्त पुंलिङ्ग शब्दो के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
स	हे फल	हे फले	हे फलानि

अक्षि—आँख

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
सं०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि
द्वि०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभि
च०	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
प०	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
ष०	अक्ष्ण.	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
स०	अक्षिण, अक्षणि	अक्ष्णो	अक्षिषु

अस्थि और सक्थि के रूप भी इसी प्रकार होते है।

(ग) जब इकारान्त तथा उकारान्त विशेषण शब्दो का प्रयोग नपुंसक लिङ्ग वाले संज्ञा शब्दो के साथ होता है तो उनके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियो के एक वचन मे और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में विकल्प करके इकारान्त तथा उकारान्त पुंलिङ्ग शब्दो के समान होते हैं, जैसे—शुचि (पवित्र), गुरु (भारी)।

शुचि (पवित्र)

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
सं०	हे शुचि, शुचे	हे शुचिनी	हे शुचीनि
द्वि०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
तृ०	शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
च०	शुचये, शुचिने	,,	शुचिभ्यः
पं०	शुचेः, शुचिनः	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
ष०	,, ,,	शुच्योः, शुचिनोः	शुचीनाम्
स०	शुचौ, शुचिनि	,, ,,	शुचिषु

५६—उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

वस्तु—चीज़

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
सं०	हे वस्तु, हे वस्तो	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि
द्वि०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
तृ०	वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभिः

च०	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
पं०	वस्तुन	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य
ष०	वस्तुनः	वस्तुनोः	वस्तूनाम्
स०	वस्तुनि	वस्तुनोः	वस्तुषु

दारु (काठ), जानु (घुटना), जतु (लाख), जत्रु (कंधे की संधि), तालु, मधु (शहद), [सानु (पर्वत की चोटी पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग भी] इत्यादि शब्दों के रूप वस्तु के समान होते हैं।

(क) उकारान्त विशेषण शब्दों के रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एक वचन में तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुंलिङ्ग शब्द के समान विकल्प करके होते है, जैसे—बहु (बहुत)।

बहु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	बहु	बहुनी	बहूनि
सं०	हे बहु, बहो	हे बहुनी	हे बहूनि
द्वि०	बहु	बहुनी	बहूनि
तृ०	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभिः
च०	बहुने, बहवे	बहुभ्याम्	बहुभ्यः

[पं]०	बहो:, बहुनः	बहुभ्याम्	बहुभ्य
ष०	बहो बहुन	बह्वोः, बहुनो	बहूनाम्
स०	बहौ, बहुनि	बह्वो, बहुनोः	बहुषु

इसी प्रकार मृदु, कटु, लघु, पटु इत्यादि के रूप होते हैं।

५७—ऋकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द

कर्तृ, नेतृ, धातृ, रक्षितृ, इत्यादि शब्द विशेषण हैं, इसलिए इनका प्रयोग तीनो लिङ्गो में होता है। यहाँ पर नपुंसकलिङ्ग के रूप दिखाए जाते हैं :—

कर्तृ—करने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
सं०	हे कर्तृ हे कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि
द्वि०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
तृ०	कर्त्रा कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च०	कर्त्रे कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
पं०	कर्तुः कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः

ष०	कर्तुः कर्तृणः	कर्त्रोः कर्तृणोः	कर्तॄणाम्
स०	कर्तरि	कर्त्रोः कर्तृणोः	कर्तृषु

इसी प्रकार धातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप होते हैं।

५८—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

विद्या

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विद्या	विद्ये	विद्याः
सं०	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्याः
द्वि०	विद्याम्	विद्ये	विद्याः
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
च०	विद्यायै	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
पं०	विद्यायाः	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
ष०	विद्यायाः	विद्ययोः	विद्यानाम्
स०	विद्यायाम्	विद्ययोः	विद्यासु

रमा (लक्ष्मी), बाला (स्त्री), निशा (रात), कन्या, ला(स्त्री), भार्या (स्त्री), वडवा (घोड़ी), राधा, सुमित्रा, त

कौसल्या, कला इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप विद्या के समान होते हैं।

५९—इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

रुचि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	रुचिः	रुची	रुचयः
सं०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचय
द्वि०	रुचिम्	रुची	रुचीः
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
च०	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
पं०	रुच्याः, रुचेः	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
ष०	रुच्याः, रुचेः	रुच्योः	रुचीनाम्
स०	रुच्याम्, रुचौ	रुच्योः	रुचिषु

धूलि (धूर), मति, बुद्धि, गति, शुद्धि, भक्ति, शक्ति, धृति, स्मृति, शान्ति, नीति, रीति, रात्रि, जाति, पङ्क्ति, गीति इत्यादि सभी इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप रुचि के समान होते हैं।

६०—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्य.
स०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	,,	नदीभ्यः
पं०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभ्य'
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु

"स्त्री" आदि कुछ शब्दों को छोड़कर सभी ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं, जैसे—राज्ञी (रानी), गौरी, पार्वती, जानकी, अरुन्धती, नदी, पृथ्वी, नन्दिनी, द्रौपदी, कैकेयी, देवी, पाञ्चाली, त्रिलोकी, पञ्चवटी, अटवी (जंगल), गान्धारी, कादम्बरी, कौमुदी (चन्द्रमा की रोशनी), माद्री, कुन्ती, देवकी, सावित्री, गायत्री, कमलिनी, नलिनी इत्यादि।

(क) केवल अवी (रजस्वला स्त्री), तरी (नाव), तन्त्री (वीणा), लक्ष्मी, स्तरी (धुआँ) के प्रथमा के एक वचन में भेद होता है, जैसे :—

प्रथमा एक वचनः—अवीः, तरीः, तन्त्रीः, लक्ष्मीः, स्तरीः ।

लक्ष्मी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
स०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः
द्वि०	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
च०	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
पं०	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
ष०	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु

स्त्री

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
स०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः

च०	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः	,,	,,
ष०	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु

६१—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

श्री—लक्ष्मी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
सं०	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः
द्वि०	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्यः
पं०	श्रियाः, श्रियः	,,	,,
ष०	,, ,,	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
स०	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु

भी (डर), ह्री (लज्जा), धी (बुद्धि), सुश्री इत्यादि के रूप श्री के समान होते हैं।

६२—उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

धेनु—गाय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेनवे, धेन्वै	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पं०	धेनोः, धेन्वाः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
ष०	धेनोः, धेन्वाः	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेनौ, धेन्वाम्	धेन्वोः	धेनुषु

तनु (शरीर), रेणु [(धूलि) पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी], हनु [(ठुड्डी), पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी] इत्यादि सभी उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

६३—ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

वधू—बहू

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः

सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	,,	वधूषु

चमू (सेना), रज्जू (रस्सी), श्वश्रू (सास), कर्कन्धू (बेर) इत्यादि सभी ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

(क) भू—पृथ्वी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भूः	भुवौ	भुवः
सं०	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः
द्वि०	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृ०	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
च०	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पं०	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
ष०	भुवाः, भुवः	भुवोः	भुवाम्, भूनाम्
स०	भुवाम्, भुवि	भुवोः	भूषु

भ्रू (भौं) के रूप इसी प्रकार होते है।

स्त्रीलिङ्ग बहुव्रीहि समास वाले "सुभ्रू" शब्द के रूप भ्रू से भिन्न होते है :—

(ख) सुभ्रू—सुन्दर भौं वाली स्त्री

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुभ्रूः	सुभ्रुवौ	सुभ्रुवः
सं०	हे सुभ्रु	हे सुभ्रुवौ	हे सुभ्रुवः
द्वि०	सुभ्रुवम्	सुभ्रुवौ	सुभ्रुवः
तृ०	सुभ्रुवा	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभिः
च०	सुभ्रुवे	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभ्य·
पं०	सुभ्रुवः	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभ्यः
ष०	सुभ्रुवः	सुभ्रुवोः	सुभ्रुवाम्
स०	सुभ्रुवि	सुभ्रुवो·	सुभ्रूषु

६४—ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

मातृ—माता

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	माता	मातरौ	मातर
सं०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः
द्वि०	मातरम्	मातरौ	मातृः

तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०	मात्रे	"	मातृभ्यः
पं०	मातुः	"	"
ष०	"	मात्रोः	मातृणाम्
स०	मातरि	"	मातृषु

यातृ (देवरानी), दुहितृ (लड़की) के रूप मातृ के सम होते हैं।

स्वसृ—बहिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
सं०	हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः
द्वि०	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः
तृ०	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
च०	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
पं०	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
ष०	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्
स०	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु

६५—ऐकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के तथा ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग गो आदि शब्दों के रूप पुंलिङ्ग के समान होते हैं। ओकारान्त

स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुंलिङ्ग के समान होते है।
उदाहरणार्थ—नौ।

औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नौ—नाव

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नौ	नावौ	नावः
सं०	हे नौः	हे नावौ	हे नावः
द्वि०	नावम्	नावौ	नावः
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्य.
पं०	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
ष०	नाव·	नावोः	नावाम्
स०	नावि	नावोः	नौषु

इसी प्रकार द्यौ (आकाश) तथा और भी औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते है।

व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ

नोट—ऊपर स्वरान्त संज्ञाओं का क्रम सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ सभी लिङ्गों मे प्राय: एकसी चलती हैं, इस लिए यहाँ पर वे [illegible]क्रम मे रक्खी गई है ।

६६—चकारान्त शब्द

(क) पुंलिङ्ग जलमुच्—बादल

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः
सं०	हे जलमुक्	हे जलमुचौ	हे जलमुच
द्वि०	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भि.
च०	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
पं०	जलमुच.	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
प०	जलमुच.	जलमुचोः	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	जलमुचो·	जलमुक्षु

सत्यवाच् आदि सभी चकारान्त शब्दो के रूप इसी प्रकार होते है। केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उदञ्च् के रूपो में कुछ भेद होता है। ये सब शब्द अञ्च् (जाना) धातु से बने है।

प्राञ्च् (पूर्वी) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राचः
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
पं०	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
ष०	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
स०	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु

प्रत्यञ्च् (पश्चिमी) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
सं०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्चः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
च०	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
पं०	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
ष०	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु

तिर्य्यञ्च् (तिरछा जाने वाला) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
सं०	हे तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
पं०	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
ष०	तिरश्चः	तिरश्चो	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु

उदञ्च् (उत्तरी) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः
सं०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः
द्वि०	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीचः
तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः
च०	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
पं०	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्य
ष०	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
स०	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु

(ख) स्त्रीलिङ्ग वाच्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
सं०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु

रुच्, त्वच् (चमड़ा, पेड़ की छाल), शुच् (सोच), ऋच् (ऋग्वेद के मन्त्र) इत्यादि सभी चकारान्त स्त्री लिङ्ग शब्दों के रूप वाच् के तरह होते हैं।

६७—जकारान्त शब्द

(क) पुं० ऋत्विज् (पुजारी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ऋत्विक्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
सं०	हे ऋत्विक्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः

तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः
च०	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
प०	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
ष०	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
स०	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु

भूभुज् (राजा), हुतभुज् (अग्नि), भिषज् (वैद्य), वणिज् (वनिया), पयोमुच् (बादल) के रूप ऋत्विज् के समान होते हैं

भिषज्—वैद्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भिषक्	भिषजौ	भिषजः
सं०	हे भिषक्	हे भिषजौ	हे भिषजः
द्वि०	भिषजम्	भिषजौ	भिषज
तृ०	भिषजा	भिषग्भ्याम्	भिषग्भिः

इत्यादि ।

वणिज्—वनिया

प्र०	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
सं०	हे वणिक्	हे वणिजौ	हे वणिजः
द्वि०	वणिजम्	वणिजौ	वणिज
तृ०	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः

इत्यादि ।

पयोमुच्—बादल

प्र०	पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुचः

सं०	हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः

इत्यादि ।

परिव्राज्—सन्यासी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राजः
सं०	हे परिव्राट्	हे परिव्राजौ	हे परिव्राजः
द्वि०	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राजः
तृ०	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
च०	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
पं०	परिव्राज	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
ष०	परिव्राजः	परिव्राजोः	परिव्राजाम्
स०	परिव्राजि	परिव्राजोः	परिव्राट्सु

इसी प्रकार सम्राज् (महाराजा), विश्वसृज् (संसार का रचने वाला), विराज् (बड़ा) के रूप होते हैं ।

सम्राज्

प्र०	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राजः
द्वि०	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः

तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान ।

विराज्

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्र०	विराट्	विराजौ	विराजः
द्वि०	विराजम्	विराजौ	विराजः
तृ०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान ।

(ख) स्त्री० स्रज्—माला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्रक्	स्रजौ	स्रजः
सं०	हे स्रक्	हे स्रजौ	हे स्रजः
द्वि०	स्रजम्	स्रजौ	स्रजः
तृ०	स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः
च०	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्य.
पं०	स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्य
ष०	स्रज·	स्रजो·	स्रजाम्
स०	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु

रुज् (रोग) के भी रूप स्रज् के समान होते हैं ।

(ग) नपुं० असृज्—लोहू

प्र०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
सं०	हे असृक	हे असृजी	हे असृञ्जि
द्वि०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
तृ०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भिः
च०	असृजे	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
पं०	असृजः	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
ष०	असृजः	असृजोः	असृजाम्
स०	असृजि	असृजोः	असृक्षु

सभी जकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप असृज् के समान होते हैं।

६८—तकारान्त शब्द

(क) पुलिङ्ग भूभृत्—राजा, पहाड़

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
सं०	हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः
द्वि०	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृ०	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः

च०	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पं०	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
प०	भूभृत	भूभृतो	भूभृताम्
स०	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु

महीभृत् (राजा, पहाड़), दिनकृत् (सूर्य), गगभृत् (चन्द्रमा), परभृत् (कोयल), मरुत् (वायु), विश्वजित् (ससार का जीतने वाला या एक प्रकार का यज्ञ) के रूप भूभृत् के समान होते हैं।

श्रीमत्—भाग्यवान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्रीमान्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्त.
सं०	हे श्रीमन्	हे श्रीमन्तौ	हे श्रीमन्तः
द्वि०	श्रीमन्तम्	श्रीमन्तौ	श्रीमत
तृ०	श्रीमता	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भिः
च०	श्रीमते	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्यः
प०	श्रीमतः	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्य
ष०	श्रीमतः	श्रीमतोः	श्रीमताम्
स०	श्रीमति	श्रीमतो	श्रीमत्सु

धीमत् (बुद्धिमान्), बुद्धिमत्, भानुमत् (चमकने वाला), मानुमत् (पहाड़), धनुष्मत् (धनुर्धारी), अंशुमत् (सूर्य), विद्यावत्

(विद्यावाला), वलवत् (वलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत् (भाग्यवान्), गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुन चुका हुआ) के रूप श्रीमत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग मे इनके जोड़ के प्रातिपदिक ई प्रत्यय लगाकर श्रीमती, बुद्धिमती आदि बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के समान चलते हैं।

भवत्—आप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
स०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
पं०	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
ष०	भवतः	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	भवतोः	भवत्सु

इसीसे स्त्रीलिङ्ग भवती शब्द बनता है।

महत्—बड़ा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
सं०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पं०	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
ष०	महतः	महतोः	महताम्
स०	महति	महतोः	महत्सु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द महती है।

पठत्—पढ़ता हुआ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः
सं०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः
द्वि०	पठन्तम्	पठन्तौ	पठतः
तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
च०	पठते	पठद्भ्याम्	पठद्भ्यः
पं०	पठतः	पठद्भ्याम्	पठद्भ्यः
ष०	पठतः	पठतोः	पठताम्
स०	पठति	पठतोः	पठत्सु

धावत् (दौड़ता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत्
ोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ), गृह्णत् (लेता हुआ),
तत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत्
पीता हुआ), भवत् (होता हुआ) इत्यादि सभी शतृ
पयान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप पठत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग
पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं और रूप नदी के समान चलते हैं।

दत्—दांत

द्वि०			दत
तृ०	दता	दद्भ्याम्	दद्भिः
च०	दते	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
पं०	दतः	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
ष०	दतः	दतोः	दताम्
स०	दति	दतोः	दत्सु

नोट—इस शब्द के प्रथम पाँच रूप संस्कृत में नहीं पाए जाते, इनके स्थान पर स्वरान्त दन्त शब्द के रूपों का प्रयोग होता है।

(ख) स्त्रीलिङ्ग सरित्—नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सरित्	सरितौ	सरितः
सं०	हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः

द्वि०	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
च०	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य
पं०	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
ष०	सरितः	सरितो·	सरिताम्
स०	सरिति	सरितोः	सरित्सु

विद्युत् (बिजली), योषित् (स्त्री) के रूप सरित् के समान चलते हैं।

(ग) नपुं० जगत्—संसार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जगत् जगद्	जगती	जगन्ति
सं०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति
द्वि०	जगत्	जगती	जगन्ति
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भि'
च०	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
पं०	जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य'
ष०	जगतः	जगतोः	जगताम्
स०	जगति	जगतोः	जगत्सु

श्रीमत्, भवत् (होता हुआ), तथा और भी तकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप जगत् के समान होते हैं।

नपुंसकलिङ्ग महत् शब्द

प्र०	महत्	महती	महान्ति
सं०	हे महत्	हे महती	हे महान्ति
द्वि०	महत्	महती	महान्ति

शेष रूप जगत् के समान होता है।

६९—दकारान्त शब्द

(क) पुंलिङ्ग सुहृद्—मित्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुहृत्, सुहृद्	सुहृदौ	सुहृदः
सं०	हे सुहृत्, सुहृद्	हे सुहृदौ	हे सुहृदः
द्वि०	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृ०	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
च०	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पं०	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
ष०	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
स०	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु

हृदयच्छिद् (हृदय को छेदनेवाला), मर्मभिद्, सभासद् (सभा में बैठनेवाला), तमोनुद् (सूर्य), धर्मविद् (धर्म को जानने

वाला), हृदयन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचानेवाला) इत्यादि दकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रुप सुहृद् के समान होते हैं।

पद्—पैर

द्वि०			पदः
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
च०	पदे	पद्भ्याम्	पद्भ्यः
पं०	पदः	पद्भ्याम्	पद्भ्यः
ष०	पदः	पदोः	पदाम्
स०	पदि	पदोः	पत्सु

नोट—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप नहीं होते। आवश्य पड़ने पर अकारान्त, पद, के रूपों का प्रयोग होता है।

(क) स्त्री० दृषद्—पत्थर, चट्टान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दृषद्	दृषदौ	दृषदः
सं०	हे दृषद्	हे दृषदौ	हे दृषदः
द्वि०	दृषदम्	दृषदौ	दृषदः
तृ०	दृषदा	दृषद्भ्याम्	दृषद्भिः
च०	दृषदे	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्यः
पं०	दृषदः	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्य

ष०	दृषदः	दृषदोः	दृषदाम्
स०	दृषदि	दृषदोः	दृषत्सु

शरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), संसद् (सभा) के रूप दृषद् के समान होते हैं ।

(ख) नपुं० हृद्—हृदय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हृत्	हृदी	हृन्दि
सं०	हे हृत्	हे हृदी	हे हृन्दि
द्वि०	हृत्	हृदी	हृन्दि
तृ०	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भिः
च०	हृदे	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
प०	हृदः	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
ष०	हृदः	हृदोः	हृदाम्
स०	हृदि	हृदोः	हृत्सु

७०—धकारान्त शब्द

स्त्री० समिध्—यज्ञ की लकड़ी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	समित्	समिधौ	समिधः
सं०	हे समित्	हे समिधौ	हे समिधः

द्वि०	समिधम्	समिधौ	समिधः
तृ०	समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः
च०	समिधे	समिद्भ्याम्	समिद्भ्यः
पं०	समिधः	समिद्भ्याम्	समिद्भ्यः
ष०	समिधः	समिधोः	समिधाम्
स०	समिधि	समिधोः	समित्सु

वीरुध् (लता), क्षुध् (भूख), क्रुध् (क्रोध), युध् (युद्ध) इत्यादि सभी धकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप समिध् के समान होते हैं।

७१—नकारान्त शब्द

पुं० आत्मन्—आत्मा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
सं०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः
द्वि०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
च०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पं०	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
ष०	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), सुशर्मन् (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का नाम), कृतवर्मन् (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान चलते है।

नोट—आत्मा शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग मे प्रयुक्त होता है, किन्तु संस्कृत में यह शब्द पुंलिङ्ग है, यह ध्यान में रखना चाहिए।

पुं० राजन्—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
स०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभि:
च०	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
प०	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
ष०	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द राज्ञी (ईकारान्त) है जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पुं० महिमन्—बड़प्पन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महिमा	महिमानौ	महिमानः
सं०	हे महिमन्	हे महिमानौ	हे महिमानः
द्वि०	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृ०	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
च०	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पं०	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
ष०	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
स०	महिम्नि / महिमनि	महिम्नोः	महिमसु

मूर्धन् (शिर), सीमन् [(चौहद्दी) स्त्रीलिङ्ग], गरिमन् (बड़प्पन), लघिमन् (छोटापन), अणिमन् (छोटापन), शुक्लिमन् (सफेदी), कालिमन् (कालापन), द्रढिमन् (मज़बूती), अश्वत्थामन् इत्यादि समस्त अन्नन्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप महिमन् के समान होते हैं।

नोट – हिन्दी में महिमा, कालिमा, नीलिमा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त किए जाते हैं, किन्तु संस्कृत में पुलिङ्ग में, इसका ध्यान रखना चाहिए।

पुं० युवन्—जवान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
सं०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः
द्वि०	युवानम्	युवानौ	यून
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
च०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
प०	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्य
ष०	यूनः	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	यूनोः	युवसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द युवती है जिसके रूप नदी के मान चलते हैं।

पुं० श्वन्—कुत्ता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
सं०	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः
द्वि०	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः

पं०	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
ष०	शुनः	शुनोः	शुनाम्
स०	शुनि	शुनोः	श्वसु

पु० अर्वन्—घोड़ा, इन्द्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्तः
सं०	हे अर्वन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्तः
द्वि०	अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वतः
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
च०	अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
प०	अर्वतः	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
ष०	अर्वतः	अर्वतोः	अर्वताम्
स०	अर्वति	अर्वतोः	अर्वत्सु

पु० मघवन्—इन्द्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवानः
सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः
द्वि०	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः

तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पं०	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
ष०	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनोः	मघवसु

मघवन् का रूप विकल्प करके इस प्रकार भी होता है:—

प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
सं०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
पं०	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
ष०	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
स०	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु

पु० पूषन्—सूर्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूषा	पूषणौ	पूषणः
सं०	हे पूषन्	हे पूषणौ	हे पूषणः
द्वि०	पूषणम्	पूषणौ	पूष्णः
तृ०	पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभिः

च०	पूष्णे	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
पं०	पूष्णः	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
ष०	पूष्णः	पूष्णोः	पूष्णाम्
स०	पूष्णि, पूषणि	पूष्णोः	पूषसु

पुं० हस्तिन्—हाथी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिनः
स०	हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिनः
द्वि०	हस्तिनम्	हस्तिनौ	हस्तिनः
त०	हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभिः
च०	हस्तिने	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्यः
पं०	हस्तिनः	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्यः
ष०	हस्तिनः	हस्तिनोः	हस्तिनाम्
स०	हस्तिनि	हस्तिनोः	हस्तिषु

स्वामिन्, करिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), वाजि[न्] शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी, चिड़िया), धनिन् (धनी), वाजि[न्] (घोड़ा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), बलि[न्] (बली), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सच बोलने वाला ... भाविन् इत्यादि इन् में अन्त होनेवाले शब्दों के रूप हस्तिन् ... समान होते हैं।

इन्नन्त शब्दो के जोड़ के स्त्रीलिङ्ग शब्द ईकार जोड़ कर हस्तिनी, एकाकिनी, भाविनी आदि ईकारान्त होते है जिनके रूप नदी के समान चलते है।

पथिन् शब्द के रूपो में जो भेद होता है वह नीचे दिखाया जाता है :—

पुंलिङ्ग पथिन्—मार्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
स०	हे पन्थाः	हे ,,	हे पन्थान·
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथ.
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि·
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्य.
पं०	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०	पथ·	पथो·	पथाम्
स०	पथि	पथो.	पथिषु

(क) स्त्री० सीमन्—चौहद्दी

सीमन् के रूप महिमन् के समान होते है, जैसे :—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सीमा	सीमानौ	सीमान.
स०	हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमान.

द्वि०	सीमानम्	सीमानौ	सीम्नः
तृ०	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभि·
च०	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
पं०	सीम्नः	सीमभ्याम्	सीमभ्य·
ष०	सीम्नः	सीम्नो·	सीम्नाम्
स०	{ सीम्नि सीमनि	सीम्नोः	सीमसु

(ख) नपुं० नामन्—नाम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
स०	हे नाम, हे नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि
द्वि०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्य
प०	नाम्न·	नामभ्याम्	नाम॰य
ष०	नाम्न	नाम्नो·	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्ना	नामसु

धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (साम वेद का मन्त्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्सी) के रूप नामन् के समान होते हैं।

नपुं० चर्मन्—चमड़ा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
सं०	हे चर्म, हे चर्मन्	हे चर्मणी	हे चर्माणि
द्वि०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
तृ०	चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभिः
च०	चर्मणे	चर्मभ्याम्	चर्मभ्यः
पं०	चर्मणः	चर्मभ्याम्	चर्मभ्यः
ष०	चर्मणः	चर्मणोः	चर्मणाम्
स०	चर्मणि	चर्मणोः	चर्मसु

पर्वन् (पौर्णमासी, या अमावास्या या त्योहार), ब्रह्मन् (ब्रह्म), र्मन् (कवच, जिरह बख्तर), जन्मन् (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), र्मन् (सुख) के रूप चर्मन् के समान होते हैं।

नपुं० अहन्—दिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
सं०	हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि
द्वि०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः

पं०	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
ष०	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु, अहस्सु

नपुं० भाविन्—होने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भावि	भाविनी	भावीनि
सं०	हे भावि	हे भाविनी	हे भावीनि
द्वि०	भावि	भाविनी	भावीनि
तृ०	भाविना	भाविभ्याम्	भाविभिः
च०	भाविने	भाविभ्याम्	भाविभ्य
पं०	भाविनः	भाविभ्याम्	भाविभ्यः
ष०	भाविनः	भाविनोः	भाविनाम्
स०	भाविनि	भाविनोः	भाविषु

इसी प्रकार सभी इन्नन्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

७२—पकारान्त शब्द

स्त्री० अप्—पानी

अप् के रूप केवल बहुवचन में होते हैं :—

	बहुवचन
प्र०	आपः
सं०	हे आपः

द्वि०	अपः
तृ०	अद्भि
च०	अद्भ्यः
पं०	अद्भ्यः
ष०	अपाम्
स०	अप्सु

७३–भकारान्त शब्द

स्त्री० ककुभ्—दिशा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ककुप	ककुभौ	ककुभः
सं०	हे ककुप्	हे ककुभौ	हे ककुभः
द्वि०	ककुभम्	ककुभौ	ककुभः
तृ०	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः
च०	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
पं०	ककुभ	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
ष०	ककुभ	ककुभोः	ककुभाम्
स०	ककुभि	ककुभो	ककुप्सु

इसी प्रकार अन्य भकारान्त शब्दों के रूप होते हैं।

७४—रकारान्त शब्द

नपुं० वार्—पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वाः	वारी	वारि
द्वि०	वाः	वारी	वारि
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
च०	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
पं०	वारः	"	"
ष०	"	वारोः	वाराम्
स०	वारि	"	वार्षु

(क) स्त्री० गिर्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गीः	गिरौ	गिरः
सं०	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पं०	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
ष०	गिरः	गिरोः	गिराम्
स०	गिरि	गिरोः	गीर्षु

स्त्री० पुर्—नगर

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूः	पुरौ	पुर
स०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
च०	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पं०	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
ष०	पुरः	पुरो	पुराम्
स०	पुरि	पुरोः	पूर्षु

धुर् (धुरा) के रूप भी इसी प्रकार होते है।

७५—वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्—आकाश, स्वर्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्यौ	दिवौ	दिव
स०	हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिव
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
च०	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः

पं०	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
ष०	दिवः	दिवोः	दिवाम्
स०	दिवि	दिवोः	द्युषु

७६–शकारान्त शब्द

पुं० विश्—बनिया

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विट्	विशौ	विशः
सं०	हे विट्	हे विशौ	हे विशः
द्वि०	विशम्	विशौ	विशः
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पं०	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
ष०	विशः	विशोः	विशाम्
स०	विशि	विशोः	विट्सु

पुं० तादृश्—उसके समान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृक्	तादृशौ	तादृशः
सं०	हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः

द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
च०	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
पं०	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
ष०	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
स०	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु

यादृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आप के समान), त्वादृश् (तुम्हारे समान), एतादृश् (इसके समान) इत्यादि के रूप तादृश् के समान होते हैं।

इनके जोड़ वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द तादृशी मादृशी, यादृशी, भवादृशी आदि है जिनके रूप नदी के समान चलते है।

नपुंसक लिङ्ग में तादृश्, मादृश्, त्वादृश् इत्यादि के रूप इस प्रकार होंगे :—

नपुं० तादृश्—उसके समान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृक्	तादृशी	तादृंशि
सं०	हे तादृक्	हे तादृशी	हे तादृंशि
द्वि०	तादृक्	तादृशी	तादृंशि
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि

इत्यादि पुंलिङ्ग के समान।

तादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश् इत्यादि के जोड़के अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि है और उनके रूप अकारान्त शब्दो के समान होते हैं जैसा कि नियम ४८ में पहिले ही दिखा चुके हैं।

(क) स्त्री० दिश्—दिशा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः
सं०	हे दिक् दिग्	हे दिशौ	हे दिशः
द्वि०	दिशम्	दिशौ	दिशः
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
पं०	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
ष०	दिशः	दिशोः	दिशाम्
स०	दिशि	दिशोः	दिक्षु

स्त्री० निश्—रात

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	निशम्	निशौ	निशः
तृ०	निशा	निज्भ्याम् निड्भ्याम्	निज्भिः निड्भिः

च०	निशे	निज्भ्याम् निड्भ्याम्	निज्भ्यः निड्भ्य·
पं०	निशः	निज्भ्याम् निड्भ्याम्	निज्भ्यः निड्भ्यः
ष०	निश	निशोः	निशाम्
स०	निशि	निशोः	निच्षु निट्सु निट्त्सु

७७—षकारान्त शब्द

पुं० द्विष्—शत्रु

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	द्विट्	द्विषौ	द्विषः
सं०	हे द्विट्	हे द्विषौ	हे द्विषः
द्वि०	द्विषम्	द्विषौ	द्विष
तृ०	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः
च०	द्विषे	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्य·
पं०	द्विष	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्य
ष०	द्विषः	द्विषो	द्विषाम्
स०	द्विषि	द्विषोः	द्विट्सु

स्त्री० प्रावृष्—वर्षा ऋतु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृषः
सं०	हे प्रावृट्, प्रावृड्	हे प्रावृषौ	हे प्रावृषः
द्वि०	प्रावृषम्	प्रावृषौ	प्रावृषः
तृ०	प्रावृषा	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भिः
च०	प्रावृषे	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
पं०	प्रावृषः	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
ष०	प्रावृषः	प्रावृषोः	प्रावृषाम्
स०	प्रावृषि	प्रावृषोः	प्रावृट्सु

७८—सकारान्त शब्द

पुं० चन्द्रमस्—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
सं०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
पं०	चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
ष०	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमःसु-स्सु

दिवौकस् (देवता), महौजस् (बड़ा तेजवाला), वेधस् ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छा चित्त वाला), महायशस् (बड़ा यशस्वी), महातेजस् (बड़ी कान्ति वाला), विशालवक्षस् बड़ी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा—बुरे कपड़ों वाला), प्रचेतस् इत्यादि सभी सकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप चन्द्रमस् के समान होते हैं।

पु० मास्—महीना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०			मासः
तृ०	मासा	माभ्याम्	माभिः
च०	मासे	माभ्याम्	माभ्यः
पं०	मासः	माभ्याम्	माभ्यः
ष०	मासः	मासोः	मासाम्
स०	मासि	मासोः	माःसु / मास्सु

पु० पुंस्—पुरुष

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
सं०	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः

तृ०	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भि
च०	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
पं०	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
प०	पुंस·	पुन्सो·	पुम्साम्
स०	पुंसि	पुसो	पुसु

पुं० विद्वस्—विद्वान्

	ए०व०	द्वि०	ब०व०
प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वास·
स०	हे विद्वन्	हे विद्वासौ	हे विद्वास·
द्वि०	विद्वासम्	, विद्वासौ	विदुष
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य.
प०	विदुष.	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
प०	विदुष·	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु

वस् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं।

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द "विदुषी" है, जिसके रूप नदी के समान चलते है।

पुं० लघीयस्—उससे छोटा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	लघीयान्	लघीयासौ	लघीयास
सं०	हे लघीयन्	हे लघीयांसौ	हे लघीयास

द्वि०	लघीयासम्	लघीयासौ	लघीयसः
तृ०	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभिः
च०	लघीयसे	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्य·
पं०	लघीयसः	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्यः
ष०	लघीयसः	लघीयसोः	लघीयसाम्
स०	लघीयसि	लघीयसोः	लघीयःसु, लघीयस्सु

श्रेयस्, गरीयस् (अधिक बड़ा,) द्रढीयस् (अधिक मज़बूत), द्राघीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा या बड़ा), इत्यादि ईयस् प्रत्यय से बने हुए पुलिङ्ग शब्दों के रूप लघीयस् के समान होते हैं ।

इनके जोड़ वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी, द्राघीयसी इत्यादि "ई" जोड़कर बनते है जिनके रूप नदी के समान चलते हैं ।

पु० श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्रेयान्	श्रेयासौ	श्रेयासः
स०	हे श्रेयन्	हे श्रेयासौ	हे श्रेयांसः
द्वि०	श्रेयासम्	श्रेयासौ	श्रेयसः
तृ०	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
च०	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः

पं०	श्रेयस	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्य.
ष०	श्रेयस	श्रेयसो	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	श्रेयसोः	श्रेयस्सु श्रेयःसु

पुं० दोस्—भुजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दो	दोषौ	दोष
सं०	हे दोः	हे दोषौ	हे दोष
द्वि०	दोः	दोषौ	दोषः,दोष्ण
तृ०	दोषा दोष्णा	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भिः दोषभिः
च०	दोषे दोष्णे	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्यः दोषभ्य
पं०	दोषः दोष्णः	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्य दोषभ्यः
ष०	दोष. दोष्ण	दोषो· दोष्णोः	दोषाम् दोष्णाम्
स०	दोषि दोष्णि दोषणि	दोषोः दोष्णोः	दोष्षु दाःषु दोषषु

(क) स्त्री० अप्सरस्-अप्सरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अप्सराः	अप्सरसौ	अप्सरस

सं०	हे अप्सरः	हे अप्सरसौ	हे अप्सरसः
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरसः
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभिः
च०	अप्सरसे	,,	अप्सरोभ्यः
पं०	अप्सरसः	,,	अप्सरोभ्यः
ष०	,,	अप्सरसोः	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	,,	अप्सरस्तु अप्सरःसु

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है।

स्त्री० आशिस्—आशीर्वाद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आशीः	आशिषौ	आशिषः
सं०	हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः
द्वि०	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
च०	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पं०	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
ष०	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
स०	आशिषि	आशिषोः	आशीःषु आशीष्षु

(ख) नपुं० पयस्—दूध वा पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पयः	पयसी	पयांसि

सं०	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि
द्वि०	पयः	पयसी	पयांसि
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च०	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्य
पं०	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
ष०	पयसः	पयसोः	पयसाम्
स०	पयसि	पयसोः	पयस्सु, प

अम्भस् (पानी), नभस् (आकाश), आगस् (पाप उरस् (छाती), मनस् (मन), वयस् (उम्र), रजस् (धूल वक्षस् (छाती), तमस् (अँधेरा), अयस् (लोहा), वच (वचन, बात), यशस् (यश, कीर्त्ति), सरस् (तालाब), तप (तपस्या), शिरस् (शिर), इत्यादि सभी असन्त नपुंसकलि शब्दों के रूप पयस् के समान होते हैं।

नपुं० हविस्—होम की वस्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हविः	हविषी	हवींषि
सं०	हे हविः	हे हविषी	हे हवींषि
द्वि०	हविः	हविषी	हवींषि
तृ०	हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भि
च०	हविषे	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यः

पं०	हविषः	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यः
ष०	हविषः	हविषोः	हविषाम्
स०	हविषि	हविषोः	हविःषु, हविष्षु

सब 'इस्' मे अन्त होनेवाले नपुंसक लिङ्ग शब्दो के रूप
[हवि]स् की तरह होते है।

नपुं० चक्षुस्—आँख

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
सं०	हे चक्षुः	हे चक्षुषी	हे चक्षूंषि
द्वि०	चक्षु	चक्षुषी	चक्षूंषि
तृ०	चक्षुषा	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भिः
च०	चक्षुषे	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
पं०	चक्षुषः	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
ष०	चक्षुषः	चक्षुषोः	चक्षुषाम्
स०	चक्षुषि	चक्षुषोः	चक्षुःषु, चक्षुष्षु

धनुस् (धनुष), वपुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस् (यजुर्वेद) इत्यादि सब 'उस्' में अन्त होने वाले नपुंसकलिङ्ग शब्दो के रूप चक्षुस् के समान होते हैं।

७९—हकारान्त शब्द

पुं० मधुलिह्—शहद की मक्खी, भौरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः
सं०	हे मधुलिट्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिहः
द्वि०	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृ०	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
च०	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पं०	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
ष०	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
स०	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु

पुं० अनडुह्—बैल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
सं०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
पं०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः

प०	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु

स्त्री० उपानह्—जूता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः
सं०	हे उपानत्, हे उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानहः
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पं०	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
ष०	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु

चतुर्थ सोपान

सर्वनाम-विचार

८०-हिन्दी में 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी संज्ञा के स्थान में आया हुआ शब्द' है और यह अर्थ अँगरेज़ी के 'प्रोनाउन' शब्द का भी है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५

शब्दों का बोध होता है जो सर्व शब्द से आरम्भ होते हैं और जिन रूप प्रायः एक से चलते है (सर्वादीनि सर्वनामानि)।

इन ३५ शब्दों में

(१) कुछ तो जिस अर्थ में हिन्दी में सर्वनाम शब्द आत है उस अर्थ में सर्वनाम है।

(२) कुछ विशेषण है, और

(३) कुछ संख्यावाची शब्द है।

इस परिच्छेद में केवल प्रथम श्रेणी के शब्दो पर विचार किय जायगा।

८१—उत्तम पुरुषवाची 'अस्मद्' शब्द के रूप इस प्रका चलते हैं :—

अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, न
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, न
पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत
ष०	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, न.
स०	मयि	आवयोः	अस्मासु

(क) इन में से 'मा, नौ, नः; मे, नौ, नः; मे, नौ, नः' ये वैकल्पिक रूप सब जगह प्रयोग मे नहीं लाए जा सकते। वाक्य के आरम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव इन अव्ययो के ठीक पूर्व तथा सम्बोधन शब्द (हरे बालक! आदि) के ठीक अनन्तर इनका प्रयोग वर्जित है; जैसे "मे गृहम्" कहना संस्कृत व्याकरण के अनुसार निषिद्ध है क्योकि 'मे' वाक्य के आरम्भ में है।

(ख) 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते। वक्ता चाहे पुरुष हो वा स्त्री 'अहं' का ही प्रयोग होगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियो में भी समझना चाहिए।

८२—मध्यमपुरुषवाची 'युष्मद्' शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं।

युष्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम् वः
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्

षष्ठी	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, व.
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

ऊपर ८२ (क) में उल्लिखित नियम युष्मद् शब्द के वैकल्पिक (त्वा, वाम्, वः ; ते, वाम्, वः; ते, वाम्, व,) रूपों पर भी ठीक उसी प्रकार लागू है। ८२ (ख) नियम भी यहाँ लागू है।

८३—संस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है। इसके रूप तीनों लिङ्गो और तीनो वचनो में चलते हैं और क्रिया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्य पुरुष वाची है। यथा—भवान् आगच्छतु, न कि भवान् आगच्छ। पुंलिङ्ग में इसके रूप श्रीमत् (देखिए ६८ के अन्तर्गत श्रीमत् शब्द के रूप) के समान भवान् भवन्तौ भवन्तः इत्यादि चलते है ; नपुंसक लिङ्ग में जगत् (देखिए ६८ (ग)) के समान 'भवत्, भवती, भवन्ति 'आदि होते है। स्त्रीलिङ्ग में यह शब्द 'भवती' ईकारान्त हो जाता है और नदी (देखिए ६०) के समान भवती, भवत्यौ, भवत्यः आदि इसके रूप होते हैं।

(क) भवत् के पूर्व कभी २ 'अत्र' और 'तत्र' शब्द जोड़कर 'अत्रभवत्' और ' तत्रभवत् ' शब्द होते है। इन शब्दो के रूप भी ठीक भवत् के समान चलते है, केवल अर्थ में थोड़ा भेद है। 'अत्रभवत्' का प्रयोग निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध में होता है और 'तत्रभवत्' दूरवर्ती के सम्बन्ध में; यथा—अत्रभवान् आचार्यः अस्मान् आज्ञापयति. तत्रभवान् कालिदासः प्रख्यातः कविरासीत्—इत्यादि।

८४—'यह' शब्द के लिए संस्कृत में दो शब्द है 'इदम्' और 'एतद्'। इसी प्रकार 'वह' के लिए भी दो शब्द है 'तद्' और 'अदस्'। इनके प्रयोग में कुछ भेद है वह इस प्रकार है :—

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अर्थात् 'इदम्' शब्द के रूपो का प्रयोग तब करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो ; यदि किसी बहुत ही निकट की वस्तु का बोध कराना हो तो 'एतद्' शब्द के रूपो का प्रयोग करना चाहिए। यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'अदस्' शब्द के रूपो को काम में लाना चाहिए। 'तद्' शब्द के रूपो का प्रयोग केवल ऐसी वस्तुओ के विषय में करना चाहिए जो सामने नहीं हैं—परोक्ष है। उदाहरणार्थ यदि मेरे पास दो पुरुष बैठे है तो जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में 'एतद्' शब्द और जो ज़रा दूर है उसके विषय में 'इदम्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई बात कहनी है तो अदस् शब्द का प्रयोग करेंगे। 'तद्' शब्द का प्रयोग ऐसे लोगो के विषय में होगा जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं हैं।

इन चारो शब्दो के रूप तीनो लिङ्गो में चलते है जो कि नीचे दिखाए जाते है :—

इदम् और एतद् के रूपो को देखने से प्रकट होगा कि इनके कुछ वैकल्पिक रूप भी हैं—इदम् के (पुं०) एनम्, एनौ, एनान्, एनेन; एनयोः; एनयोः; (नपुं०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयोः; एनयोः, और (स्त्री०) एनाम्, एने, एनाः, एनया; एनयोः, एनयोः। एतद् के भी ये ही रूप है। इन विशेष रूपो का प्रयोग तब होता है जब इदम् शब्द अथवा एतद् शब्द के साधारण रूपो में से किसी का प्रयोग हो चुका होता है और फिर उसी वस्तु के विषय में कुछ और बात कहनी रहती है, यथा—

एतद् वस्त्रं सुष्ठु धावयमैनत् पाटय—इस कपडे को अच्छी तरह धोओ, इसे फाड़ मत डालना।

यहाँ "इसे" के स्थान मे वैकलिपक 'एनत्' प्रयुक्त हुआ है, किन्तु "इस" के स्थान में "एनत्" नहीं आसकता।

एषः पञ्चविंशतिवर्षदेशीयोऽधुना एनम् उद्वाहय—यह पच्चीस वर्ष के लगभग हो गया, इसका अब व्याह कर दो।

यहाँ भी पहले एषः आया, तदनन्तर एनम्।

(क) इदम्—यह

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्य.
ष०	अस्य	अनयोः, एनयो.	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पं०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
ष०	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

(ख) एतद्—यह

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
पं०	एतस्मात् एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

नपुंसक लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते	एतानि
द्वि०	एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते	एतानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्, एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

स्त्री लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष०	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

(ग) तद्—वह

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात	ताभ्याम्	तेभ्य
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तत्	ते	तानि
द्वि०	तत्	ते	तानि
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्य
ष०	तस्य	तयो.	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ताः
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	तयोः	तासु

(घ) अदस्—वह

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

नपुंसक लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अदः	अमू	अमूनि
द्वि०	अदः	अमू	अमूनि
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमोभि
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	अमू	अमूः
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्य
ष०	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

८५-सम्बन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए संस्कृत में 'यद्' शब्द है। इसके रूप तीनो लिङ्गो में भिन्न भिन्न होते हैं जो कि नीचे दिये जाते हैं। इसके साथ के 'सो' शब्द के लिए 'अदस्' अथवा 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में आते हैं; यथा :—

सोऽयं तव पुत्रः आगतः यः देव्या स्वकरकमलैरुपलालितः (यह तुम्हारा वह पुत्र आगया जिसका देवी जी ने अपने हस्त कमलों से लालन पालन किया),

ये परीक्षायामुत्तीर्णास्ते पारितोषिकं लप्स्यन्ते—(जो परीक्षा में उत्तीर्ण हुए वे इनाम पायेंगे);

या षोडशवर्षीया आसीत् सा ब्रह्मचारिणोढा—(जो सोलह वर्ष की थी उसके साथ ब्रह्मचारी ने ब्याह किया);

यद्यदग्नौ पतितं तत्तद्भस्मीभूतम्—(जो चीज़ आग में पड़ी वह भस्म हो गई)

'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।

(जो मनुष्य आत्महत्या करते है वे मर कर ऐसे लोको में पहुँचते है जो असुरो के है तथा जिनमें सदा अँधेरा रहता है)

' सं० व्या० प्र०—१

यद्—जो

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययोः	येषु

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	यत्, यद्	ये	यानि
द्वि०	यत्, यद्	ये	यानि
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययोः	येषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	या	ये	याः
द्वि०	याम्	ये	याः
तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
च०	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
प०	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
ष०	यस्याः	ययोः	यासाम्
स०	यस्याम्	ययोः	यासु

८६–प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन, क्या' के लिए संस्कृत में 'किम्' शब्द है. इसके रूप तीनो लिङ्गो में नीचे लिखे प्रकार से चलते है। उदाहरणार्थ कः आगतः ? (कौन आया है ?), का आगता ? (कौन स्त्री आई है ?) ;

किमस्ति ? (क्या है ?) आदि इसके प्रयोग होते हैं।

(क) इसी शब्द के रूपो के साथ 'अपि' 'चित्' अथवा 'चन' जोड़ देने से, हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामों का बोध होता है, यथा :—

कोऽपि आगतोऽस्ति
कश्चिदागतोऽस्ति } —कोई आया है।
कश्चनागतोऽस्ति

काऽप्यागताऽस्ति
काचिदागताऽस्ति
काचन आगताऽस्ति
} —कोई आई है।

किमप्यस्ति
किञ्चिदस्ति
किञ्चनास्ति
} —कुछ है।

इसी प्रकार कमपि मा हिंसीः, कामपि मा त्रासय, किम मा चोरय, इत्यादि प्रयोग होते हैं।

किम्—कौन

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कः	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पं०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयोः	केषु

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	किम्	के	कानि
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पं०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयोः	केषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	का	के	काः
द्वि०	काम्	के	काः
तृ०	कया	काभ्याम्	काभिः
च०	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पं०	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
ष०	कस्याः	कयोः	कासाम्
स०	कस्याम्	कयोः	कासु

८९—हिन्दी निजवाचक सर्वनाम (reflexive pronoun) 'अपने आप' 'अपने को' आदि अर्थ बोध कराने के लिये संस्कृत

में तीन शब्दों का प्रयोग होता है—(१) आत्मन्, (२) स्व, (३) स्वयम्। इस अर्थ का बोध कराने के लिये आत्मन् शब्द के रूप केवल पुंलिङ्ग एक वचन में चलते हैं और सब लिङ्गों और वचनों में निजवाचकता का अर्थ देते हैं; जैसे :—

सः आत्मानं निन्दितवान्,

सा आत्मानं निन्दितवती,

सर्वाः राजकन्याः आत्मानं मुकुरे अद्राक्षुः,

सा आत्मानमपराधिनीममन्यत,

सा आत्मनि कमपि दोषं नाद्राक्षीत्,

तच्छरीरमात्मनैव विनष्टम् इत्यादि।

'स्व' शब्द के तीन अर्थ होते हैं—नातेदार, धन और 'अपने आप'। इन में से जब इसका अर्थ 'अपने आप' का होता है तभी यह सर्वनाम होता है। तब इसके रूप सर्व शब्द (६५) के समान तीनों लिङ्गों में अलग २ चलते हैं, केवल पुं० प्रथमा बहुवचन तथा पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में बालक के समान रूप होते हैं—स्वे, स्वाः, स्वात्, स्वस्मात्, स्वे, स्वस्मिन्। 'स्वयम्' शब्द का कोई और रूप नहीं होता, सब लिङ्गों और सब वचनों में यह ऐसा ही प्रयोग में आता है; यथा :—

सा स्वयमपराधं कृत्वा दोषं मयि क्षिप्तवती, राजा स्वयमुत्कोचं गृह्णाति मन्त्रिणां का कथा, इत्यादि।

(क) परस्परवाची सर्वनाम संस्कृत में तीन होते है—परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर। इनके रूप बालक के समान होते हैं और एक वचन में—

परस्परः विवादं कृतवान्,
अन्योन्येन मिलितम्,
इतरेतरस्य सौभाग्यं दूषयति।

ये ही शब्द जब क्रियाविशेषण होते है तब इनके रूप नहीं चलते; केवल परस्परम्, अन्योन्यम् और इतरेतरम् होते है; यथाः—

तौ परस्परं मिलितौ।

८८—निश्चयवाचक सर्वनाम (यही, वही, उसी ने) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए, सर्वनाम के रूपो के साथ 'एव' शब्द जोड़ कर संस्कृत में निश्चय का बोध कराते है; यथा :—

क आगतः ? स एव पुनः आगतः।

केनेदं कृतम् ? तेनेव तु कृतम् इत्यादि।

अनिश्चयात्मक ८६ (क) सर्वनामो को छोड़ कर ऊपर लिखे और सब सर्वनामो के साथ इस प्रकार 'एव' जोड़ कर 'ही' का निश्चयात्मक अर्थ प्रकट किया जा सकता है।

पञ्चम सोपान

विशेषण विचार

८९—हिन्दी में कभी कभी तो विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार विशेषण बदलता है (जैसे अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की, अच्छी लड़कियाँ), किन्तु बहुधा नहीं बदलता (जैसे लाल घोड़ा, लाल घोड़ी, लाल घोड़े, लाल घोड़ियाँ)। संस्कृत में विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार विशेषण का रूप बदलता है, जिस लिङ्ग, जिस वचन और जिस विभक्ति का विशेष्य होता है, उसी लिङ्ग उसी वचन और उसी विभक्ति का विशेषण भी होता है। यहाँ तक कि ऐसे विशेष्यों के साथ भी विशेषण बदलता है जो लिङ्ग के लिए भिन्न रूप नहीं रखते, किन्तु जिनके प्रकरण आदि से लिङ्ग अवगत हो जाता है; यथा हिन्दी में 'मैं सुन्दर हूँ' इस वाक्य का अनुवाद संस्कृत में 'अहं सुन्दरोऽस्मि' और 'अहं सुन्दरी अस्मि; इन दोनो वाक्यों से होगा। यदि बोलने वाला पुरुष है तो प्रथम वाक्य प्रयोग में आवेगा और यदि वह स्त्री है तो दूसरा वाक्य। हिन्दी में विशेषणों के साथ अलग विभक्तिसूचक परसर्ग (का, में आदि) नहीं लगाए जाते, जैसे—'पढ़े लिखे मनुष्यो का आदर होता है' इस वाक्य में 'का' शब्द केवल 'मनुष्यो' के उपरान्त लगाया गया है, विशेषण 'पढ़े लिखे' के उपरान्त नहीं ; परन्तु संस्कृत में विशेषण और विशेष्य दोनो में विभक्तियाँ लगती हैं। ऊपर के वाक्य का अनुवाद होगा—

शिक्षितानां मनुष्याणामादरः क्रियते (अथवा भवति)। इस प्रकार संज्ञा की तरह संस्कृत विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के भिन्न भिन्न रूप होते है। [कुछ संख्यावाची विशेषण शत, विंशति, त्रिंशत् आदि जिनके सब लिङ्गो में और एक ही वचन में रूप होते हैं, वे विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते किन्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही है। विशेष विशेष स्थलो पर विस्तृत वर्णन किया गया है]।

अधिकतर विशेषणो के रूप संज्ञाओ के समान ही होते हैं—जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के पुंलिङ्ग मे अकारान्त बालक के समान और नपुंसक लिङ्ग में अकारान्त फल के समान रूप होते है। इसी प्रकार ईकारान्त विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी, सुमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के समान होते हैं। थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं जिनके रूप भिन्न होते हैं, उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है।

९०—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में से इदम्, एतद्, तद्, अदस् (८४), यद् (८५), किम् (८६) तथा अनिश्चयवाचक (८६क) और निश्चयवाचक (८८) सर्वनाम सभी का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है ; जैसे, अयं पुरुषः, एषा नारी, एतच्छरीरं, ते भृत्याः, अमी जनाः, यो विद्यार्थी, का नारी, कस्मिंश्चिन्नगरे, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि।

९१—इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका आदि सम्बन्धसूचक भाव दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं, एक तो इदम्, तद्, अस्मद् आदि की षष्ठी विभक्ति के रूपों का प्रयोग करना, जैसे, मम पुस्तकं, तवाश्वः, अस्य प्रबन्धः इत्यादि; दूसरे इन शब्दों में कुछ प्रत्यय जोड़ कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणों के अनुसार प्रयोग में लाना। ये विशेषण इस प्रकार हैं :—

(क) अस्मद् शब्द से—

पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

मदीय	(मेरा)	अस्मदीय	(हमारा)
मामक	(")	आस्माक	(")
मामकीन	(")	आस्माकीन	(")

स्त्रीलिङ्ग

मदीया	(मेरी)	अस्मदीया	(हमारी)
मामिका	(")	आस्माकी	(")
मामकीया	(")	आस्माकीना	(")

(ख) युष्मद् शब्द से—

पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

त्वदीय	(तेरा)	युष्मदीय	(तुम्हारा)

तावक	(तेरा)	यौष्माक	(तुम्हारा)
तावकीन	(")	यौष्माकीण	(")

स्त्रीलिङ्ग

त्वदीया	(तेरी)	युष्मदीया	(तुम्हारी)
तावकी	(")	यौष्माकी	(")
तावकीना	(")	यौष्माकीणा	(")

(ग) तद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०		स्त्री०	
तदीय	(उसका)	तदीया	(उसकी)

(घ) एतद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०		स्त्री०	
एतदीय	(इसका)	एतदीया	(इसकी)

(च) यद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०		स्त्री०	
यदीय	(जिसका)	यदीया	(जिसकी)

इनमें जो अकारान्त हैं उनके बालक (पुं०) तथा फल (नपुं०) के समान, और जो आकारान्त व ईकारान्त हैं उनके विद्या और नदी के समान सब विभक्तियों और वचनों में रूप चलते हैं। अन्य विशेषणों की तरह इनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति सब विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार होते हैं ; यथा:—

त्वदीयानामश्वानां युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता,

यदीया सम्पत्तिः तदीयं स्वत्वम् ।

अस्मद् , युष्मद् आदि की षष्ठी के रूपों के विषय में यह नियम नहीं लगता, वे विशेष्य के अनुसार नहीं बदलते ; यथाः—अस्य पुस्तक, अस्य निबन्धः, अस्य लिपिः इत्यादि ।

९२—'ऐसा, जैसा' आदि शब्दो द्वारा बोधित प्रकार के अर्थ के लिए संस्कृत में अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दो में प्रत्यय जोड़ कर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते हैं। अन्य विशेषणो की भाँति इनकी विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं। ये शब्द हैं :—

(क) अस्मद् शब्द से

पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

मादृश् (मुझ सा)	अस्मादृश् (हमारा सा)
मादृश (")	अस्मादृश (")

स्त्रीलिङ्ग

मादृशी (मुझ सी)	अस्मादृशी (हमारी सी)

(ख) युष्मद् शब्द से

पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

त्वादृश् (तुझ सा)	युष्मादृश् (तुम्हारा सा)
त्वादृश (")	युष्मादृश (")

स्त्रीलिङ्ग

त्वादृशी (तुम जैसी)   [illegible]

(ग) तद् शब्द से

पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
तादृश् (वैसा, तैसा)	तादृशी (वैसी, तैसी)
तादृश (,, ,,)	

(घ) इदम् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
ईदृश् (ऐसा)	ईदृशी (ऐसी)
ईदृश (")	

(च) एतद् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
एतादृश् (ऐसा)	एतादृशी (ऐसी)
एतादृश (")	

(छ) यद् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
यादृश् (जैसा)	यादृशी (जैसी)
यादृश (")	

(ज) किम् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
कीदृश् (कैसा)	कीदृशी (कैसी)
कीदृश (”)	

(झ) भवत् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
भवादृश् (आप सा)	भवादृशी (आपसी)
भावादृश (”)	

इनमें शकारान्त के रूप शकारान्त पुंलिङ्ग अथवा नपुसक लिङ्ग संज्ञाओ के अनुसार तथा ईकारान्त के ईकारान्त (नदी) सज्ञा के अनुसार चलते हैं। जैसा ऊपर कह चुके है इनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के अनुसार रहते हैं।

९३—परिमाणसूचक 'इतना, कितना' आदि शब्दो का अर्थ दिखाने के लिए संस्कृत में इदम् आदि शब्दो से विशेषण बनते हैं। वे इस प्रकार है। इनमें तकारान्त शब्दो के रूप पुलिङ्ग में तकारान्त श्रीमत् (६८) तथा नपुंसक लिङ्ग में जगत् (६८ ग) के अनुसार चलते हैं, और ईकारान्त शब्दो के नदी के समान।

(क) इदम् शब्द से

इयत् (इतना)	इयती (इतनी)

(ख) तद् शब्द से

तावत् (उतना)	तावती (उतनी)

(ग) किम् शब्द से

कियत् (कितना) कियती (कितनी)

(घ) यद् शब्द से

यावत् (जितना) यावती (जितनी)

(ज) एतद् से

एतावत् (इतना) एतावती (इतनी)

परिमाण के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग केवल एक वचन में ही हो सकता है, यथा :—

कियानध्वाऽधुनावशिष्टः ?

तावानेव यावान् भवता लङ्घितः।

तेन कियती सम्पत्तिः गुरवे समर्पिता ?

तावती, यावती गुरुणा याचिता।

९४--संख्यासूचक 'इतने, कितने' आदि शब्दों का अर्थ दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय है :—

(१) ऊपर ६३ के शब्दों को बहुवचन में प्रयोग करना; इस दशा में विशेष्य के लिङ्ग और विभक्ति के अनुसार उनमें भी परिवर्तन होगा: यथा :—

कियन्तः पुरुषाः आगताः, कियत्यः स्त्रियः ?

तावन्तः पुरुषाः यावन्तः ह्यः आगताः, तावत्यः एव स्त्रियः इत्यादि।

(२) किम्, यद् और तद् से बने हुए नीचे लिखे शब्दों का प्रयोग—

(क) किम् से कति (कितने)
(ख) यद् से यति (जितने)
(ग) तद् से तति (उतने)

ये शब्द सब लिङ्गो में प्रयुक्त होते है ; नित्य बहुवचन हैं और इनके रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में योंही रहते है, शेष विभक्तियो में भिन्न होते हैं :—

प्र०	कति	यति	तति
द्वि०	"	"	"
तृ०	कतिभिः	यतिभिः	ततिभिः ।
च०	कतिभ्यः	यतिभ्यः	ततिभ्यः ।
पं०	"	"	"
ष०	कतीनाम्,	यतीनाम्	ततीनाम् ।
स०	कतिषु	यतिषु	ततिषु ।

९५—' सर्व ' शब्द के रूप तीनो लिङ्गो में चलते है और इस प्रकार होते हैं :—

सर्व—सब

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे

द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वि०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः

आगे पुंलिङ्ग के समान रूप होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
प०	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
ष०	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

(क) सर्व शब्द के एक वचन के रूप परिमाणवाची होते हैं; यथा:—

सर्वाऽपि विद्या विमुखीबभूव,
सर्वोऽपि प्रबन्धः सभायां पठितः
सर्वमपि वाक्यमुच्चारितम् इत्यादि

बहुवचन के रूप संख्यावाची 'सब' का अर्थ देते हैं, यथा—सर्वेषां धनिकानां धनं क्षणस्थायि।

द्विवचन के रूप प्रयोग में नहीं मिलते किन्तु यदि किन्हीं दो वस्तुओं के साथ सब का अर्थ लाना हो तो द्विवचन का प्रयोग कर सकते हैं।

९६—परिमाणवाची अल्प (थोड़ा), अर्ध (आधा) नेम (आधा), सम (बराबर) तीनों लिङ्गों में अलग अलग रूप रखते हैं—पुंलिङ्ग में बालक के समान, नपुंसक लिङ्ग में फल के समान और स्त्रीलिङ्ग में विद्या के समान। केवल अल्प, अर्ध और नेम के पुंलिङ्ग मे प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—अल्पे अल्पाः, अर्धे अर्धाः, नेमे नेमाः।

(क) पूरक संख्यावाची प्रथम और चरम शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में चलते हैं, जैसे परिमाणवाची अल्प आदि के। इनके भी पुंलिङ्ग प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—प्रथमे प्रथमाः, चरमे चरमाः।

(ख) संख्यावाची कतिपय (कुछ) शब्द के रूपों के विषय में भी ऊपर लिखा हुआ नियम लगता है, यथा—पर्णैः कतिपयैरेव।

(ग) तीय प्रत्ययान्त द्वितीय और तृतीय शब्दों के रूप सर्व शब्द के समान होते हैं, केवल चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एक वचन में संज्ञा शब्दों (बालक फल और विद्या) के समान होते हैं। उदाहरण के लिए द्वितीय के रूप पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में दिये जाते हैं :—

द्वितीय

पुल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीयः	द्वितीयौ	द्वितीये
द्वितीया	द्वितीयम्	द्वितीयौ	द्वितीयान्
तृतीया	द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयैः
चतुर्थी	द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
पञ्चमी	द्वितीयस्मात् द्वितीयात्	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
षष्ठी	द्वितीयस्य	द्वितीययोः	द्वितीयेषाम्
सप्तमी	द्वितीयस्मिन् द्वितीये	द्वितीययोः	द्वितीयेषु

स्त्रीलिङ्ग उभयी शब्द

	उभयी	उभय्यः
प्र०	उभयी	उभय्यः

इत्यादि नदी शब्द के समान ।

(ख) 'दो का समूह', 'तीन का समूह' इत्यादि समूहवाचक संख्या शब्द संस्कृत में कई प्रकार से बनते हैं। मुख्य ये हैं:—

(१) तयप् प्रत्यय से—द्वितय, त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय, ये पुं० तथा नपुं० में; द्वितयी, त्रितयी, चतुष्टयी पञ्चतयी स्त्रीलिङ्ग में। इनके रूप तीनो वचनो में स्वरान्त संज्ञाओ के समान होते हैं वर्णानां चतुष्टयी, वेदानां त्रितयी, संख्यावाचकश-दानां द्वितयम् द्वितये, द्वितयानि ।

(२) द्वय और त्रय पुं० तथा नपुं० में, द्वयी और त्रयी स्त्री० में। इनके रूप भी द्वितय आदि के अनुसार होते हैं—

वेदत्रयी, विद्याद्वयम्, इत्यादि ।

९८—संस्कृत की गिनती नीचे दी जाती है—

संख्या	पूरणी संख्या पुं० तथा नपुं०	पूरणी संख्या स्त्री०
१ एक	प्रथम, (अग्रिम) (आदिम)	प्रथमा
२ द्वि	द्वितीय	द्वितीया
३ त्रि	तृतीय	तृतीया

४ चतुर्	चतुर्थ	चतुर्थी
५ पञ्चन्	पञ्चम	पञ्चमी
६ षष्	षष्ठ	षष्ठी
७ सप्तन्	सप्तम	सप्तमी
८ अष्टन्	अष्टम	अष्टमी
९ नवन्	नवम	नवमी
१० दशन्	दशम	दशमी
११ एकादशन्	एकादश	एकादशी
१२ द्वादशन्	द्वादश	द्वादशी
१३ त्रयोदशन्	त्रयोदश	त्रयोदशी
१४ चतुर्दशन्	चतुर्दश	चतुर्दशी
१५ पञ्चदशन्	पञ्चदश	पञ्चदशी
१६ षोडशन्	षोडश	षोडशी
१७ सप्तदशन्	सप्तदश	सप्तदशी
१८ अष्टादशन्	अष्टादश	अष्टादशी
१९ नवदशन्	नवदश	नवदशी
या	या	या
एकोनविंशति स्त्री०	एकोनविंश, एकोनविंशतितम	एकोनविंशी, एकोनविंशतितमी
या		
ऊनविंशति	ऊनविंश, ऊनविंशतितम	ऊनविंशी, ऊनविंशतितमी
या		
एकान्नविंशति	एकान्नविंश, एकान्नविंशतितम	एकान्नविंशी, एकान्नविंशतितमी

२० विंशति	विंश, विंशतितम	विंशी, विंशतितमं
२१ एकविंशति	एकविंश, एकविंशतितम	एकविंशी, एकविंशतितमी
२२ द्वाविंशति	द्वाविंश, द्वाविंशतितम	द्वाविंशी, द्वाविंशतितमी
२३ त्रयोविंशति	त्रयोविंश, त्रयोविंशतितम	त्रयोविंशी, त्रयोत्रिंशतितमी
२४ चतुर्विंशति	चतुर्विंश, चतुर्विंशतितम	चतुर्विंशी चतुर्विंशतितमी
२५ पञ्चविंशति	पञ्चविंश, पञ्चविंशतितम	पञ्चत्रिंशी पञ्चविंशतितमी
२६ षड्विंशति	षड्विंश, षड्विंशतितम	षड्विंशी षड्विंशतितमी
२७ सप्तविंशति	सप्तविंश, सप्तविंशतितम	सप्तत्रिंशी, सप्तविंशतितमी
२८ अष्टाविंशति	अष्टाविंश अष्टाविंशतितम	अष्टाविंशी, अष्टाविंशतितमी
२९ नवविंशति	नवविंश नवविंशतितम	नवविंशी, नवविंशतितमी
एकोनत्रिंशत्	एकोनत्रिंश, एकोनत्रिंशत्तम	एकोनत्रिंशी, एकोनत्रिंशत्तमी
ऊनत्रिंशत्	ऊनत्रिंश, ऊनत्रिंशत्तम	ऊनत्रिंशी, ऊनत्रिंशत्तमी
एकान्नत्रिंशत्	एकान्नत्रिंश, एकान्नत्रिंशत्तम	एकान्नत्रिंशी एकान्नत्रिंशत्तमी
३० त्रिंशत्	त्रिंश, त्रिंशत्तम	त्रिंशी, त्रिंशत्तमी

३१ एकत्रिंशत्	एकत्रिंश, एकत्रिंशत्तम	एकत्रिंशी, एकत्रिंशत्तमी
३२ द्वात्रिंशत्	द्वात्रिंश, द्वात्रिंशत्तम	द्वात्रिंशी, द्वात्रिंशत्तमी
३३ त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंश, त्रयस्त्रिंशत्तम	त्रयस्त्रिंशी, त्रयस्त्रिंशत्तमी
३४ चतुस्त्रिंशत्	चतुस्त्रिंश, चतुस्त्रिंशत्तम	चतुस्त्रिंशी, चतुस्त्रिंशत्तमी
३५ पञ्चत्रिंशत्	पञ्चत्रिंश, पञ्चत्रिंशत्तम	पञ्चत्रिंशी, पञ्चत्रिंशत्तमी
३६ षट्त्रिंशत्	षटत्रिंश, षट् त्रिंशत्तम	षट त्रिंशी, षट् त्रिंशत्तमी
३७ सप्तत्रिंशत्	सप्तत्रिंश, सप्तत्रिंशत्तम	सप्तत्रिंशी, सप्तत्रिंशत्तमी
३८ अष्टात्रिंशत्	अष्टात्रिंश, अष्टात्रिंशत्तम	अष्टात्रिंशी, अष्टात्रिंशत्तमी
३९ नवत्रिंशत्	नवत्रिंश, नवत्रिंशत्तम	नवत्रिंश, नवत्रिंशत्तमी
एकोनचत्वारिंशत्	एकोनचत्वारिंश, एकोनचत्वारिंशत्तम	एकोनचत्वारिंशी, एकोनचत्वारिंशत्तमी
ऊनचत्वारिंशत्	ऊनचत्वारिंश, ऊनचत्वारिंशत्तम	ऊनचत्वारिंशी, ऊनचत्वारिंशत्तमी
एकान्नचत्वारिंशत्	एकान्नचत्वारिंश, एकान्नचत्वारिंशत्तम	एकान्नचत्वारिंशी, एकान्नचत्वारिंशत्तमी
४० चत्वारिंशत्	चत्वारिंश, चत्वारिंशत्तम	चत्वारिंशी, चत्वारिंशत्तमी
४१ एकचत्वारिंशत्	एकचत्वारिंश, एकचत्वारिंशत्तम	एकचत्वारिंशी, एकचत्वारिंशत्तमी

४२ द्वाचत्वारिंश या	द्वाचत्वारिंश द्वाचत्वारिंशत्तम	द्वाचत्वारिंशी द्वाचत्वारिंशत्तमी
द्विचत्वारिंशत्	द्विचत्वारिंश द्विचत्वारिंशत्तम	द्विचत्वारिंशी द्विचत्वारिंशत्तमी
४३ त्रयश्चत्वारिंशत् या	त्रयश्चत्वारिंश त्रयश्चत्वारिंशत्तम	त्रयश्चत्वारिंशी त्रयश्चत्वारिंशत्तमी
त्रिचत्वारिंशत्	त्रिचत्वारिंश त्रिचत्वारिंशत्तम	त्रिचत्वारिंशी त्रिचत्वारिंशत्तमी
४४ चतुश्चत्वारिंशत्	चतुश्चत्वारिंश चतुश्चत्वारिंशत्तम	चतुश्चत्वारिंशी चतुश्चत्वारिंशत्तमी
४५ पञ्चचत्वारिंशत्	पञ्चचत्वारिंश पञ्चचत्वारिंशत्तम	पञ्चचत्वारिंशी पञ्चचत्वारिंशत्तमी
४६ षट्चत्वारिंशत्	षट्चत्वारिंश षट्चत्वारिंशत्तम	षट्चत्वारिंशी षट्चत्वारिंशत्तमी
४७ सप्तचत्वारिंशत्	सप्तचत्वारिंश सप्तचत्वारिंशत्तम	सप्तचत्वारिंशी सप्तचत्वारिंशत्तमी
४८ अष्टाचत्वारिंशत् या	अष्टाचत्वारिंश अष्टाचत्वारिंशत्तम	अष्टाचत्वारिंशी अष्टाचत्वारिंशत्तमी
अष्टचत्वारिंशत्	अष्टचत्वारिंश अष्टचत्वारिंशत्तम	अष्टचत्वारिंशी अष्टचत्वारिंशत्तमी
४९ नवचत्वारिंशत् या	नवचत्वारिंश नवचत्वारिंशत्तम	नवचत्वारिंशी नवचत्वारिंशत्तमी
एकोनपञ्चाशत्	एकोनपञ्चाश एकोनपञ्चाशत्तम	एकोनपञ्चाशी एकोनपञ्चाशत्तमी
ऊनपञ्चाशत्	ऊनपञ्चाश ऊनपञ्चाशत्तम	ऊनपञ्चाशी ऊनपञ्चाशत्तमी

एकानपञ्चाशत्	एकानपञ्चाश एकानपञ्चाशत्तम	एकानपञ्चाशी एकानपञ्चाशत्तमी
५० पञ्चाशत्	पञ्चाश पञ्चाशत्तम	पञ्चाशी पञ्चाशत्तमी
५१ एकपञ्चाशत्	एकपञ्चाश एकपञ्चाशत्तम	एकपञ्चाशी एकपञ्चाशत्तमी
५२ द्वापञ्चाशत् या	द्वापञ्चाश द्वापञ्चाशत्तम	द्वापञ्चाशी द्वापञ्चाशत्तमी
द्विपञ्चाशत्	द्विपञ्चाश द्विपञ्चाशत्तम	द्विपञ्चाशी द्विपञ्चाशत्तमी
५३ त्रयःपञ्चाशत् या	त्रयःपञ्चाश त्रयःपञ्चाशत्तम	त्रय पञ्चाशी त्रयःपञ्चाशत्तमी
त्रिपञ्चाशत्	त्रिपञ्चाश त्रिपञ्चाशत्तम	त्रिपञ्चाशी त्रिपञ्चाशत्तमी
५४ चतुःपञ्चाशत्	चतुःपञ्चाश चतु पञ्चाशत्तम	चतुःपञ्चाशी चतु पञ्चाशत्तमी
५५ पञ्चपञ्चाशत्	पञ्चपञ्चाश पञ्चपञ्चाशत्तम	पञ्चपञ्चाशी पञ्चपञ्चाशत्तमी
५६ षट्पञ्चाशत्	षट्पञ्चाश षट्पञ्चाशत्तम	षट्पञ्चाशी षट्पञ्चाशत्तमी
५७ सप्तपञ्चाशत्	सप्तपञ्चाश सप्तपञ्चाशत्तम	सप्तपञ्चाशी सप्तपञ्चाशत्तमी
५८ अष्टापञ्चाशत् या	अष्टापञ्चाश अष्टापञ्चाशत्तम	अष्टापञ्चाशी अष्टापञ्चाशत्तमी
अष्टपञ्चाशत्	अष्टपञ्चाश अष्टपञ्चाशत्तम	अष्टपञ्चाशी अष्टपञ्चाशत्तमी

५९ नवपञ्चाशत्	नवपञ्चाश नवपञ्चाशत्तम	नवपञ्चाशी नवपञ्चाशत्तमी
या एकोनषष्टि	एकोनषष्ट एकोनषष्टितम	एकोनषष्टी एकोनषष्टितमी
ऊनषष्टि	ऊनषष्ट ऊनषष्टितम	ऊनषष्टी ऊनषष्टितमी
एकान्नषष्टि	एकान्नषष्ट एकान्नषष्टितम	एकान्नषष्टी एकान्नषष्टितमी
६० षष्टि	षष्टितम	षष्टितमी
६१ एकषष्टि	एकषष्ट एकषष्टितम	एकषष्टी एकषष्टितमी
६२ द्वाषष्टि या	द्वाषष्ट द्वाषष्टितम	द्वाषष्टी द्वाषष्टितमी
द्विषष्टि	द्विषष्ट द्विषष्टितम	द्विषष्टी द्विषष्टितमी
६३ त्रयःषष्टि या	त्रयःषष्ट त्रयःषष्टितम	त्रयःषष्टी त्रयःषष्टितमी
त्रिषष्टि	त्रिषष्ट त्रिषष्टितम	त्रिषष्टी त्रिषष्टितमी
६४ चतुष्षष्टि	चतुष्षष्ट चतुष्षष्टितम	चतुष्षष्टी चतुष्षष्टितमी
६५ पञ्चषष्टि	पञ्चषष्ट पञ्चषष्टितम	पञ्चषष्टी पञ्चषष्टितमी
६६ षट्षष्टि	षट्षष्ट षट्षष्टितम	षट्षष्टी षट्षष्टितमी

७ सप्तषष्टि	सप्तषष्ट सप्तषष्टितम	सप्तषष्टी सप्तषष्टितमी
८ अष्टाषष्टि या	अष्टाषष्ट अष्टाषष्टितम	अष्टाषष्टी अष्टाषष्टितमी
अष्टषष्टि	अष्टषष्ट अष्टषष्टितम	अष्टषष्टी अष्टषष्टितमी
६९ नवषष्टि या	नवषष्ट नवषष्टितम	नवषष्टी नवषष्टितमी
एकोनसप्तति	एकोनसप्तत एकोनसप्ततितम	एकोनसप्तती एकोनसप्ततितमी
ऊनसप्तति	ऊनसप्तत ऊनसप्ततितम	ऊनसप्तती ऊनसप्ततितमी
एकान्नसप्तति	एकान्नसप्तत एकान्नसप्ततितम	एकान्नसप्तती एकान्नसप्ततितमी
७० सप्तति	सप्तत सप्ततितम	सप्तती सप्ततितमी
७१ एकसप्तति	एकसप्तत एकसप्ततितम	एकसप्तती एकसप्ततितमी
७२ द्वासप्तति या	द्वासप्तत द्वासप्ततितम	द्वासप्तती द्वासप्ततितमी
द्विसप्तति	द्विसप्तत द्विसप्ततितम	द्विसप्तती द्विसप्ततितमी
७३ त्रयस्सप्तति या	त्रयस्सप्तत त्रयस्सप्ततितम	त्रयस्सप्तती त्रयस्सप्ततितमी
त्रिसप्तति	त्रिसप्तत त्रिसप्ततितम	त्रिसप्तती त्रिसप्ततितमी

७४ चतुस्सप्तति	चतुस्सप्तत चतुस्सप्ततितम	चतुस्सप्तती चतुःसप्ततितमी
७५ पञ्चसप्तति	पञ्चसप्तत पञ्चसप्ततितम	पञ्चसप्तती पञ्चसप्ततितमी
७६ षट्सप्तति	षट्सप्तत षट्सप्ततितम	षट्सप्तती षट्सप्ततितमी
७७ सप्तसप्तति	सप्तसप्तत सप्तसप्ततितम	सप्तसप्तती सप्तसप्ततितमी
७८ अष्टासप्तति या	अष्टासप्तत अष्टासप्ततितम	अष्टासप्तती अष्टासप्ततितमी
अष्टसप्तति	अष्टसप्तत अष्टसप्ततितम	अष्टसप्तती अष्टसप्ततितमी
७९ नवसप्तति या	नवसप्तत नवसप्ततितम	नवसप्तती नवसप्ततितमी
एकोनाशीति	एकोनाशीत एकोनाशीतितम	एकोनाशीती एकोनाशीतितमी
ऊनाशीति	ऊनाशीत ऊनाशीतितम	ऊनाशीती ऊनाशीतितमी
एकान्नाशीति	एकान्नाशीत एकान्नाशीतितम	एकान्नाशीती एकान्नाशीतितमी
८० अशीति	अशीतितम	अशीतितमी
८१ एकाशीति	एकाशीत एकाशीतितम	एकाशीती एकाशीतितमी
८२ द्व्यशीति	द्व्यशीत द्व्यशीतितम	द्व्यशीती द्व्यशीतितमी

८३ त्र्यशीति	त्र्यशीत त्र्यशीतितम	त्र्यशीती त्र्यशीतितमी
८४ चतुरशीति	चतुरशीत चतुरशीतितम	चतुरशीती चतुरशीतितमी
८५ पञ्चाशीति	पञ्चाशीत पञ्चाशीतितम	पञ्चाशीती पञ्चाशीतितमी
८६ षडशीति	षडशीत षडशीतितम	षडशीती षडशीतितमी
८७ सप्ताशीति	सप्ताशीत सप्ताशीतितम	सप्ताशीती सप्ताशीतितमी
८८ अष्टाशीति	अष्टाशीत अष्टाशीतितम	अष्टाशीती अष्टाशीतितमी
८९ नवाशीति	नवाशीत नवाशीतितम	नवाशीती नवाशीतितमी
एकोननवति	एकोननवत एकोननवतितम	एकोननवती एकोननवतितमी
ऊननवति	ऊननवत ऊननवतितम	ऊननवती ऊननवतितमी
एकान्ननवति	एकान्ननवत एकान्ननवतितम	एकान्ननवती एकान्ननवतितमी
९० नवति	नवतितम	नवतितमी
९१ एकनवति	एकनवत एकनवतितम	एकनवती एकनवतितमी
९२ द्वानवति वा	द्वानवत द्वानवतितम	द्वानवती द्वानवतितमी

द्विनवति	द्विनवत द्विनवतितम	द्विनवती द्विनवतितमी
९३ त्रयोनवति या	त्रयोनवत त्रयोनवतितम	त्रयोनवती त्रयोनवतितमी
त्रिनवति	त्रिनवत त्रिनवतितम	त्रिनवती त्रिनवतितमी
९४ चतुर्नवति	चतुर्नवत चतुर्नवतितम	चतुर्नवती चतुर्नवतितमी
९५ पञ्चनवति	पञ्चनवत पञ्चनवतितम	पञ्चनवती पञ्चनवतितमी
९६ षण्णवति	षण्णवत षण्णवतितम	षण्णवती षण्णवतितमी
९७ सप्तनवति	सप्तनवत सप्तनवतितम	सप्तनवती सप्तनवतितमी
९८ अष्टानवति या	अष्टानवत अष्टानवतितम	अष्टानवती अष्टानवतितमी
अष्टनवति	अष्टनवत अष्टनवतितम	अष्टनवती अष्टनवतितमी
९९ नवनवति वा	नवनवत नवनवतितम	नवनवती नवनवतितमी
एकोनशत नपुं०	एकोनशततम	एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
४०० चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी

५००	पञ्चशत	पंचशततम	पंचशततमी
१०००	सहस्र	सहस्रतम	सहस्रतमी
१०,०००	अयुत (नपुं०)		
१,००,०००	लक्ष (नपुं०) या लक्षा (स्त्री०)		

दस लाख प्रयुत (न०)

करोड़ कोटि (स्त्री०)

दस करोड़ अर्बुद (नपुं०)

अरब अब्ज (न०)

दस अरब खर्व (पुं० न०)

खरब निखर्व (पुं० न०)

दस खरब महापद्म (न०)

नील शङ्कु (पुं०)

दस नील जलधि (पुं०)

पद्म अन्त्य (नपुं०)

दस पद्म मध्य (न०)

शङ्ख परार्ध (न०)

५०१	एकाधिक पञ्चशत, एकाधिक पञ्चशतं	एकोत्तरपञ्चशतं, एकोत्तर पञ्चशतम् ।
५०२	द्व्यधिक पञ्चशतं, द्व्यधिक पञ्चशतं	द्व्युत्तरपञ्चशत, द्व्युत्तर पञ्चशतम् ।
५०३	त्र्यधिकपञ्चशत, त्र्यधिकं पञ्चशतं	त्र्युत्तरपञ्चशतं, त्र्युत्तर पञ्चशतम्

५०४	चतुरधिकपञ्चशतं, चतुरधिकं पञ्चशतं	चतुरुत्तरपञ्चशतं, चतुरुत्तरं पञ्चशतम् ।
५०५	पञ्चाधिकपञ्चशतं, पञ्चाधिक पञ्चशतं	पञ्चोत्तर पञ्चशतं, पञ्चोत्तरं पञ्चशतम् ।
५०६	षडधिकपञ्चशत, षडधिक पञ्चशतं	षडुत्तरपञ्चशतं, षडुत्तरं पञ्चशतम् ।
५०७	सप्ताधिकपञ्चशतं, सप्ताधिकंपञ्चशतं	सप्तोत्तरपञ्चशतं, सप्तोत्तरं पञ्चशतम् ।
५०८	अष्टाधिकपञ्चशतं, अष्टाधिकं पञ्चशत	अष्टोत्तरपञ्चशतम्, अष्टोत्तर पञ्चशतम् ।
५०९	नवाधिकपञ्चशतं, नवाधिकं पञ्चशतं	नवोत्तरपञ्चशतम्, नवोत्तर पञ्चशतम् ।
५१०	दशाधिकपञ्चशतं, दशाधिकं पञ्चशतं	दशोत्तरपञ्चशतम् दशोत्तर पञ्चशतम् ।
५१७	सप्तदशाधिकपञ्चशतं, सप्तदशाधिकं पञ्चशतं	सप्तदशोत्तरपञ्चशतम सप्तदशोत्तरं पञ्चशतम् ।
६००	षट्शत	
६२५	पञ्चविंशत्यधिकषटशतम्, पञ्चविंशत्युत्तरषट्शतम्.	पञ्चविंशत्यधिकंषट्शतम् पञ्चविंशत्युत्तरं षट्शतम
६३७	सप्तत्रिंशदधिकषट्शतम्, सप्तत्रिंशदुत्तरषट्शतम्,	सप्तत्रिंशदधिक षट्शतम् सप्तत्रिंशदुत्तरं षट्शतम्
६४६	षटचत्वारिंशदधिकषट्शतम्, षट्चत्वारिंशदुत्तरषट्शतम्,	षट्चत्वारिंशदधिक षट्शतम् षट्चत्वारिंशदुत्तरं षट्शतम्
६५५	पञ्चपञ्चाशदधिकषट्शतम्, पञ्चपञ्चाशदुत्तरषट्शतम्,	पञ्चपञ्चाशदधिक षट्शतम् पञ्चपञ्चाशदुत्तर षट्शतम्

६	पट्षष्ट्यधिकषट्शतम्, षट्षष्ट्यधिकं षट्शतम् षट्षष्ट्युत्तरषट्शतम्, षट्षष्ट्युत्तरं षट्शतम्
३	त्रिसप्तत्यधिकषट्शतम्, त्रिसप्तत्यधिक षट्शतम् त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम्, त्रिसप्तत्युत्तरं षट्शतम्
८४	चतुरशीत्यधिकषट्शतम्, चतुरशीत्यधिकं षट्शतम् चतुरशीत्युत्तरषट्शतम्, चतुरशीत्युत्तरं षट्शतम्
९५	पञ्चनवत्यधिकषट्शतम्, पञ्चनवत्यधिकं षट्शतम् पञ्चनवत्युत्तरषट्शतम्, पञ्चनवत्युत्तरं षट्शतम्
१३२५	पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम् या पंचविंशत्यधिकत्रिशताधिकसहस्रम्
१९२८	अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम् या अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम्
१९३९	एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम् या एकोनचत्वारिंशदधिकनवशताधिकसहस्रम्
९६३७	सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

९९—इस गिनती के शब्दों के रूपों में जो भेद है वह नीचे दिखाया जाता है।

(क) जब 'एक' शब्द का अर्थ संख्यावाचक एक होता है तो इसका रूप केवल एक वचन में होता

है ; इसके अतिरिक्त अर्थों[1] मे इसके रूप तीनो वचनो में होते हैं।

एक—शब्द

	पुलिङ्ग	नपुं०	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्र०	एकः	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	एकेन	एकया
च०	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
पं०	एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्या
ष०	एकस्य	एकस्य	एकस्याः
स०	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

---

१ 'एक' शब्द के इतने अर्थ होते हैं :—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।

साधारणे समानेऽपि संख्यायां च प्रयुज्यते ॥

अर्थात् अल्प (थोडा, कुछ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक, इतने अर्थों में एक शब्द का प्रयोग होता है।

बहुवचन में इसका अर्थ होता है—' कुछ लोग,' ' कोई कोई ' यथा ' एके पुरुषाः, एकाः नार्यः,' 'एकानि फलानि' इत्यादि।

(ख) द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में तथा तीनो लिङ्गो में अलग अलग होते है।

द्वि—दो

	पुलिङ्ग	नपुं० लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
	द्विवचन	द्विवचन
प्र०	द्वौ	द्वे
द्वि०	द्वौ	द्वे
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पं०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
ष०	द्वयोः	द्वयोः
स०	द्वयोः	द्वयो.

त्रि—तीन

त्रि शब्द के रूप केवल बहुवचन मे होते है :—

	पुलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
प्र०	त्रयः	त्रीणि	तिस्रः
द्वि०	त्रीन्	त्रीणि	"
तृ०	त्रिभिः	त्रिभि.	तिसृभिः

च०	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
पं०	,,	,,	,,
ष०	त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
स०	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

चतुर्—चार

(घ) चतुर् (चार) शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग अलग और केवल बहुवचन में होते है।

	पुंलिङ्ग बहुवचन	नपुंसकलिङ्ग बहुवचन	स्त्रीलिङ्ग बहुवचन
प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्र.
द्वि०	चतुरः	चत्वारि	चतस्रः
तृ०	चतुर्भि.	चतुर्भिः	चतसृभि'
च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
प०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्य'	चतसृभ्यः
ष०	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

(च) पञ्चन् और इसके आगे के संख्यावाची शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते है और केवल बहुवचन में होते हैं।

पञ्चन्—पाँच

पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

	बहुवचन
प्र०	पञ्च
द्वि०	पञ्च
तृ०	पञ्चभिः
च०	पञ्चभ्यः
पं०	पञ्चभ्य.
प०	पञ्चानाम्
स०	पञ्चसु

(छ)

षष–छः

पुं०, नपुं०, तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में।

प्र०	षट्
द्वि०	षट्
तृ०	षड्भिः
च०	षड्भ्यः
प०	षड्भ्यः
प०	षण्णाम्
स०	षट्सु

(ज)

सप्तन्—सात

पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में।

प्र०	सप्त
द्वि०	सप्त
तृ०	सप्तभिः
च०	सप्तभ्यः
पं०	सप्तभ्यः
ष०	सप्तानाम्
स०	सप्तसु

(झ)

अष्टन्—आठ

पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में

प्र०	अष्टौ, अष्ट
द्वि०	अष्टौ, अष्ट
तृ०	अष्टाभिः, अष्टभि
च०	अष्टाभ्य', अष्टभ्यः
पं०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः

ष०	अष्टानाम्
स०	अष्टासु, अष्टसु

(ट) नवन् (नो), दशन् (दस), तथा सभी नकारान्त संख्यावाची (एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि) शब्दो के रूप पञ्चन् के समान तीनो लिङ्गो में एक ही समान होते है। अष्टन् में जो भेद होता है सो दिखा दिया गया।

(ठ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविंशति से लेकर जितने संख्यावाची शब्द हैं उन सब के रूप केवल एक वचन ही में होते है।

(ड) ह्रस्व इकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक ऊनविंशति विंशति एकविंशति आदि विंशति में अन्त होने वाले शब्दो के रूप रुचि शब्द के समान होते है।

	एकवचन	
प्र०	विंशतिः	अर्थात् रुचि के समान।
द्वि०	विंशतिम्	
तृ०	विंशत्या	
च०	विंशत्यै, विंशतये	
प०	विंशत्याः, विंशतेः	
ष०	विंशत्याः, विंशतेः	
स०	विंशत्याम्, विंशतौ	

(ढ) नित्य स्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) के तथा शत् में अन्त होनेवाले संख्यावाची शब्दो के रूप सरित् के समान होते हैं, जैसेः—

	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
प्र०	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वि०	त्रिंशतम्	चत्वारिंशतम्
तृ०	त्रिंशता	चत्वारिंशता
च०	त्रिंशते	चत्वारिंशते
पं०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
ष०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
स०	त्रिंशति	चत्वारिंशति

इसी प्रकार पञ्चाशत् के भी रूप होते हैं।

(त) नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि सभी इकारान्त संख्यावाची शब्दों के रूप विंशति के अनुसार रुचि के समान होते हैं, जैसेः—

	षष्टि	सप्तति
	एकवचन	एकवचन
प्र०	षष्टिः	सप्ततिः
द्वि०	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृ०	षष्ट्या	सप्तत्या
च०	षष्ट्यै, षष्टये	सप्तत्यै, सप्ततये
पं०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
ष०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
स०	षष्ट्याम्, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते है।

(ध) शत, सहस्र अयुत, लक्ष, प्रयुत, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखव, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध, शब्द केवल नपुंसक लिङ्ग में होते है और इनके रूप फल के अनुसार तीनो वचनो में चलते है।

(द) लक्षा (स्त्री०) के रूप विद्या के समान और कोटि के रूप रुचि के समान होते है।

(ध) खर्व (पुं०) निखर्व (पुं०) के रूप बालक के समान, जलधि (पु०) के रूप कवि के समान तथा शङ्कु के भानु (४८) के समान चलते हैं।

१००—पूरक संख्यावाची (ordinal numeral adjectives) शब्दो के रूप इस प्रकार चलते है :—

(क) प्रथम शब्द के रूप ९६ (क) मे उल्लिखित है; अग्रिम और आदिम के रूप लिङ्गानुसार बालक, फल और विद्या के समान होते है।

(ख) द्वितीय और तृतीय शब्दो के रूप तीनो लिङ्गो मे ऊपर ९५ (ग) में उदाहृत हैं।

(ग) चतुर्थ और इसके आगे के पूरक संख्यावाची शब्दो के रूप यदि अकारान्त पुं० हों तो बालक के समान, अकारान्त नपुंसक हों तो फल के समान, यदि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हों तो

विद्या के समान और ईकारान्त स्त्री० हो तो नदी के समान चलते हैं।

(घ) शत और इसके आगे की संख्याओ के पूरक संख्यावाची शब्द पुं० तथा नपुंसक में तम जोड़ कर और स्त्रीलिङ्ग में—तमी जोड़ कर बनते हैं; जैसे—सहस्रतमः, सहस्रतमं, सहस्रतमी आदि।

१०१—ऊपर संख्यावाची शब्द एक से लेकर सौ तक तथा सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दशलक्ष आदि के लिये दिये गये हैं। ऐसी संख्याएँ जैसे १३५, ११०३, १०५१५ आदि बीच की संख्याओं के लिये विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो कि नीचे दिखाया जाता है।

(१) सौ या सहस्र या लक्ष के पूर्व 'अधिक' शब्द या 'उत्तर' शब्द जोड़ देना, यथा :—

एक सौ पैंतीस मनुष्य उपस्थित है—पञ्चत्रिंशदधिक शतं मनुष्याणामुपस्थितम्। अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तरं शतम्

दो सौ इकतालीस आदमियों के ऊपर जुर्माना लगाया गया, और तीन सौ उनसठ को सज़ा हुई। मनुष्याणामेकचत्वारिंशद-धिकयोः शतयोः (एकचत्वारिंशदुत्तरयोः शतयोः वा) उपरि अर्थ-दण्डः आदिष्टः, एकोनषष्ट्यधिकानां त्रयाणां शतानामुपरि काय-दण्डः।

एक लाख पन्द्रह हज़ार तीन सौ बत्तीस—द्वात्रिंशदधिक-त्रिशतोत्तरपञ्चदश सहस्राणि एकं लक्षञ्च।

इसी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग से और भी संख्याएँ बनाई जासकती है।

कभी कभी 'च' जोड़ते जाते हैं; जैसे—२३५ द्वे शते पञ्चत्रिंशच्च।

(२) कभी कभी संख्याओं के बोलने में हम लोग दो कम दो, चार कम पांच सौ इत्यादि में कम शब्द का प्रयोग करते हैं—संस्कृत में इस कम शब्द का बोधक ऊन शब्द जोड़ा जाता है; यथा—दो कम दो सौ—द्व्यूने शते, द्व्यूनं शतद्वयं, द्व्यूनशतद्वयी इत्यादि। चार कम पाँच सौ—चतुरूनपञ्चशतानि, चतुरूनं शतपञ्चतयम् इत्यादि। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी संख्याएँ ऊपर दे दी गई हैं।

१०२—क्रम का भेद बतलाने के लिए संस्कृत के शब्द बहुधा 'सर्वनाम' में सम्मिलित किये जाते हैं। वस्तुतः यह क्रमवाची विशेषण हैं इस लिए यहाँ दिये जाते है। मुख्य २ ये है :—

(क) अन्य (दूसरा), अन्यतर (जब दो दूसरों में से एक के विषय में कुछ व्यवहार हो चुका हो तो दूसरे के लिये यह शब्द प्रयोग में आता है), इतर (दूसरा) तथा (किम्, यद् और तद् सर्वनामों से डतर और डतम प्रत्यय जोड़ कर बने हुए) कतर (दो में से कौन सा), कतम (दोसे अधिक में से कौन सा), यतर (दो में से जो सा), यतम (दो से अधिक में से जो सा), ततर (दो में से वह सा), ततम (दो से अधिक में से वह सा) शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं और एक समान होते हैं। उदाहरण के लिए 'अन्य' शब्द के रूप दिखाए जाते है :—

अन्यत्–दूसरा

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	अन्यः	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य'
पं०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
ष०	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत	अ॰्ये	अन्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
पं०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
ष०	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्या	अन्ये	अन्याः
द्वि०	अन्याम्	अन्ये	अन्याः
तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभिः
च०	अन्यस्यै	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
प०	अन्यस्याः	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
ष०	अन्यस्याः	अन्ययोः	अन्यासाम्
स०	अन्यस्याम्	अन्ययोः	अन्यासु

(ख) पूर्व (पहला अथवा पूर्वी), अवर (वादवाला अथवा पच्छिमी), दक्षिण (दक्खिनी), उत्तर (उत्तरी), पर (दूसरा), अपर (दूसरा) और अधर (नीचेवाला) इन शब्दों के रूप एक समान चलते हैं और तीनों लिङ्गों में होते हैं। उदाहरण के लिए 'पूर्व' शब्द के रूप दिए जाते है।

पूर्व

पुलिङ्ग

प्र०	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्

तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पं०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्य॰
प०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन् ,पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्य
प०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
प०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन्,पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
द्वि०	पूर्वाम्	पूर्वे	पूर्वाः
तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
च०	पूर्वस्यै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः
प०	पूर्वस्याः	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्य

प०	पूर्वस्याः	पूर्वयो	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयोः	पूर्वासु

१०३–विशेषणो की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, केवल आवश्यकतानुसार अधिक, ज़्यादा, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिए जाते है ; जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर है, मुझसे वह अच्छा है अथवा ज़्यादा अच्छा है, गोपाल से श्याम कम सुन्दर है, इत्यादि । परन्तु संस्कृत में बहुधा अधिक आदि शब्द जोड़ कर तुलना नहीं की जाती , जैसे —'गोपालः श्यामादधिकसुन्दरोऽस्ति' चाहे यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से गलत न हो तब भी उसमें हिन्दीपन की गन्ध आती है । संस्कृत में विशेषणो की तुलना करने के लिए प्रत्यय विशेषणो में जोड़े जाते है ।

(क) सब से सीधा मार्ग तुलना करने का विशेषण में तरप् (तर) और तमप् (तम) प्रत्ययो का जोड़ देना है । इन परिवर्तित विशेषणो के रूप विशेष्य के अनुसार होते है—तरप् जब दो के बीच में तुलना करनी हो और तमप् जब दो से अधिक के बीच में तुलना करनी हो तो । उदाहरणार्थ :—

कुशल	—	कुशलतर ,	कुशलतम
चतुर	—	चतुरतर ,	चतुरतम
विद्वस्	—	विद्वत्तर ,	विद्वत्तम

धनिन्	—	धनितर ,	धनितम
महत्	—	महत्तर ,	महत्तम
गुरु	—	गुरुतर ,	गुरुतम
लघु	—	लघुतर ,	लघुतम
पायक	—	पायकतर ,	पायकतम

(ख) गुणवाची शब्दों के अनन्तर या तो तरप् तथा तमप् प्रत्यय जोड़ते हैं, या ईयसुन् (ईयस्) और इष्ठन् (इष्ठ)। जहाँ दोनों तरप् अथवा ईयसुन् व तमप् अथवा इष्ठन् जोड़ने की अनुमति है वहाँ ईयसुन् और इष्ठन् जोड़ना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है। इन दो प्रत्ययों के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यंजन हो तो उसका भी (यथा—पटु का केवल पट् रह जाता है, लघु का लघ्, धनिन् का धन्) लोप हो जाता है। कहीं २ और भी अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ :—

पटु	—	पटीयस् ,	पटिष्ठ
लघु	—	लघीयस् ,	लघिष्ठ
धनिन्	—	धनीयस् ,	धनिष्ठ
निकट	—	नेदीयस् ,	नेदिष्ठ
अल्प	—	अल्पीयस् ,	अल्पिष्ठ
क्षिप्र	—	क्षेपीयस् ,	क्षेपिष्ठ
गुरु	—	गरीयस् ,	गरिष्ठ
दीर्घ	—	द्राघीयस् ,	द्राघिष्ठ

दूर	—	दवीयस्,	दविष्ठ
प्रिय	—	प्रेयस्,	प्रेष्ठ
कृश	—	क्रशीयस्,	क्रशिष्ठ
दृढ	—	द्रढीयस्,	द्रढिष्ठ
मृदु	—	म्रदीयस्,	म्रदिष्ठ
बहु	—	भूयस्,	भूयिष्ठ
युवन्	—	{ यवीयस्,	यविष्ठ
		{ कनीयस्,	कनिष्ठ
वृद्ध	—	ज्यायस्,	ज्येष्ठ
स्थिर	—	स्थेयस्,	स्थेष्ठ
स्थूल	—	स्थवीयस्,	स्थविष्ठ
प्रशस्य	—	श्रेयस्,	श्रेष्ठ

षष्ठ सोपान

कारक विचार

१०१—ऊपर (४२) कह आए हैं कि संस्कृत में संज्ञाओं की सात विभक्तियाँ होती हैं। सर्वनाम-विचार तथा विशेषण-विचार र पर भी ज्ञात हुआ होगा कि सर्वनाम और विशेषण की भी इसी

प्रकार सात विभक्तियाँ होती हैं। इन विभक्तियों का क्या प्रयोग होता है यह इस परिच्छेद में दिखाया जायगा।

'कारक' का अर्थ है ऐसी वस्तु जिसका क्रिया के सम्पादन मे उपयोग आवे। उदाहरण के लिए 'अयोध्या में रघु ने अपने हाथ से लाखो रुपए ब्राह्मणों को दान दिए', इस वाक्य मे दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन २ वस्तुओ का उपयोग हुआ वे 'कारक' कहलाएँगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है, यहां अयोध्या में हुई इसलिए 'अयोध्या' कारक हुई, इस क्रिया के करने वाले रघु थे इस लिए 'रघु' कारक हुए; यह क्रिया हाथ से सम्पादित हुई इस लिए 'हाथ' कारक हुआ, रुपए दिए गये इस लिए 'रुपए' कारक हुए, और ब्राह्मणो को दिए गए इस लिए 'ब्राह्मण' कारक हुए। क्रिया के सम्पादन के लिए इस प्रकार छः[1] सम्बन्ध स्थापित होते हैं :—

क्रिया का सम्पादक—कर्त्ता

क्रिया का कर्म—कर्म

क्रिया का सम्पादन जिसके द्वारा हो—करण

क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान

क्रिया जिससे निकले, या जिससे दूर हो—अपादान

क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

---

१ कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट्॥

इस प्रकार कर्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधि-करण ये छः कारक हुए। इन्हीं कारको के व्यवहार में विभक्तियाँ आती हैं।

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला सकता है, ऐसे वाक्यो में जैसे 'गोविन्द के लड़के गोपाल को श्याम ने पीटा' पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा) और श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस लिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते। गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है, किन्तु पीटने की क्रिया के सम्पादन में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नही होता।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियो के प्रयोग पर विचार होगा।

१०५ प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा–

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल शब्द का अर्थ बतलाने के लिए, अथवा केवल लिङ्ग और शब्दार्थ बतलाने के लिए, अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

(१) केवल प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है शब्द, जिसको इंग्लिश में (Base) बेस् या (Crude form) क्रूड् फार्म कहते हैं।

प्रत्येक शब्द का कुछ नियत अर्थ होता है, और संस्कृत के वैयाकरणों के हिसाब से किसी शब्द में जब तक प्रत्यय लगाकर पद (सुप्तिङन्तं पदम्) न बना लिया जाय तब तक उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता । यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाते हैं—जैसे यदि केवल ' राम ' उच्चारण करें तो संस्कृत में यह शब्द निरर्थक होगा—यदि "रामः" कहे तब राम शब्द के अर्थ का बोध होगा। इसी लिए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही में नहीं, प्रत्युत अव्ययों तक में भी संस्कृत वैयाकरण प्रथमा लगाते हैं, यदि न लगाएँ तो उन अव्ययों का अर्थ ही न निकले—जैसे नीचैः, उच्चैः आदि ।

(२) केवल शब्दार्थ और लिङ्ग—ऐसे शब्द जिनमें लिङ्ग नहीं होता (जैसे उच्चैः आदि अव्यय) और ऐसे जिनका लिङ्ग नियत है अर्थात् मालूम है कि यह शब्द केवल पुंलिङ्ग में होता है (जैसे वृक्षः), अथवा केवल नपुंसक लिङ्ग में होता है (जैसे फलम्) अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है (जैसे कन्या) इनको छोड़ कर बाकी शब्दों का अर्थ और लिङ्ग दोनों प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जान पड़ते है, जैसे—तटः, तटी, तटम् । इन शब्दो में तटः से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुलिङ्ग मे है और इसका अर्थ किनारा है, तटी स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है, तटम् नपुंसकलिङ्ग है और इसका भी अर्थ किनारा है ।

(३) केवल परिमाण—जैसे सेरो व्रीहिः, यहाँ प्रथमा विभक्ति से सेर का परिमाण विदित होता है । कितना चावल ? सेर भर चावल—इस अर्थ के लिए यहाँ प्रथमा विभक्ति है ।

(४) केवल वचन (संख्या)—जैसे ' बालकः ' कहने से एक बालक का, ' बालकौ ' से दो बालकों का और ' बालकाः ' कहने से कई बालको का बोध होता है।

(ख) सम्बोधने च—

प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन करने मे भी होता है; जैसे :—

बालकाः ! हे बालको; कन्याः ! हे कन्याओ आदि । इसी लिए सम्बोधन को अलग विभक्ति नहीं मानते। ऊपर संज्ञाओ के रूप देते समय सम्बोधन के भी रूप कहीं २ दिए गए है, इस से यह नहीं समझना चाहिए कि सम्बोधन की भी कोई आठवीं विभक्ति होती है। रूप केवल आसानी के लिए दिए गए है, क्योकि सम्बोधन करते समय प्रथमा के एक वचन में कुछ अन्तर पड़ जाता है।

(ग) संस्कृत-व्याकरणो में ऊपर (क) और (ख) में लिखे हुए दो ही सूत्र प्रथमा विभक्ति के उपयोग के लिए मिलते है । अब प्रश्न यह उठता है कि सारे संस्कृत साहित्य में कर्तृवाच्य का कर्त्ता (बालकः गच्छति, कन्या फलमश्नुते, लुब्धकाः वृक्षमारोहन्ति आदि में) और कर्मवाच्य का कर्म (हरिः सेव्यते, पित्रा पुत्रः ताड्यते, भ्रात्रा भगिनी पाठ्यते, भोजनं स्वाद्यते) प्रथमा विभक्ति में मिलता है। यह प्रथमा किस नियम अथवा सूत्र से सिद्ध होनी चाहिए । इसका समाधान इस प्रकार है। संस्कृत भाषा में क्रिया अथवा व्यापार को ही वाक्य मे प्रधानत्व दिया गया है। क्या करना है इसके बारे में करने से पहले पूर्ण निश्चय हो जाना चाहिए ; फिर कर्त्ता, कर्म आदि

आवेंगे। ऊपर कारक (१०४) का व्याख्यान करते समय कह आए है कि क्रिया से सम्बन्ध रखने पर ही कारक हो सकता है। अन्य भाषाओं में किसी में कर्म को प्रधानत्व है और किसी में कर्ता को, जैसे अंगरेज़ी में कर्त्ता को। अंगरेज़ी में कर्त्ता निश्चित हो जाता है फिर उसके अनुसार क्रिया कर्म आदि आते हैं। परन्तु संस्कृत में क्रिया का निश्चय होना मुख्य है और उसका निश्चय हो जाने पर उसी के सम्बन्ध में अन्य कारक शब्द आते है। क्रिया बतला दी जाने पर उसके साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय हो उस शब्द का वैसा कारक समझना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई क्रिया जैसे 'गच्छति' ले लीजिए; अब 'गच्छति' से इन बातों का बोध होता है—

(१) क्रिया वर्त्तमान काल में हो रही है।

(२) इस क्रिया का सम्पादक कोई अन्यपुरुष एकवचन है। अब कोई ऐसा वाक्य ले लीजिए जिसमें "गच्छति" शब्द आता हो, जैसे—

रामः ग्रामं गच्छति—

इस वाक्य में दो शब्द है जो अन्यपुरुष और एकवचन में है, अर्थात् रामः और ग्रामम्। ग्रामम् कर्मस्थानीय है यह आगे द्वितीया के प्रयोग वाले सूत्रों से व्यक्त हो जायगा, इसलिए वह कर्त्ता हो नहीं सकता; बाकी बचा 'रामः' शब्द, यही कर्त्ता हो सकता है। इसी प्रकार कर्मवाच्य के कर्म के विषय में भी क्रिया

साथ कर्ता का जिस शब्द का अन्वय लग जायगा वही कर्म होगा; जैसे—'सेव्यते' से यह पता चल जाता है कि कोई अन्यपुरुष एकवचन की संज्ञा कर्म हो सकती है। अब जिस वाक्य में 'सेव्यते' क्रिया आवे जिसका सम्बन्ध कर्म रूप ही से सिद्ध हो अन्य से नहीं वही कर्म होगा; जैसे—हरिः सेव्यते इत्यादि।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्तृवाच्य में क्रिया का कर्ता और कर्मवाच्य मे क्रिया का कर्म यह भी प्रथमा विभक्ति में होते हैं।

---

१०६ द्वितीया

(क) कर्तुरीप्सिततमं कर्म—

"किसी वाक्य मे प्रयोग किए गए पदार्थों में से जिसको कर्ता सब से अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं", पाणिनि ने कर्म कारक की इस प्रकार परिभाषा दी है।

"जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल समाप्त होता है उसे कर्म कहते हैं" यह हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में कर्मकारक की परिभाषा बतलाई जाती है, किन्तु साहित्य में ऐसे अनेकों उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नहीं माने जाते; जैसे—नर घर जाता है। यहाँ यद्यपि 'जाने' का कार्य घर पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणतः कर्म नहीं माना जाता। संस्कृत में भी 'घर'

को साधारण नियमों के अनुसार कर्म नहीं मानते, न 'जाना' को सकर्मक क्रिया मानते हैं। घर को कर्म मानने के लिए साधारण नियमों के अतिरिक्त विशेष नियम हैं। इसी प्रकार और भी स्थल दिखाए जाँयगे जोकि कर्म की साधारण परिभाषानुसार कर्म के अन्तर्गत नहीं होते, और जिन्हे कर्म संज्ञा देने के लिए विशेष विशेष सूत्रों को रचना करनी पड़ी।

(ख) कर्मणि द्वितीया–

कर्म को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे :—

भक्त हरि को भजता है। इसमें 'हरि को' कर्म है, इसलिए हरि शब्द में द्वितीया करनी होगी—भक्तो हरिं भजति। ब्रह्मचा वेदमधीते।

(ग) अधिशीङ्स्थासां कर्म–

शी, स्था, तथा आस् धातुओ के पूर्व यदि अधि-उपसर्ग लग हो तो इन क्रियाओ का आधार कर्म कहलाता है; अर्थात् जिस स्थान पर इन धातुओ की क्रियाएं होती है वह कर्म होता है जैसे :—

चन्द्रापीडः मुक्ताशिलापट्टम्[1] अधिशिश्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटरी पर लेट गया।

अर्धासनं[2] गोत्रभिदोऽधितस्थौ—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था।

भूपतिः सिंहासनम्[3] अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बैठा है।

यहाँ ये क्रियाएं पटरी, आसन और सिंहासन पर, जो आधार हैं, हुई हैं इसलिए इन शब्दो को कर्म कहेंगे और इनमें द्वितीया विभक्ति होगी। यदि अधि-उपसर्ग न लगा होता तो आधार के अर्थ में सप्तमी होती—शिलापट्टे शिश्ये, अर्धासने तस्थौ, सिंहासने आस्ते।

(घ) अभिनिविशश्च—

अभि तथा नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहिले आते हैं तो विश् का आधार कर्म कारक होता है; जैसे :—

सन्मार्गम् अभिनिविशते—वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है।

धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री धन्य है जिसके ऊपर आपका मन लगा है।

१,२,३ ये सब क्रियाओं के आधार हैं, इसलिए वास्तव में ये अधिकरण हैं और इनमें सप्तमी होनी चाहिए थी, किन्तु इस नियम विशेष से ये कर्म हो गए हैं और इनमें द्वितीया हो गई।

यदि अभिनि—साथ साथ न आकर केवल एक ही आवे तो द्वितीया न होगी; जैसे :—

' निविशते यदि शूकशिखापदे ' ।

(च) उपान्वध्याङ्वसः –

यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि, आ इनमे से कोई उपसर्ग लगा हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है, जैसे :—

हरिः वैकुण्ठम्[1] उपवसति
हरिः वैकुण्ठम्[2] अनुवसति
हरिः वैकुण्ठम्[3] अधिवसति
हरिः वैकुण्ठम्[4] आवसति
} हरि वैकुण्ठ में वास करते है ।

परन्तु हरिः वैकुण्ठे वसति ।

यहाँ पर ' वैकुण्ठे " कर्म नहीं हुआ बल्कि आधार ही रह गया, क्योकि " वसति " के पूर्व उप, अनु, अधि, आ मे से कोई उपसर्ग नहीं लगा है ।

जब " उपवस् " का अर्थ " उपवास करना, न खाना " होता है, तब भी ' उपवस् " का आधार कर्म नहीं होता, अधिकरण ही रहता है; जैसे :—

१, २, ३, ४, ये सभी वास्तव में अधिकरण हैं और नियम विशेष से कर्म हो गए है ।

वने उपवसति—वन में उपवास करता है।

(छ) उभसर्वतसोः कार्या, धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।

द्वितीयाम्रेडितान्तेषु, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः तथा अध्यधि शब्दो की जिससे सन्निकटना पाई जाती है उसमें द्वितीया होती है

जैसे—उभयतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के दोनो ओर ग्वाले हैं।

सर्वतः कृष्ण गोपाः - कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं।

धिक् पिशुनम्—चुगलखोर को धिक्कार है।

धिक्[1] त्वा पापिनम्—तुझ पापी को धिक्कार है।

उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि सब लोकों के ऊपर हैं।

अधोऽधो लोक पातालः—पाताल सब लोकों के नीचे है।

नवान् मेघान् अधोऽधः—नए बादलों के नीचे।

अध्यधि लोकम्—ससार के नीचे नीचे।

न रामम् ऋते कोऽपि रावण हन्तुं शक्नोति—राम के विना रावण को कोई नहीं मार सकता।

नोट—ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि 'दोनो ओर', 'सभी ओर', 'ऊपर ऊपर', 'नीचे नीचे' के साथ हिन्दी में "का" परसर्ग लगता है,

---

[1] धिक् के साथ कभी कभी प्रथमा और सम्बोधन भी होते हैं, जैसे—धिगियं दरिद्रता, धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः, धिङ् मूढ़ ।

किन्तु संस्कृत में का, की स्थानीय षष्ठी न लगकर द्वितीया लगती है। अनुवाद के समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

(ज) अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि—

अभितः (चारों ओर या सब ओर), परितः (सब ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा, प्रति (ओर, तरफ) शब्दों की जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें द्वितीया होती है; जैसे :—

परिजनः राजानम् अभितः तस्थौ—नौकर लोग राजा के चारों ओर खड़े थे।

रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत्—राक्षसों को वेदी के चारों ओर से निकाल दिया।

ग्रामं समया निकषा वा—ग्राम के समीप।

हा शठम्[२]—हाय शठ।

मातुः हृदयं कन्यां प्रति स्निग्धं भवति—माता का हृदय कन्या की ओर (कन्या के प्रति) कोमल होता है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी और संस्कृत दोनों के व्यवहार में विभिन्नता है। प्रति के साथ हिन्दी में षष्ठी लगती है, संस्कृत में द्वितीया, इसी प्रकार अभितः परितः, समया, निकषा के साथ भी होता है।

---

२ हा के साथ कभी कभी सम्बोधन भी होता है ; जैसे :—

हा भगवत्यरुन्धति।

(झ) अन्तराऽन्तरेण युक्ते—

अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (विषय में, विना, छोड़ कर) शब्दों की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उसमें द्वितीया होती है : जैसे—

अन्तरा त्वां मां हरिः—तुम्हारे हमारे बीच में हरि हैं।

रामम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—राम के बारे में मैं कुछ नहीं जानता।

त्वामन्तरेण कोऽन्यः प्रतिकर्तुं समर्थः—तुम्हारे बिना दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है।

नोट—यहां भी हिन्दी में षष्ठी होती है और संस्कृत में द्वितीया।

(ट) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया—

जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है: जैसे :—

चत्वारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढ़ा।

सहस्रं वर्षाणि राक्षसः तपस्तप्तवान्—राक्षस ने हज़ार वर्ष तक लगातार तप किया।

क्रोशं कुटिला नदी—नदी कोस भर तक टेढ़ी है।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन्, विश्रवण की सभा सौ योजन लम्बी है।

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराऽभवत् ॥

वानरश्रेष्ठ (हनुमान जी) की परछाईं जो कि दश योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी थी जल में अधिक सुन्दर लगती थी ।

"आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा"

(ठ) एनपा द्वितीया

एनप् प्रत्ययान्त शब्द की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उसमे द्वितीया या षष्ठी होती है ; जैसे :—

ग्राम ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गाँव के दक्षिण की ओर ।

उत्तरेण नदीम् नदी के उत्तर ।

दण्डकान् दक्षिणेन—दण्डक के दक्षिण ।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीय—वहाँ पर कुबेर के महल के उत्तर मेरा घर है ।

यहाँ दक्षिणेन, उत्तरेण इन दोनो शब्दो मे एनप् प्रत्यय है ।

(ड) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि

जब कि गत्यर्थक धातुओ (ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ 'जाना' हो जैसे या, गम्, चल्, इण् आदि) का कर्म मार्ग नही रहता है और क्रिया निष्पादन मे शरीर से व्यापार करना पडता है तो उस कर्म मे द्वितीया या चतुर्थी होती है , जैसे —

गृहं गृहाय वा गच्छति। यहाँ पर 'गृह' मार्ग नहीं है, वल्कि स्थान है, और घर जाने में हाथ, पैर तथा शरीर के और अङ्गों को हिलाना डुलाना पड़ता है, इस लिए गृहं, गृहाय दोनों होता है। यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो केवल द्वितीया होती है; जैसे—पन्थानं गच्छति।

जहाँ शरीर से व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया होती है; जैसे—मनसा हरिं व्रजति। यहाँ पर हरि के पास मन के द्वारा जाता है—जिसमे कि जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अङ्ग नहीं हिलाना डुलाना पड़ता, एवं इसमें शरीर-व्यापार नहीं होता; इसलिए चतुर्थी नहीं हो सकती। इसी प्रकार :—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके।

तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।

अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते।

परम्परादुनाख्यां सुमुखी जगाम।

(९) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों मे द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है; जैसे—ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूरं, दूरेण, दूरात् दूरे वा।

वनस्य, वनाद् वा अन्तिकं, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा।

गृहस्य निकटं, निकटेन, निकटात्, निकटे वा।

(त) दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना, रूधना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना) शास् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (खींचना), वह् (ढोना), यह धातुएं द्विकर्मक हैं ; जैसे—

गां दोग्धि पयः—गाय से दूध दुहता है ।
बलिं याचते वसुधाम्—बलि से पृथ्वी माँगता है ।
तण्डुलान् ओदनं पचति—चावलों का भात पकाता है ।
गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों पर एक सौ रुपए दण्ड लगाता है ।
व्रजमवरुणद्धि गाम्—गाय को वाड़े में घेरता है ।
माणवकं पन्थानं पृच्छति—माणवक से रास्ता पूछता है ।
वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है ।
माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है ।
शतं जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है ।
सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीरसागर से अमृत मथता है ।
देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है ।
ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गाँव में ले जाता है ।

इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएं भी द्विकर्मक होती हैं ; जैसे—

माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा ।
बलिं वसुधां भिक्षते । इत्यादि

ऊपर कही हुई दुहादि धातुओं के प्रधान कर्म से जिनका सम्बन्ध होता है वे अकथित अर्थात् अप्रधान या गौण कर्म कहे जाते हैं; जैसे—दुह् का प्रधान कर्म "दूध" है दूध से सम्बन्ध रखने वाली है "गाय" ; "गाय" अकथित अथवा अप्रधान कर्म है । इसी प्रकार "अवरुणद्धि" का प्रधान कर्म "गाय" है, गाय से सम्बन्ध रखने वाला "बाड़ा" है ; "बाड़ा" अकथित कर्म है ।

पय, वसुधा, ओदन इस लिए प्रधान कर्म कहे जाते हैं क्योंकि वे कर्ता के इप्सिततम हैं और कर्म छोड़ कर दूसरे कारक हो ही नहीं सकते । गाम्, व्रजम्, माणवकम् इत्यादि अप्रधान कर्म हैं ; क्योंकि वे कर्म के अतिरिक्त दूसरे कारक भी हो सकते हैं, जैसे—

"गां दोग्धि पयः" के बदले गोः (पंचमी) दोग्धि पयः,
"व्रजम् अवरुणद्धि गाम्" ,, व्रजे अवरुणद्धि गाम्,
"माणवकं पन्थानं पृच्छति" ,, माणवकात् पन्थानं पृच्छति,

इत्यादि कर सकते हैं ।

(५) गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ।
विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः ॥

ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं में कर्मवाच्य बनाने में दुह् से लेकर मु तक के गौण कर्म में और नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म में प्रथमा लगा है, शेष कर्मों में अर्थात् दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म में और नी, ह कृष्, वह् के गौण कर्म में द्वितीया होती है; जैसे—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
गोपः धेनुं पयो दोग्धि	गोपेन धेनुः पयो दुह्यते
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	देवैः समुद्रः सुधा ममन्थे
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति कर्षति, वहति वा	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

(द) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ (कर्म)।

(१) ऐसी धातुएं जिनका अर्थ जाना हो, जैसे—गम्, या, इण् आदि।

(२) ऐसी धातुएं जिनका अर्थ कुछ समझना या ज्ञान प्राप्त करना हो, जैसे—बुध् (जानना), ज्ञा (जानना), विद् (जानना) आदि।

(३) ऐसी धातुएं जिनका अर्थ खाना हो, जैसे—भक्ष्, अद्, भुज आदि।

(४) ऐसी धातुएं जिनका कर्म कोई शब्द हो, जैसे—पठ् (पढ़ना) उच्चर् (बोलना) आदि, और—

(५) ऐसी धातुएं जिनका कोई कर्म न हो, जैसे—उठना, बैठना आदि।

इनका साधारण दशा में जो कर्त्ता रहता है वह णिजन्त अथवा प्रेरणा-र्थक में कर्म हो जाता है; जैसे,-

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम्।
आसयत् सलिले पृथ्वीं, यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

अर्थात् जिन श्रीहरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा आत्मीयों को वेद का अर्थ समझाया, देवताओं को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, पृथ्वी को जल में बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं।

साधारण रूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत्
स्वे वेदार्थम् अविदुः	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्
देवा अमृतम् आश्नन्	देवान् अमृतम् आशयत्
विधिः वेदम् अध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त	पृथ्वीं सलिले आसयत्

नोट—प्रेरणार्थक जाना से भेजना, चलना से चलाना आदि होते हैं।

१०७—तृतीया

(क) साधकतम करणम्—

अर्थात् अपने कार्य की सिद्धि में कर्ता जिसकी सब से अधिक सहायता लेता है उसे करण कहते हैं; जैसे—

राम पानी से मुँह धोता है—

यहाँ पर साधारण रूप से तो मुँह धोने में राम अपने हाथ तथा जलपात्र—दोनो की सहायता लेता है; यदि हाथ न लगावेगा तो मुँह किस प्रकार धो सकेगा, और यदि जलपात्र न होगा तो जल किसमें रक्खेगा। अस्तु, यह सिद्ध होगया कि राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनो की सहायता लेता है, किन्तु देखना यह है कि मुँह धोने में सबसे अधिक आवश्यकता किसकी पड़ती है। इस वाक्य में जितने शब्दों का प्रयोग किया गया है उनके देखने से यह स्पष्ट है कि मुँह धोने में सब से अधिक सहायता "पानी" की है इसलिये 'पानी" करण कारक है, और " से " करण कारक का चिह्न है।

नोट—किसी वाक्य में जो सब से अधिक आवश्यक सहायक हो उसी को करण कहेंगे। वाक्य से बाहर उससे अधिक भी सहायक हो सकते हैं किन्तु उनका विचार नहीं किया जाता, जैसे—राम "हाथ से" मुँह धोता है। यहाँ " हाथ से " करण कारक है, यद्यपि 'जल' हाथ से भी अधिक आवश्यक है, किन्तु वह वाक्य में न होने से करण कारक नहीं है।

(ख) करणे तृतीया—

अर्थात् करण कारक का बोध कराने के लिये तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। एवं " राम पानी से मुँह धोता है " इसमें

"पानी से" का संस्कृतानुवाद जल शब्द के तृतीयान्त से होगा, यथा जलेन—रामः जलेन मुखं प्रक्षालयति ।

(ग) अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया—

अर्थात् कर्तृवाच्य में जो कर्ता रहता है वह कर्मवाच्य तथा भाववाच्य मे तृतीयान्त हो जाता है ; जैसे—

रामो हन्ति—कर्तृवाच्य, रामेण हन्यते—कर्मवाच्य ।

रामः स्वपिति—कर्तृवाच्य, रामेण सुप्यते—भाववाच्य ।

अहं जीवामि—कर्तृवाच्य; मया जीव्यते—भाववाच्य ।

(घ) प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्—

अर्थात् प्रकृति आदि (स्वभावादि) अर्थों में तृतीया होती है ; जैसे—प्रकृत्या दयालुः—स्वभाव से दयालु ;

नाम्ना श्यामोऽयम्—यह श्याम नामक है ,

सुखेन जीवति—सुख से जीता है , अर्थात् सुखपूर्वक जीता है;

शिशुः क्लेशेन स्थातुं शक्नोति—बच्चा कठिनता से खड़ा हो पाता है ·

अर्जुनः सरलतया पठति—अर्जुन आसानी से पढ़ लेता है ।

नोटः—इन सब उदाहरणों के देखने से यह स्पष्ट है कि यह सूत्र प्रायः उन स्थलों में लगता है जो अँग्रेज़ी में क्रियाविशेषण या क्रियाविशेषण वाक्य कहलाते हैं । उदाहरणार्थ ऊपर के वाक्यों में आए हुए तृतीयान्त " प्रकृत्या—Naturally (adverb) या By

nature (adverbial phrase) से; नाम्ना—By name (adverbial phrase) से; सुखेन—Happily अथवा In happiness (adverbial phrase) से, क्लेशेन—With difficulty (adverbial phrase) से; सरलतया—Easily (adv.) या With ease (adverbial phrase) से अनूदित होते है।

(च) अपवर्गे तृतीया

फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को " अपवर्ग " कहते है, और अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए कालवाची तथा मार्गवाची शब्दो में तृतीया होती है; अर्थात् जितने " समय " में या जितना "मार्ग" चलते चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस " समय " और "मार्ग" में तृतीया होती है; जैसे—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर में व्याकरण पढ़ लिया, अर्थात् महीने भर व्याकरण पढ़ा और भली भाँति आगया, एवं पढ़ने का कार्य महीने भर में सिद्ध हो गया।

क्रोशेन पुस्तकं पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली, अर्थात् एक कोस चलते चलते पुस्तक पढ़ डाली। इसी प्रकार

चतुर्भिः वर्षैर्गृहं निर्मापितवान्—चार वर्ष में घर बनवा लिया।

पञ्चविंशत्या दिवसैः अयमिमं ग्रन्थं लिखितवान्—पचीस दिन में इसने यह ग्रन्थ लिख डाला।

सप्तभिः दिनैः निरोगो जातः—सात दिन में नीरोग हो गया।

योजनाभ्यां कथां समाप्तवान्—दो योजन भर में कहानी खतम कर दी।

(छ) सहसाकसार्धसमयोगे तृतीया

सह, साकं, सार्धं, समं, इन सब शब्दों का अर्थ "साथ" होता है। इनके प्रयोग में तृतीया आती है ; जैसे—

रामः जानक्या सह, साकं, सार्धं, समं वा गच्छति—राम जानकी के साथ जाते हैं। इसी प्रकारः—

पुत्रेण सह पिता गच्छति—पिता पुत्र के साथ जाता है।

हनुमान् वानरैः सह जानकीं मार्गयामास—हनुमान् जी ने बन्दरों के साथ जानकी को खोजा।

मया सह क्रीड—मेरे साथ खेलो।

उपाध्यायः छात्रैः सह स्नाति—उपाध्याय विद्यार्थियों के साथ नहाता है।

नोट—'साथ सङ्ग', आदि के साथ जो शब्द आता है, उसमें हिन्दी में—का— जो षष्ठी का स्थानीय है लगाया जाता है, किन्तु संस्कृत में तृतीया लगाई जाती है।

(ज) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।

पृथक् (अलग), विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक हो सकती है, जैसे—

रामेण, रामं, रामाद् विना दशरथो नाजीवत्—राम के विना दशरथ नहीं जिए।

सीता चतुर्दशवर्षाणि रामं, रामेण, रामाद् वा पृथगुवास—सीता चौदह वर्ष तक राम से अलग रहीं।

जलं, जलेन, जलाद् विना कमलं स्थातुं न शक्नोति—जल के विना कमल नहीं ठहर सकता।

अन्नं, अन्नेन, अन्नाद् विना नरो न जीवति—अन्न के विना मनुष्य नहीं जीता।

कौरवाः पाण्डवेभ्यः पृथगवसन्—कौरव लोग पाण्डवों से अलग रहते थे।

(झ) येनाङ्गविकारः

शरीर के जिस अङ्ग में ख़राबी रहती है उसमें तृतीया होती है; जैसे—

अक्ष्णा काणः—एक आँख का काना।
देवदत्तः शिरसा खल्वाटोऽस्ति — देवदत्त सिर का गंजा है।
गिरिधरः कर्णेन बधिरः — गिरिधर कान का बहरा है।
रमेशः पादेन खञ्जः — रमेश पैर का लँगड़ा है।
सुरेशः कट्या कुब्जः — सुरेश कमर का कुबड़ा है।

यहाँ भी हिन्दी के-का-के स्थान में तृतीया का प्रयोग संस्कृत में होता है।

(ट) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्

"तुला" तथा "उपमा" इन दो शब्दों को छोड़ कर शेष सब तुल्य (समान, बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है, जैसे—

कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्य, सदृशः, समो वा—कृष्ण के बराबर या समान।

दुर्योधनो भीमेन भीमस्य वा तुल्यो बलवान् नासीत्—दुर्योधन भीम के बराबर बली नहीं थे।

नायं मया मम वा समं पराक्रमं बिभर्ति—यह मेरे समान पराक्रम नहीं रखता।

मा लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य।

तुला और उपमा के साथ तृतीया ही होती है—"तेन तुला उपमा वा"।

(ठ) हेतौ तृतीया

जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है या होता है उसमें तृतीया होती है, जैसेः—

पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़े।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

धनं परिश्रमेण भवति—धन परिश्रम से होता है।

तेनापराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण तुम दण्डनीय हो।

बुद्धिः विद्यया वर्धते—बुद्धि विद्या से बढ़ती है।

हेतु में पञ्चमी भी होती है; यथाः—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥
सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥

१०८—चतुर्थी

(क) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्—

जिसे कोई चीज़ दी जाय उसे सम्प्रदान कहते है, जैसे—"ब्राह्मण को गाय देता है"—यहाँ पर "ब्राह्मण" सम्प्रदान है ।

(ख) चतुर्थी सम्प्रदाने

अर्थात् सम्प्रदान में चतुर्थी होती है । इस नियम के अनुसार ऊपर के उदाहरण में "ब्राह्मण" चतुर्थी में होगा, जैसे—"ब्राह्मणाय गां ददाति ।" इसी प्रकार मह्यं पुस्तकं देहि—मुझे पुस्तक दो ।

(ग) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः

रुच् धातु के योग में तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है ; जैसे—

(१) विष्णवे रोचते भक्तिः—विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है।
(२) बालकाय मोदका रोचन्ते—लड़के को लड्डू अच्छे लगते हैं।

(३) सम्यक् भुक्तवते पुरुषाय भोजनं न स्वदते—अच्छी तरह खाए हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता।

यहाँ पर उदाहरण नं० १ में भक्ति से प्रसन्न होने वाले "विष्णु" हैं, उदाहरण न० २ में लड्डुओं से प्रसन्न होने वाला "बालक" है, और उदाहरण न० ३ मे भोजन से प्रसन्न होने वाला "पुरुष" है, इसलिए विष्णवे, बालकाय और पुरुषाय में चतुर्थी हुई।

(घ) धारेरुत्तमर्णः

"धारि" (उधार लेना, कर्ज़ लेना) धातु के योग मे महाजन 'क़र्ज़ देने वाले' की सम्प्रदान संज्ञा होती है; जैसेः—

श्यामः अश्वपतये शतं धारयति—श्याम ने अश्वपति से एक सौ कर्ज़ लिया है।
गोविन्दो रामाय लक्षं धारयति—गोविन्द ने राम से एक लाख उधार लिया है।

(च) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः

अर्थात् क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है वह सम्प्रदान समझा जाता है, जैसेः—

स्वामी भृत्याय क्रुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है।

खलाः सज्जनेभ्य असूयन्ति—दुष्ट लोग सज्जनों में ऐब निकाला करते हैं।

दुर्योधनः पाण्डवेभ्य ईर्ष्यति स्म—दुर्योधन पाण्डवों से ईर्ष्या करता था।

शठाः सर्वेभ्यो द्रुह्यन्ति—शठ लोग सब से द्रोह करते हैं।

सीता रावणाय अकुप्यत्—सीता जी ने रावण के ऊपर कोप किया।

(छ) तुमर्थाच्च भाववचनात्

अर्थात् किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय (के लिए) जोड़ने से जो अर्थ निकलता है (जैसे अतुम् खाने के लिए, पातुम् पीने के लिए आदि) वही अर्थ पाने के लिए उस धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी होती है, जैसे—

यागाय याति—(यष्टुं याति)—यज्ञ करने के लिए जाता है।

इसमें "याग" शब्द "यज्" धातु से बना हुआ भाववाचक है। यज् धातु में तुमुन् जोड़ने से "यष्टु" बनता है, जिसका अर्थ "यज्ञ करने के लिए" होता है। वही (यज्ञ करने के लिए) अर्थ पाने के लिए इस भाववाचक याग शब्द से चतुर्थी कर दी है। इसी प्रकार :—

शयनाय इच्छति (शयितुम् इच्छति)—सोना चाहता है।

उत्थानाय यतते (उत्थातुं यतते)—उठने की कोशिश करता है।

मरणाय गङ्गातट गच्छति (मर्तुं गङ्गातट गच्छति)—मरने के लिए गङ्गातट को जाता है।

दानाय धनमर्जयति (दातुं धनमर्जयति)—देने के लिए धन कमाता है।

(ज) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या—

(१) अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है उस (प्रयोजन) में चतुर्थी होती है ; जैसे—

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है।

शिशुः मोदकाय रोदिति—बच्चा लड्डू के लिए रोता है।

(२) अथवा जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसमें चतुर्थी होती है ; जैसे

शकटाय दारु—गाड़ी (बनाने) के लिए लकड़ी।

आभूषणाय सुवर्णम्—ज़ेवर (बनाने) के लिए सोना।

(३) यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है ; जैसे—

काव्यं यशसे—यश के लिए काव्य, अर्थात् काव्य से यश होता है।

भक्तिः ज्ञानाय—ज्ञान के लिए भक्ति, अर्थात् भक्ति से ज्ञान होता है।

(झ) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः

अर्थात् जब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे तो उसके "कर्म" में चतुर्थी होती है; जैसे—

फलेभ्यो याति—(फलानि आनेतुं याति)—फलों को लाने के लिए जाता है।

इस वाक्य का यथार्थ अर्थ ' फलानि आनेतु याति ' है, किन्तु " फलेभ्यो याति " मे तुमुनन्त " आनेतुम् " का प्रयोग परोक्ष है, और " आनेतुम् " का कर्म " फलानि " है, इसलिए " फल " शब्द मे चतुर्थी हुई। इसी प्रकार :—

नमस्कुर्मो नृसिंहाय—(नृसिंहमनुकूलयितुं नमस्कुर्मः)—नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य—(स्वयम्भुवं प्रीणयितुं नमस्कृत्य)—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गा मुमोच—(वनं गन्तु गा मुमोच)—वन जाने के लिए गाय छोड़ दी।

(ट) नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च—

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अल, तथा वषट् शब्दो के योग में चतुर्थी होती है, जैसे—

तस्मै श्रीगुरवे नमः—उन गुरु जी को नमस्कार।

रामाय नमः, तुभ्यं नमः ।

स्वस्ति भवते—आप का कल्याण हो ।

प्रजाभ्यः स्वस्ति—प्रजाओं का कल्याण हो ।

अग्नये स्वाहा—यह आहुति अग्नि को ।

पितृभ्यः स्वधा ।

इन्द्राय वषट् ।

दैत्येभ्यो हरिः अलम्—हरि दैत्यों के लिए काफी हैं ।

अलं मल्लो मल्लाय—पहलवान, पहलवान के लिए काफ़ी है ।

(ठ) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।

जब अनादर दिखाया [illegible] है तो मन् (समझना, दिवादिगणी) धातु के कर्म में चतुर्थी या द्वितीया होती है, जैसे—

न त्वा तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुम्हे तिनके के बराबर भी नहीं समझता ।

१०९—पञ्चमी

(क) ध्रुवमपायेऽपादानम्

जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे अपादान कहते हैं, जैसे—"[illegible] कोठे से गिर पड़ा"। यहाँ पर वह कोठे से अलग हो रहा [illegible] इसलिए "कोठे से" अपादान है, इसी प्रकार "पेड़ से [illegible] गिरते हैं",—में "पेड़" और "राम गाँव से चला गया" में "गाँव" अपादान है।

(ख) अपादाने पञ्चमी

अर्थात् अपादान में पञ्चमी होती है। इस सूत्र के अनुसार ऊपर के वाक्यों में आए हुए "कोठे से" का "प्रासादात्" से, "पेड़ से" का "वृक्षात्" से, और "गाँव से" का "ग्रामात्" से संस्कृत में अनुवाद होगा। सम्पूर्ण वाक्यों का स्वरूप इस प्रकार होगा :—

स प्रासादात् अपतत्,
वृक्षात् पर्णानि पतन्ति,
रामो ग्रामाद् जगाम।

(ग) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्

जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल करना) के समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ पञ्चमी होती है। (जिस वस्तु से घृणा करे, जिससे हटे अर्थात् जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, इन सब में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है)। धैर्यवान् पुरुष अपने निश्चय से नहीं हटते ; राजा कर्म से नहीं टला, पाप से घृणा करता है, धर्म में भूल करता है, अपना फ़र्ज़ भूल गया। इन वाक्यों में रेखाङ्कित शब्दों में संस्कृत में पंचमी होगी। जैसे—

न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः।

न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः—वह नया राजा तब तक कर्म से न हटा जब तक कि उसे फल न मिल गया।

वत्सैतस्माद्विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि।

प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः॥

पापाज्जुगुप्सते। धर्मात्प्रमाद्यति।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः।

(घ) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च।

जब ल्यप् (प्रेक्ष्य, आनीय आदि) अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त (दृष्ट्वा, गत्वा आदि) क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती किन्तु छिपी रहती है तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी में होते हैं; जैसे—

श्वशुराज्जिह्रेति—ससुर से लज्जा करती है।

वास्तव में इस वाक्य को पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका रूप यों होगा—

" श्वशुरं वीक्ष्य दृष्ट्वा वा जिह्रेति; " अर्थात् ससुर को देख कर लज्जा करती है, ' श्वशुराज्जिह्रेति ' में 'दृष्ट्वा' या 'वीक्ष्य' प्रकट नहीं किया गया है इसलिए ' दृष्ट्वा ' का कर्म ' श्वशुर ' पञ्चमी में हो गया।

आसनात्प्रेक्षते—आसन से देखता है।

वास्तविक रूप पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका आकार यों होगा:—

" आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते " अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है। " आसनात्प्रेक्षते " में 'उपविश्य' या 'स्थित्वा' प्रकट नहीं किया गया है, इसलिए " उपविश्य " का आधार 'आसन' सप्तमी में न होकर पञ्चमी में हो गया।

(च) वारणार्थानामीप्सितः

जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है वह अपादान होता है; जैसे—

यवेभ्यो गां वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

मित्रं पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है।

यहाँ पर रोकने वाले की इच्छा जौ बचाने की और पाप से हटाने की है; गाय को जौ से दूर करता है और मित्र को पाप से, इसलिए जौ और पाप में अपादान कारक होने के कारण पंचमी का प्रयोग हुआ।

(छ) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति

जब कोई अपने को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है वह अपादान होता है; जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

यहाँ पर कृष्ण अपने को "माता से" छिपाता है, इसलिए "माता से" अपादान कारक हुआ।

(ज) आख्यातोपयोगे

जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज़ नियम पूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है; जैसे—

उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप जान करके उसने।

अध्यापकाद् गणितं पठति—अध्यापक से गणित पढ़ता है।

तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि—उन लोगों से वेद पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहाँ से इस स्थान पर चली आई हूँ।

(झ) जनिकर्तुः प्रकृतिः

जन् धातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है; जैसे—

कामात्क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है।

यहाँ "अभिजायते" का कर्ता "क्रोध" है, और इस कर्ता 'क्रोध' का "आदि कारण" "काम" है; इसलिए काम अपादान कारक है।

(ट) भीत्रार्थानां भयहेतुः

जिसके कारण डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण रक्षा करनी हो उस कारण को अपादान कहते हैं; जैसे—

चोराद् बिभेति—चोर से डरता है।

सर्पाद् भयम्—साँप से डर है।

इनमें भय के कारण "चोर" और "साँप" हैं, इसलिए ये अपादान हैं।

रक्ष मां नरकपातात्—नरक में गिरने से मुझे बचाओ।

भीमाद्दुःशासनं त्रातुम्—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए।

यहाँ भी "नरकपात" तथा "भीम" भय के कारण हैं, इसलिए अपादान हैं।

(ठ) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी–

(१) जिस स्थान से किसी दूसरे स्थान की दूरी दिखाई जाती है तो जिससे दूरी दिखाई जाती है वह स्थान पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है।

तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ–

और जितनी दूरी दिखाई जाती है वह दूरी वाचक शब्द प्रथमा विभक्ति में या सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है ; जैसे—

मम गृहात् प्रयागः योजनत्रयमस्ति अथवा मम गृहात् प्रयागः योजनत्रये अस्ति—

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह " घर " है, इसलिए घर पंचमी विभक्ति में रक्खा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह "तीन योजन " है, इसलिए 'तीन योजन' प्रथमा में अथवा सप्तमी में रक्खा गया है। इसी प्रकार और उदाहरण हो सकते हैं :—

कर्णपुरात् प्रयागः अष्टादशयोजनानि अष्टादशयोजनेषु वा।

भरद्वाजाश्रमात् गङ्गायमुनयोः सङ्गमः क्रोशः क्रोशे वा इत्यादि।

(२) जिस समय से किसी दूसरे समय की दूरी दिखाई जाती है वह समय पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है।

कालात् सप्तमी वक्तव्या–

और जितनी दूरी दिखाई जाती है वह दूरी वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है ; जैसे—

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है।

यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा से दूरी दिखाई गई है, इस लिए उसमें पचमी हुई और एक महीने की दूरी दिखाई गई है इस लिए "महीने" में सप्तमी हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हो सकते हैं—

अस्मात् दिवसात् गुरुपूर्णिमा दशसु दिवसेषु।

आश्विनमासस्य प्रथमदिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशतिदिवसेषु इत्यादि।

(ढ) पञ्चमी विभक्ति

ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण (देखिए नि० १०३) के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक भेद दिखाया जाता है उसमें पञ्चमी होती है; जैसे :—

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयः तदभावे सदप्यसत्॥
माता गुरुतरा भूमेः खात्पितोच्चतरस्तथा।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
एकाक्षरं परं ब्रह्म, प्राणायामाः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति, मौनात् सत्यं विशिष्यते॥

इन उदाहरणों में "बढ़ाने से रक्षा करना अच्छा है," यहाँ बढ़ाने से रक्षा करने का भेद दिखाया गया है, इसलिए बढ़ाने में पञ्चमी हुई। इसी प्रकार :—

भूमि से माँ बड़ी है।

आकाश से पिता ऊँचा है।

दूसरे के धर्म से अपना धर्म अच्छा है।

सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं।

मौन से सत्य श्रेष्ठ है, आदि उदाहरण भी हैं।

सप्तमी

(क) आधारोऽधिकरणम्–

जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरण कहते हैं; जैसे :—

वह पाठशाला में पुस्तक पढ़ता है;

यहाँ पर " पाठशाला में " अधिकरण है।

(ख) सप्तमी अधिकरणे–

अधिकरण में सप्तमी होती है। इस नियम के अनुसार पाठशाला शब्द को सप्तमी में रखना होगा ; यथा :—

पाठशालायां पुस्तकं पठति।

(ग) यतश्च निर्धारणम्

यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं से किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश किया जाता है, अर्थात् विशिष्टता दिखाई जाती है तो वह समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी में रक्खा जाता है; जैसे :—

कविषु कालिदासः श्रेष्ठः, या कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः	कवियो में कालिदास सब से बड़े हैं।
गोषु कृष्णा बहुक्षीरा, या गवां कृष्णा बहुक्षीरा	गायो में काली गाय बहुत दूध देने वाली होती है।
छात्राणां मैत्रः पटुः, या छात्रेषु मैत्रः पटुः	विद्यार्थियो में मैत्र तेज़ है।

इन उदाहरणो में यह दिखाया गया है कि काली गाय में कुछ विशिष्टता है, कालिदास और मैत्र में कुछ विशिष्टता है। ये तीनो विशेष कारण से अपने २ समुदाय में (गायो, कवियों और छात्रों में) विशिष्ट हैं।

(घ) यस्य च भावेन भावलक्षणम्—

जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है तो जो कार्य हो चुकता है उसको सप्तमी में रखते हैं, जैसे —

सूर्ये अस्तगते गोपाः गृहम् अगच्छन्—सूर्य के अस्त हो जाने पर ग्वाले अपने घर चले गए।

रामे वनं गते दशरथः प्राणान् तत्याज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया।

सुरेशे गायति सर्वे जहसुः—सुरेश के गाने पर सब हँस पड़े।

सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति—सब के सो जाने पर श्यामा रोती है।

यहाँ पर सूर्य के अस्त होने पर ग्वालों का घर जाना ; राम के वन जाने पर दशरथ का प्राण त्याग करना ; सुरेश के गाने पर सब का हँसना, तथा सब के सो जाने पर श्यामा का रोना प्रतीत होता है ; इसलिए सूर्ये, रामे, सुरेशे, सर्वेषु ये सब के सब सप्तमी में हैं।

नोट—अँग्रेज़ी में जिसे Nominative absolute कहते हैं, वही संस्कृत में हो चुका हुआ कार्य अथवा 'सति सप्तमी' अथवा 'भावे सप्तमी' बोला जाता है।

१११—ऊपर के सूत्रो से यह विदित हुआ कि—

प्रथमा विभक्ति कर्तृवाच्य के कर्ता के लिए तथा सम्बोधन के लिए।
द्वितीया विभक्ति कर्म के लिए
तृतीया विभक्ति करण के लिए
चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान के लिए
पञ्चमी विभक्ति अपादान के लिए और
सप्तमी विभक्ति अधिकरण के लिए प्रधान रूप से प्रयोग में आती हैं। अर्थात् ये छः विभक्तियाँ एक २ करके छहो कारकों का बोध कराती हैं। शेष रही षष्ठी विभक्ति, इसका क्या प्रयोग है ? ऊपर (१०४ में) कह आए है कि केवल ऐसे शब्द (संज्ञा अथवा सर्वनाम) जिनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है कारक कहे जाते हैं, इन कारकों का सम्बन्ध क्रिया से स्थापित करने के लिए, षष्ठी को छोड़ कर और सारी विभक्तियाँ

आती हैं। षष्ठी का वाक्य की क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वह तो संज्ञा का संज्ञा से अथवा संज्ञा का सर्वनाम से सम्बन्ध स्थापित करती है ; जैसे :—

श्यामः गोविन्दस्य पुत्रं ताडितवान्—

यहाँ मारने की क्रिया से गोविन्द का कोई सम्बन्ध नहीं, सम्बन्ध है तो गोविन्द के पुत्र का और श्याम का। हाँ, गोविन्द का पुत्र से सम्बन्ध है,

किन्तु गोविन्द और पुत्र दोनों संज्ञाएँ है। श्यामः मम पुत्रं ताडितवान्।

यहाँ 'मेरा' का पुत्र से सम्बन्ध है, क्रिया से नहीं, और 'मेरा' सर्वनाम है और 'पुत्र' संज्ञा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि षष्ठी किसी कारक का बोध नहीं कराती। उसका क्या उपयोग है वह नीचे के सूत्रों से प्रकट होगा।

११२—षष्ठी

(क) षष्ठी शेषे—

इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो बात और विभक्तियों से नहीं बतलाई जा सकती, उसको बतलाने के लिए षष्ठी होती है। वे बातें सम्बन्ध विशेष हैं। जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाए जाते हैं वहाँ षष्ठी होती है जैसे :—

राज्ञः पुरुषः—राजा का पुरुष।

यहाँ पर ' राजा ' स्वामी है, ' पुरुष ' भृत्य है। इस " स्वामी तथा भृत्य " का सम्बन्ध दिखाने को " राज्ञः " में षष्ठी हुई है।

बालस्य माता – बालक की माँ।

यहाँ पर ' बालक ' जन्य अर्थात् " पैदा होने वाला " है और ' माता ' जननी अर्थात् " पैदा करने वाली " है, एवं इसमें "जन्य-जनक" सम्बन्ध है, और इसी को दिखलाने के लिए "बालस्य" में षष्ठी हुई है।

मृत्तिकायाः घटः—मिट्टी का घड़ा।

यहाँ पर ' मिट्टी ' कारण है और ' घड़ा ' कार्य है। एवं इसमें "कारणकार्य" सम्बन्ध है, और इसी को दिखाने के लिए ' मृत्तिकायाः ' में षष्ठी हुई है।

(ख) षष्ठी हेतुप्रयोगे

जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनों षष्ठी में रक्खे जाते हैं, जैसे:—

अन्नस्य हेतोः वसति—वह अन्न के वास्ते रहता है, अर्थात् अन्न पाने के प्रयोजन से रहता है।

यहाँ रहने का कारण या प्रयोजन "अन्न" है, इसलिए "अन्नस्य" में और "हेतोः" दोनों में षष्ठी हुई है।

अध्ययनस्य हेतोः काश्यां तिष्ठति—अध्ययन के लिए काशी में टिका है।

यहाँ पर टिकने का प्रयोजन या कारण "अध्ययन" है, इस लिए "अध्ययनस्य" और "हेतोः" दोनों में षष्ठी हुई है।

(ग) सर्वनाम्नस्तृतीया च

जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है तो सर्वनाम और हेतु शब्द—दोनों मे तृतीया, पंचमी या षष्ठी होती है; जैसेः—

कस्य हेतोः अत्र वसति
या
कस्मात् हेतो अत्र वसति —किस लिए यहाँ टिका है।
या
केन हेतुना अत्र वसति

यहाँ पर "किम्" शब्द सर्वनाम है, इसलिए "कस्य" में षष्ठी और "केन" में तृतीया और 'कस्मात्" में पंचमी हुई है। इसी प्रकार —

तेन हेतुना
तस्माद् हेतोः —उस कारण से।
तस्य हेतोः

येन हेतुना
यस्माद् हेतोः —जिस कारण से
यस्य हेतोः

(घ) निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्

"निमित्त" शब्द का अर्थ रखने वाले (कारण, हेतु, प्रयोजन आदि) शब्दों का प्रयोग होने पर सर्वनाम में तथा निमित्त का अर्थ रखने वाले शब्दों में प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं; जैसेः—

किं निमित्तम्	को हेतुः	तत् प्रयोजनम्
केन निमित्तेन	कं हेतुं	तेन प्रयोजनेन
कस्मै निमित्ताय	केन हेतुना	तस्मै प्रयोजनाय
कस्मात् निमित्तात्	कस्मै हेतवे	तस्मात् प्रयोजनात्
कस्य निमित्तस्य	कस्मात् हेतोः	तस्य प्रयोजनस्य
कस्मिन् निमित्ते	कस्य हेतोः	तस्मिन् प्रयोजने
	कस्मिन् हेतौ	

किन्तु जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होतीं, शेष सब विभक्तियाँ होती हैं; जैसेः—

ज्ञानेन निमित्तेन
ज्ञानाय निमित्ताय
ज्ञानात् निमित्तात् —ज्ञान के वास्ते।
ज्ञानस्य निमित्तस्य
ज्ञाने निमित्ते

(च) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन

अतसुच् (तस्) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों (दक्षिणतः, उत्तरतः आदि) की तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों (उपरि, अधः, अग्रे, आदौ, पुरः आदि) की जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें षष्ठी होती है; जैसेः—

ग्रामस्य दक्षिणतः, उत्तरतः, ।
रथस्योपरि रथस्य उपरिष्टात् ।
पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा ।

वृक्षस्य अधः, वृक्षस्य अधस्तात्।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोः।

नोट—ये शब्द दिशा अथवा काल का बोध कराते हैं, उपरि, अधि, अधः जब दोहरा कर आते हैं तब षष्ठी का प्रयोग नहीं होता किन्तु द्वितीया का (देखिए १०६ घ)।

(छ) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्

दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पंचमी होती है; जैसे:—

वनं ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्—जङ्गल गाँव से दूर है।

अभ्यासतो माधवीमण्डपस्य—माधवी लता के कुञ्ज के समीप।

कर्णपुरं प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपम्—कानपुर प्रयाग से या प्रयाग के समीप है।

नोट—जिससे दूरी दिखाई जाती है उसमें षष्ठी या पंचमी होती है, किन्तु दूर वाची या निकट वाची शब्दों में द्वितीया आदि (देखिए १०६ड)

(ज) अधीगर्थदयेशां कर्मणि

अधि पूर्वक 'इ' धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इन का अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है; जैसे:—

मातुः स्मरति—माता को याद करता है।

स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः—रामचन्द्र जी के बाणों को याद करता हुआ रावण दुःखी हुआ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः—महाराज अपनी पुत्री के ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः— मैं अपने अङ्गों का मालिक न रहा।

कथञ्चिदीशा मनसां बभूवु—उन लोगों ने बड़ी कठिनाई से अपने मन को अपने बस में रक्खा।

शौवस्तिकत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्माद्—

जिनका धन प्रातःकाल तक भी नहीं टिकता उनके ऊपर तू क्यों नहीं दया करता।

रामस्य दयमानः— राम के ऊपर दया करता हुआ।

(झ) कर्तृकर्मणोः–कृति

जब कोई क्रिया कृदन्त प्रत्यय के द्वारा प्रकट की जाती है (जैसे जाने की क्रिया "गतिः" से, याद करने की "स्मृतिः" से) तो उस क्रिया का जो कर्ता या कर्म होता है वह कृदन्त प्रत्ययान्त शब्द के साथ षष्ठी में रक्खा जाता है ; उदाहरणार्थ —

कृष्णस्य कृतिः—कृष्ण का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक कृति शब्द है जो कि कृ धातु में कृदन्त क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है। और इसका कर्ता "कृष्ण" है। इसलिए कृत् प्रत्ययान्त "कृतिः" शब्द के साथ कर्ता "कृष्ण" में षष्ठी हुई है। इसी प्रकारः —

रामस्य गतिः—राम की गति (चाल)।

बालकानां रोदनम्—बालकों का रोना।

वेदस्य अध्येता—वेद का अध्ययन करने वाला।

यहाँ पर "अध्येता" अधि उपसर्ग पूर्वक "इङ्" [illegible] तृच प्रत्यय से बना है; इसका कर्म 'वेद' है। इसलिए [illegible] शब्द के साथ कर्म "वेद" में षष्ठी हुई है।

इसी प्रकारः—

विषस्य भोजनम्—विष का खाना।

राक्षसानां घातः—राक्षसों का वध।

राज्यस्य प्राप्तिः—राज्य की प्राप्ति।

(ट) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्

'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से सभी कृदन्त प्रत्ययों के योग में कर्ता और कर्म में षष्ठी का विधान किया गया था; किन्तु 'नलोकाव्यय' सूत्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' के क्षेत्र को छोटा कर देने वाला है। इसका अर्थ है:—

लकार के अर्थ में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में, उ, उक में अन्त होने वाले कृदन्त शब्दों के योग में, कृदन्त अव्यय के योग में; निष्ठा (क्त, क्तवतु), में अन्त होने वाले शब्दों के योग में खञ् तथा खल् के समान अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में तथा तृन् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती।

जो प्रत्यय जिस लकार में प्रयुक्त होता है वह नीचे दिखाया जाता है —

शतृ तथा शानच्— लट् लकार के अर्थ में।
क्वसु तथा कानच्— लिट् लकार के अर्थ में।
स्यतृ तथा स्यमान— लृट् लकार के अर्थ में।

शतृ तथा शानच् "तृन्" प्रत्याहार के अन्तर्गत भी हैं, इसलिए उनके उदाहरण यहाँ न दिया जाकर उसी जगह पर दिया जायगा, यहाँ पर क्वसु कानच्, स्यतृ, स्यमान के उदाहरण दिए जाँयगे:—

क्वसु—काशी जग्मिवान् पुरुषः स्वर्गं लभते—
काशी गया हुआ पुरुष स्वर्ग पाता है।

कानच्—परोपकारं चक्राणाः जनाः ख्यातिं गच्छन्ति—
परोपकार कर चुके हुए लोग विख्यात हो जाते हैं।

स्यतृ—वन्यान् दुष्टसत्त्वान् विनेष्यन् इव—
जङ्गल के दुष्ट जीवों को सिखाता हुआ सा।

स्यमान—अक्षयवटं पूजयिष्यमाणा यात्रिणः गङ्गतीरे एव स्थास्यन्ति।
जो यात्री अक्षयवट की पूजा करना चाहेंगे वे गङ्गा के तीर ही टिक जाँयगे।

'उ' तथा 'उक' प्रत्यय के उदाहरण.—

उ—हरिं दिदृक्षुः—हरि को देखने का इच्छुक।

उक—दैत्यान् घातुको हरिः—हरि दैत्यों के हन्ता हैं।

कृदन्त अव्यय प्रधानतया णमुल्, क्त्वा, ल्यप्, तुमुन् इत्यादि प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं, उनके उदाहरण —

णमुल्—स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः—अपने घर का चरित याद कर कर के मुरारि काष्ठ हो गए।

क्त्वा—संसारं सृष्ट्वा—संसार को रच कर ।

ल्यप्—सीतां परित्यज्य लक्ष्मणोऽयासीत् ।

सीता को त्यागकर लक्ष्मण जी चले गए ।

तुमुन्—यशोऽधिगन्तु सुखमीहितुं वा मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा ।

यश पाने के लिए या सुख चाहने के लिए या मनुष्यों से बढ़ जाने के लिए ।

क्त तथा क्तवतु 'निष्ठा' कहलाते हैं, उनके उदाहरण:—

क्त—विष्णुना हता दैत्याः—दैत्यलोग विष्णु से मार डाले गए ।

क्तवतु— दैत्यान् हतवान् विष्णुः—विष्णु ने दैत्यो को मार डाला ।

खल् के उदाहरण :—

सुकरः प्रपञ्चो हरिणा—हरि का संसार-प्रपञ्च आराम से होता है ।

तृन् प्रत्याहार के अन्तर्गत ये प्रत्यय हैं —शतृ, शानच्, शानन्, चानश्, तृन् । इनके उदाहरण ये हैं :—

शतृ—बालकं पश्यन्= लड़के को देखता हुआ ।

शानच्—क्लेशं सहमानः= दुःख सहता हुआ ।

शानन्—सोमं पवमानः= सोमरस को पीता हुआ ।

चानश्—आत्मानं मण्डयमानः=अपने को अलङ्कृत करता हुआ ।

तृन्—कर्ता कटान्—चटाइयो को बनाने वाला ।

नोट—इन सब प्रत्ययों का व्याख्यान "कृदन्त-विचार" में आगे मिलेगा ।

(ठ) क्तस्य च वर्त्तमाने

जब क्त प्रत्ययान्त शब्द (जो कि अधिकांश में भूतकाल का बोधक है ; जैसे—स गतः=वह गया) वर्त्तमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है तो षष्ठी होती है; जैसे :—

अहं राज्ञो मतो बुद्धः पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, जानते हैं अथवा पूजते हैं।

यहाँ पर मत, बुद्ध तथा पूजित में जो क्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है वह वर्त्तमान के अर्थ में है; इस वाक्य की व्याख्या यों होगी:—

मां राजा मन्यते, बोधति, पूजयति वा।

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् (रघुवंश, १० सर्ग, ३६ श्लोक) उससे पीडित होते हुए तीनों भवन मुझे मालूम है।

यहाँ पर भी 'विदितं' का क्त प्रत्यय वर्त्तमान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वर्त्तमान काल के स्वरूप में लाने पर इस वाक्य का आकार यों होगा :—

तेन तप्यमानं भुवनत्रयम् अहं वेद्मि।

(ड) कृत्यानां[1] कर्तरि वा

जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर कर्ता में तृतीया तथा षष्ठी होती है ; जैसे :—

---

[1] कृत्य प्रत्यय ये हैं :—
तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत्, क्यप् और केलिमर्

गुरुः मया पूज्यः
या　　—गुरु जी मेरे पूज्य हैं।
गुरुः मम पूज्यः

न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभि —भृत्यों को अपने स्वामियों को न ठगना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि कैसे मालूम पड़े कि "मम, मया तथा अनुजीविभि" कर्ता हैं। उत्तर यह है कि 'पूज्यः' तथा 'वञ्चनीयाः' इत्यादि जो कृत्य प्रत्ययान्त क्रियाएं हैं, उन्हें बदल कर इन वाक्यों को तिङन्त क्रियाओं द्वारा कर्तृवाच्य में प्रकट करना चाहिए ; जैसे :—

गुरुः मम पूज्यः—अहं गुरुं पूजयेयम्।

प्रभवोऽनुजीविभिः न वञ्चनीयाः—अनुजीविनः प्रभून् न वञ्चयेयुः।

अब स्पष्ट है कि "अहं" तथा "अनुजीविनः" जो कि यथार्थ कर्ता हैं, प्रथमा विभक्ति में आ गए हैं। कर्त्ता होने से ही ये कृत्य क्रियाओं के साथ तृतीया या षष्ठी में हो जाते हैं।

(८) षष्ठी चानादरे

जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है उसमें षष्ठी या सप्तमी होती है, जैसे—

पश्यतोऽपि राज्ञः द्विगुणमपहरन्ति धूर्ताः—राजा के देखते रहते भी धूर्त लोग दुगुना चुरा लेते हैं।

रुदतः पुत्रस्य स प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह संन्यासी हो गया।

निवारयतोऽपि पितुः अध्ययनं परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्,
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम्।
अयि जलधर शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोय
वितरसि बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः॥

ऐ बादल! तेरा यह कैसा भारी गर्व है कि जंगल की आग की ज्वालाओं से भस्म हो गए हुए, गलित लताओं वाले, मुरझाते हुए वृक्षों का अनादर करके तू पर्वतों के शिखरों पर तमाम पानी देता है।

यहाँ पर "वृक्षों का" अनादर किया गया है, इसलिए "भूरुहाणाम्" में षष्ठी है।

अष्टम सोपान

समास विचार

११३—(क) छठे सोपान में विभक्तियों का प्रयोग बताया गया है। किन्तु कहीं कहीं शब्दों की विभक्तियों का लोप करके शब्द छोटे कर लिए जाते हैं। यह तब सम्भव होता है जब दो या दो से अधिक शब्द एक साथ जोड़ दिए जाते हैं। इस साथ में जोड़ने को ही मोटे ढंग से 'समास' कहते हैं।

'समास' शब्द सम् (भली प्रकार) उपसर्ग लगा कर अस् (फेंकना) धातु से बना है और इसका प्रायः वही अर्थ है जो 'संक्षेप' शब्द का, अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार साथ रख देना कि उनके आकार में कुछ कमी भी हो जाए और अर्थ भी पूर्ण विदित हो। जैसे :—

सभायाः पतिः = सभापतिः।

यहाँ 'सभापति' का वही अर्थ है जो 'सभायाः पतिः' का, किन्तु दोनों को साथ कर देने से "सभायाः" शब्द के विभक्तिसूचक प्रत्यय (–याः) का लोप हो गया और इस कारण शब्द 'सभापतिः' "सभायाः पतिः" से छोटा हो गया।

जैसे दो शब्दों को जोड़ कर समास करते हैं, वैसे दो या अधिक समास (समस्त शब्द) भी जोड़े जा सकते हैं; जैसे—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः, धनस्यवार्ता = धनवार्ता, इस प्रकार दो समस्त शब्द हुए, अब यदि ये दोनों जोड़ दिए जाँय तो (राजपुरुषस्य धनवार्ता =) "राजपुरुषधनवार्ता" यह एक समस्त पद बना। इस प्रकार कितने ही शब्दों को जोड़ कर लम्बे २ समास बनाये जा सकते हैं। संस्कृत-साहित्य में किसी २ ग्रन्थ में ऐसे २ समास हैं जो कई पंक्तियों के हैं। इनका अर्थ निकालना कठिन हो जाता है और इसी से ग्रन्थ जटिल हो जाता है।

(ख) किसी समस्त शब्द को तोड़ कर उसका पूर्वकाल का रूप दे देना "विग्रह" कहलाता है। विग्रह का अर्थ है—टुकड़े २ करना। समस्त शब्द के टुकड़े करके ही पूर्व रूप दिखाया जा

सकता है, इस लिए वह विग्रह है। उदाहरणार्थ 'धनवार्ता' का विग्रह 'धनस्य वार्ता' हुआ।

किन शब्दों को कैसे और किन के साथ जोड़ सकते हैं इसके सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नियम संस्कृत–व्याकरणकारों ने नियत कर रक्खे हैं। ऐसा नहीं है कि जिस शब्द को जब चाहा तब दूसरे के साथ जोड़ दिया। उदाहरणार्थ :—

'रघुवंश का लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि था'—इस वाक्य का अनुवाद हुआ 'रघुवंशस्य लेखकः कालिदासः प्रसिद्धः कविः आसीत्'। इस संस्कृत वाक्य में यदि समास करें तो इस प्रकार होगा 'रघुवंशलेखककालिदासः प्रसिद्धकविः आसीत्'। "कविः" और "आसीत्" में समास नहीं हुआ, "कालिदासः" और "प्रसिद्धः" में नहीं हुआ।

कब किन दशाओं में समास हो सकता है, इसके मुख्य मुख्य नियम इस सोपान में दिए जाएंगे।

११४–(क) समास के मुख्य चार भेद हैं—

(१) अव्ययीभाव

(२) तत्पुरुष

(३) द्वन्द्व—और

(४) बहुव्रीहि।

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो प्रसिद्ध समास हैं—(१) कर्मधारय और (२) द्विगु; इस लिए कभी कभी समास के छः भेद बनाए जाते हैं। इन छः भेदों के नाम इस श्लोक में आते हैं :—

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं　मद्गेहे　नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष　कर्मधारय　येनाहं　स्यामबहुव्रीहिः ॥

यह किसी याचक की किसी दाता से प्रार्थना है—"मै द्वन्द्व हूं; अर्थात् मैं दो हूं (मै और मेरी स्त्री), मैं द्विगु भी हूं, अर्थात् मेरे दो गाएं भी हैं; मेरे घर में नित्य अव्ययीभाव रहता है, अर्थात् मेरे घर कभी कुछ ख़र्च नहीं होता (क्यों कि ख़र्च करने को द्रव्य ही नहीं)। इस लिये हे पुरुष, वह काम करो जिससे मैं बहुव्रीहि हो जाऊं अर्थात् मेरे घर में बहुत सा धान्य हो जावे।

(ख) समास के चार भेद समास में आए हुए दोनो शब्दो की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किए गए है। अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्रायः दूसरा, द्वन्द्व में प्रायः दोनो प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनो में से एक भी प्रधान नहीं रहता, दोनो मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं।

११५–अव्ययीभाव समास–

(क) 'अव्ययीभाव' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना। यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुंजी है। अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं—इनमें से प्रथम प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा संज्ञा शब्द। दोनो मिलकर अव्यय हो जाते हैं। किसी अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते। अन्तिम शब्द का नपुंसक लिङ्ग के एक

वचन में जैसा रूप होता है वही रूप अव्ययीभाव समास का हो जाता है और वही नित्य रहता है। उदाहरणार्थ :—

यथा कामः (काममनतिक्रम्य इति) यथाकामम्—जितनी इच्छा हो उतना।

" यथाकामम् " में दो शब्द आए—(१) यथा और (२) काम : इनमें यथा शब्द प्रधान है, दोनो मिल कर एक अव्यय हुए—(यथाकामं के रूप नहीं चलेंगे) और अन्तिम शब्द ' काम ' ने पुंलिङ्ग होते हुए भी वह रूप धारण किया जो वह तब धारण करता जब नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में होता, इसी प्रकार यथाशक्ति (जितनी सामर्थ्य हो उतना), अन्तर्गिरि (पहाड़ के अन्दर), उपगङ्गम् (गङ्गायाः समीपे), प्रत्यहम् (अहः अहः), सबाष्पम् (बाष्पैः सह) इत्यादि।

(ख) अव्ययीभाव समास बनाते समय इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण यदि दीर्घ रहे तो ह्रस्व कर दिया जाता है। यदि अन्त में " ए " अथवा " ऐ " हो तो उसके स्थान में " इ " और यदि " ओ " अथवा " औ " हो तो उसके स्थान में " उ" हो जाता है, जैसे—

उप+गङ्गा (गङ्गायाः समीपे)=उपगङ्ग (और इसको नपु० एकवचन में नित्य रखते है इस लिए)=उपगङ्गम्।

उप+नदी (नद्याः समीपे)=उपनदि।

उप+वधू (वध्वाः समीपे)=उपवधु ।

उप+गो (गावः समीपे)=उपगु ।

उप+नौ (नावः समीपे)=उपनु ।

(२) अन् में अन्त होने वाली संज्ञाओं का " न् " (पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही, और नपुंसकलिङ्ग में इच्छानुसार) निकाल दिया जाता है, जैसे :—

उप+राजन् (राज्ञः समीपे)=उपराज=उपराजम्,

उप+सीमन् (सीम्नः समीपे)=उपसीम=उपसीमम्;

(नपु०) उप+चर्मन् (चर्मणः समीपे) = उपचर्म अथवा उपचर्मन्, उपचर्मम् (यदि न् निकाल दिया जाय,) अथवा उपचर्म (यदि " न् " न निकाला जाए तो) उपचर्मन् होगा ।

(३) संज्ञाओं के अन्त में कभी कभी नित्य और कभी कभी इच्छानुसार अ जोड़ कर संज्ञा अकारान्त बना ली जाती है; यदि संज्ञा किसी व्यंजन में अन्त होती हो तभी यह संभव है । उदाहरणार्थ :—

उप+सरित् (सरितः समीपे)=उपसरितम् अथवा उपसरित् ।

शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, अनडुह्, दिव्, हिमवत्, गिर्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, तद्, यद्, कियत्, जरस् इनमें अकार अवश्य जोड़ दिया जाता है, जैसे—

उपशरदम्, [illegible], उपदिशम् ।

(ग) अव्ययीभाव में जो अव्यय आते हैं उनके प्रायः ये अर्थ होते हैं[1]:—

(१) किसी विभक्ति का अर्थ, यथा--अधि+हरि (हरौ)=अधिहरि।

(२) समीप का अर्थ, यथा—उप+गङ्गा=उपगङ्गम्।

(३) समृद्धि का अर्थ, यथा—सु + मद्र (मद्राणां समृद्धिः) =सुमद्रम्।

(४) व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) का अर्थ, यथा—दुर् + यवन (यवनानां व्यृद्धिः)=दुर्यवनम्।

(५) अभाव, यथा—निर्+मशक (मशकानामभावः)=निर्मशकम्।

(६) अत्यय (नाश) यथा—अति+हिम (हिमस्यात्ययः) = अतिहिमम्।

(७) असम्प्रति (अनौचित्य) यथा—अति+निद्रा (निद्रा सम्प्रति न युज्यते)=अतिनिद्रम्।

(८) शब्द प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश) यथा—इति+हरि (हरि शब्दस्य प्रकाशः)=इतिहरि।

(९) पश्चात्, यथा--अनु+विष्णु (विष्णोः पश्चात्)=अनुविष्णु।

(१०) यथा का भाव (योग्यता) यथा—अनु+रूप (रूपस्य योग्यः) =अनुरूपम्।

---

१ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।६ ॥

„ (वीप्सा) यथा—प्रति + अर्थ (अर्थमर्थंप्रति)
=प्रत्यर्थम्

„ (अनतिक्रम) यथा—यथा+शक्ति (शक्तिमनति-
क्रम्य)=यथाशक्ति ।

„ (सादृश्य) यथा—सह+हरि (हरे: सादृश्यम्)
=सहरि ।

(११) आनुपूर्व्य (अर्थात् क्रम) यथा—अनु+ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानु-
पूर्वेण)=अनुज्येष्ठम् ।

(१२) यौगपद्य (एक साथ होना) यथा—सह+चक्र (चक्रेण
युगपत्)=सचक्रम् ।

(१३) सादृश्य का उदाहरण ऊपर (१०) के अन्तर्गत आ चुका है ।

(१४) सम्पत्ति (योग्यतानुसार सम्पत्ति को सम्पत्ति कहते हैं,
योग्यता से अधिक किसी देवता आदि के प्रसाद से प्राप्त
हो तो उसे समृद्धि या ऋद्धि कहते हैं । इसी कारण ऊपर
समृद्धि के आ चुकने पर भी यहाँ सम्पत्ति शब्द आया) यथा
सु+क्षत्रिय (क्षत्रियाणां सम्पत्तिः)=सुक्षत्रियम् ।

(१५) साकल्य (सब को शामिल कर लेना) यथा—सह+तृणम्
(तृणमपि अपरित्यज्य)=सतृणम् ।

(१६) अन्त (तक के अर्थ में) सह+अग्नि (अग्निग्रन्थपर्यन्त-
मधीते)=साग्नि ।



११६—तत्पुरुष समास

(क) तत्पुरुष उस समास को कहते हैं जिसमें प्रथम शब्द द्वितीय शब्द के विशेषण का कार्य करे ; जैसे—

राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः ।

यहाँ "राज्ञः" एक प्रकार से "पुरुषः" का विशेषण है, अथवा

कृष्णः सर्पः=कृष्णसर्पः ।

यहाँ "कृष्णः" शब्द "सर्पः" शब्द का विशेषण है ।

(ख) तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते है—(१) तस्य पुरुषः= तत्पुरुषः , (२) सः पुरुषः= तत्पुरुषः । इन दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैः (१) जिसमें समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति में हो अथवा व्यधिकरण, (२) जिसमें प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे शब्द की विभक्ति एक ही हो अथवा समानाधिकरण । ऊपर के उदाहरणों में "राजपुरुष"ः व्यधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है और "कृष्णसर्पः" समानाधिकरण का ।

११७–(क) व्यधिकरण तत्पुरुष समास—

व्यधिकरण तत्पुरुष समास के छः भेद होते है—

(१) द्वितीया तत्पुरुष

(२) तृतीया तत्पुरुष

(३) चतुर्थी तत्पुरुष

(४) पञ्चमी तत्पुरुष

(५) षष्ठी तत्पुरुष

(६) सप्तमी तत्पुरुष।

यदि समास का प्रथम शब्द द्वितीया विभक्ति में रहा हो तो वह " द्वितीया तत्पुरुष " होगा। इसी प्रकार जिस विभक्ति में प्रथम शब्द रहेगा उसी के नाम पर इस समास का नाम होगा।

सात विभक्तियो मे केवल प्रथमा विभक्ति शेष रही, यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति में रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष हो ही नहीं सकता, समानाधिकरण होजायगा। इस कारण ये छः ही भेद व्यधिकरण के होते है।

(ख) द्वितीया तत्पुरुष—यह समास थोडे से ही शब्दो में होता है। मुख्य ये है।

द्वितीया[1] जब श्रित अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न इन शब्दो के संयोग मे आती है तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है . यथा—

कृष्ण श्रितः=कृष्णाश्रितः

दुःखमतीतः=दुःखातीतः

अग्नि पतितः=अग्निपतित

प्रलयं गत.=प्रलयगतः

मेघम् अत्यस्त.=मेघात्यस्त.

जीवनं प्राप्त=जीवनप्राप्तः

1 द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ।२।१।२४ .

कष्टम् आपन्नः=कष्टापन्नः, इत्यादि

आपन्न और प्राप्त शब्द के साथ दोनो शब्दो का इच्छानुसार क्रम भी बदल सकते है ; जैसे—प्राप्तजीवनः और आपन्नकष्टः।

(ग) तृतीया तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते है। यह समास अधिकतर इन दशाओ में होता है :—

(१) जब[1] तृतीयान्त कर्ता या करण कारक हो और साथ वाला शब्द कृदन्त प्रत्यय वाला हो; यथाः—

हरिणा त्रातः=हरित्रातः (इस उदाहरण में "हरिणा" तृतीयान्त है और कर्ता है, और "त्रातः" में "क्त" प्रत्यय है जो कृदन्त है)।

नखैर्भिन्नः=नखभिन्नः (यहाँ "नखैः" तृतीयान्त और करण हैं और "भिन्नः" में क्त प्रत्यय है जो कृदन्त है)।

(२) जब[2] तृतीयान्त शब्द के साथ 'पूर्व, सदृश, सम, ऊन' शब्दो में से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह (लड़ाई), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दो में से अथवा इनके समान अर्थ रखने वालो में से कोई शब्द आवे, यथा—

---

१ कर्तृकरणे कृता बहुलम्

२ पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ।२।१।३१

मासेन पूर्वः=मासपूर्वः, मात्रा सदृशः=मातृसदृशः, पित्रा समः=पितृसमः, धान्येन ऊनं=धान्योनम्, धान्येन विकलम्=धान्यविकलम्, वाचा कलहः=वाक्कलहः, वाचा युद्धं=वाग्युद्धं, आचारेण निपुणः=आचारनिपुणः, आचारेण कुशलः=आचारकुशलः, गुडेन मिश्रं=गुडमिश्रम्, गुडेन युक्तं=गुडयुक्तम्, घर्षणेन श्लक्ष्णं=घर्षणश्लक्ष्णम्, कुट्टनेन श्लक्ष्णं=कुट्टनश्लक्ष्णम् ।

(घ) चतुर्थी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द चतुर्थी विभक्ति में रहे तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं। मुख्यतया यह तब होता है जब कोई वस्तु (जो किसी से बनी हो या बनती हो) चतुर्थी में आवे और जिससे वह बनी हो वह उसके अनन्तर आवे; जैसे :—

यूपाय दारु=यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका=कुम्भमृत्तिका ।

(च) पञ्चमी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति मे आवे तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष कहते हैं। मुख्यरूप से यह समास तब होता है जब[1] पञ्चम्यन्त शब्द भय, भीत, भीति और भी[2] के साथ आवे ; जैसे :—

चोराद् भयं = चौरभयं, स्तेनाद् भीतः = स्तेनभीतः, वृकाद् भीति = वृकभीति , अयशोभी., इत्यादि ।

(छ) षष्ठी तत्पुरुष समास उसे कहते है जिसमें प्रथम शब्द

---

१ पञ्चमी भयेन ।२।१।३७। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम् ।

२ ल० व्या० पृ०—६६

षष्ठी विभक्ति में हो। यह समास[1] प्रायः सभी षष्ठ्यन्त शब्दों के स
होता है।

इसके कुछ अपवाद हैं उनमें से मुख्य २ यहाँ दिये जाते हैं :—

(१) जब[2] षष्ठी तृच् प्रत्यय में अन्त होने वाले (कर्ता, धर्ता, ह
आदि) शब्दों के साथ अथवा अक प्रत्यय मे अन्त होने वाले (पाच
याचक, सेवक आदि) शब्दों के साथ आवे; जैसे—

घटस्य कर्ता, जगतः स्रष्टा, धनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचकः।

(२) निर्धारण[3] (किसी वस्तु की दूसरों से विशिष्टता दिखाने)
अर्थ में प्रयोग में आई हुई षष्ठी का समास नहीं होता; जैसे—

नृणां द्विजः श्रेष्ठः, गवां कृष्णा बहुक्षीरा—इत्यादि में समास न
होगा।

किन्तु[4] यदि तरप् प्रत्यय में अन्त होने वाले गुणवाची शब्द के सा
षष्ठी आवे तो वहाँ समास हो जायगा और साथ ही साथ तरप् प्रत्यय :
लोप भी हो जायगा; जैसे—

सर्वेषां श्वेततरः = सर्वश्वेतः। सर्वेषां महत्तरः = सर्वमहान्।

---

१ षष्ठी।२।२।८।

२ तृजकाभ्यां कर्तरि।२।२।१५।

३ न निर्धारणे।२।२।१०।

४ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्।

(ज) सप्तमी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं जिसका प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति में रहा हो। यह समास भी विशेष दशाओं में ही होता है। एक आध ये हैं :—

(१) जब[1] सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, संवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध[2], शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दो में से किसी के साथ आवे, जैसे :—

अक्षेषु शौण्डः=अक्षशौण्डः, प्रेम्णि धूर्तः=प्रेमधूर्तः, द्यूते कितवः=द्यूतकितवः, सभायां पण्डितः=सभापण्डितः, आतपे शुष्कः=आतपशुष्कः, कटाहे पक्वः=कटाहपक्वः, ईश्वरे अधीनः=ईश्वराधीनः।

(२) जब[3] ध्वाङ्क्ष (कौआ) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दो के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे; जैसे :—

तीर्थे ध्वाङ्क्षः=तीर्थध्वाङ्क्षः, श्राद्धे काकः=श्राद्धकाकः इत्यादि

---

१ सप्तमी शौण्डैः ।२।१।४०।

२ सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ।२।१।४१।

३ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ।२।१।४२।

समानाधिकरण तत्पुरुष समास

११८—(क) समानाधिकरण का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, जैसे—यदि गोविन्द और श्याम एक ही आसन पर बैठे हो तो वह आसन उन दोनो का समानाधिकरण हुआ, किन्तु, यदि दोनो अलग २ आसनो पर बैठे हो तो अलग २ अधिकरण हुआ, अर्थात् "व्यधिकरण" हुआ। इसी प्रकार यदि एक ही समय में दो मनुष्य उपस्थित हो तो उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न २ समय में हो तो उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दोके विषय में भी, जैसे—

राज्ञः+पुरुषः—इसमें यह आवश्यक नहीं कि राजा और उसका पुरुष दोनो एक स्थान और एक समय में हो, इसलिए यह समानाधिकरण नहीं है, किन्तु कृष्णः+सर्पः—यहाँ कालापन साँप के साथ २ है, जहाँ जहाँ वह साँप जिस २ समय में रहेगा, कालापन भी उसके साथ २ रहेगा, नहीं तो उसको कृष्णः सर्पः नहीं कह सकेंगे, इसलिए इस उदाहरण में समानाधिकरण है।

(ख) तत्पुरुष समास का लक्षण ऊपर बता आए हैं कि ऐसा समास जिसका प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण स्वरूप हो ऐसा[1] तत्पुरुष समास जिस में (समास में आए हुए) दोनो शब्द

---

१ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ।१।२।४२॥

का समानाधिकरण हो, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। कर्मधारय समास की क्रिया समास के दोनो शब्दों को धारण करती है, इसलिए यह नाम पड़ा है; जैसे— 'कृष्णसर्पः अपसर्पति' इस वाक्य में सर्प जब क्रिया करता है तो कृष्णत्व उसके साथ साथ रहता है। "राज्ञः पुरुषः अपसर्पति" में राजा पुरुष के साथ नहीं है।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष में मोटे तौर से यह भेद है कि पहले में समास का प्रथम शब्द प्रथमा को छोड़ कर और किसी विभक्ति में होता है, दूसरे में प्रथमा में होता है।

(घ) कर्मधारय समास में प्रथम शब्द या तो द्वितीय का विशेषण होना चाहिए और द्वितीय शब्द संज्ञा होना चाहिए, अथवा दोनो संज्ञा हों किन्तु प्रथम विशेषण स्थानीय हो, अथवा दोनो विशेषण हों जिसमें समय पड़ने पर किसी तीसरे शब्द का संयुक्त विशेषण रहे। नीचे कई प्रकार के कर्मधारय समास दिए जाते हैं।

११९—(क) जब प्रथम शब्द विशेषण हो और दूसरा विशेष्य तो उस कर्मधारय समास को 'विशेषणपूर्वपद कर्मधारय' कहते हैं, जैसे—

• विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ।२।१।५७॥

(१) 'कु' शब्द का अर्थ जब 'ख़राब, बुरा' होता है तब इस शब्द का समास किसी संज्ञा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है; जैसे—

कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः, कुत्सितः देशः = कुदेशः, कुत्सित पुत्रः = कुपुत्रः, कुगेहिनी, कुशिष्यः। कहीं २ 'कु' का रूपान्तर 'कन्' हो जाता है; जैसे—

कुत्सितं अन्नं = कदन्नं। और कहीं का हो जाता है, जैसे—कुत्सितःपुरुषः = कापुरुषः। कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः। नीलमुत्पलं = नीलोत्पलम्। रक्तं कमलं = रक्तकमलं। दीर्घं नयनं = दीर्घनयनम्।

(ख)[1] जब किसी वस्तु से उपमा दी जाए तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाए और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्मधारय समास होंगे और इस समास का नाम 'उपमानपूर्व पद कर्मधारय' होगा। जैसे—

घनः इव श्यामः = घनश्यामः।

चन्द्रः इव आह्लादकः = चन्द्राह्लादकः।

प्रथम उदाहरण में किसी वस्तु की बादल से उपमा दी गई है और यह बतलाया गया है कि वह वस्तु ऐसी श्याम है जैसे बादल। यहाँ 'बादल' उपमान और 'श्याम' सामान्य गुण है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में चन्द्र उपमान और आह्लादक

---

१ उपमानानि सामान्यवचनैः ।२।१।५५॥

सामान्य गुण है। इस समास में उपमान प्रथम आता है, इसी लिए इसको 'उपमानपूर्वपद' कहते है।

(ग) जब जिस वस्तु की उपमा दी जाए और वह वस्तु जिससे उपमा दी जाए दोनो साथ २ आवें तब उस कर्मधारय समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं; क्योकि यहाँ उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है; जैसे—

मुखं कमलमिव=मुखकमलम्।

पुरुषः व्याघ्रः इव=पुरुषव्याघ्रः।

नोट—(ख) के अन्तर्गत समासो में वह गुण प्रकट कर दिया गया है जिसके कारण उपमा होती है, यहाँ (ग) के अन्तर्गत समासों में वह गुण प्रकट नहीं किया जाता; केवल यह बता दिया जाता है कि उपमेय और उपमान समान हैं।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्रः आदि इस श्रेणी के समासो का दो प्रकार से विग्रह कर सकते हैं।

(१) मुखमेव कमलम् और पुरुषः एव व्याघ्रः, और—

(२) मुखं कमलमिव और पुरुषः व्याघ्रः इव।

पहले को उपमितसमास कहेंगे, क्योकि इस में उपमा है और दूसरे को रूपकसमास; क्योकि दोनो को, एक के ऊपर दूसरे को आरोप कर दिया है।

---

* उपमितं व्याघ्रादिभि सामान्याप्रयोगे ।२।१।५६।

(घ) दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को 'विशेषणो-भयपद कर्मधारय' कहते है; जैसे—

कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेतः (अश्वः)।

इसी प्रकार दो क्त प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द जो वस्तुत: विशेषण ही होते हैं इसी श्रेणी के अन्तर्गत है; जैसे—

स्नातश्च अनुलिप्तश्च = स्नातानुलिप्तः।

दो विशेषणों में से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है; जैसे—

चरञ्च अचरञ्च = चराचरं (जगत्)। कृतञ्च अकृतञ्च = कृताकृतं (कर्म)।

१२०—जब कर्मधारय[1] समास में प्रथम शब्द संख्यावाची हो और दूसरा कोई संज्ञा, तो उस समास को 'द्विगु समास' कहते हैं।

'द्विगु' शब्द में स्वयं प्रथम—द्वि—संख्यावाची है और दूसरा—गु (गो)—संज्ञा है। द्विगु समास तभी होता है जब या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो; जैसे—

षष्+मातृ = षण्मातृ+अ (तद्धित प्रत्यय) = षाण्मातुरः (षण्णां मातृणामपत्यं),

---

१ संख्यापूर्वो द्विगुः ।२।१।५२॥

या उसको किसी और शब्द के साथ समास में आना हो ; जैसे—

पञ्चगावः धनं यस्य सः=पञ्चगवधनः ।

यहाँ ' पञ्चगव ' यह द्विगु समास न बनता यदि उसको ' धन ' के साथ फिर समास में न आना होता ।

या द्विगु[1] समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो। इस दशा में वह नपुंसकलिङ्ग एकवचन में सदा रहेगा ; जैसे—

पञ्चानां गवां समाहारः=पञ्चगवम् ।

पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः=पञ्चग्रामम् ।

पञ्चानां पात्राणाम् समाहारः=पञ्चपात्रम् ।

त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम्, इत्यादि ।

१२१—अन्यतत्पुरुष समास

ऊपर तत्पुरुष समास के जो मुख्य दो भेद व्यधिकरण और समानाधिकरण हैं उनका विचार किया गया है। यहाँ कुछ ऐसे तत्पुरुष समासों का विचार किया जाएगा जिनमें वस्तुतः तत्पुरुष होते हुए भी कुछ हेर फेर रहता है।

---

१ द्विगुरेकवचनम् ।२।४।१॥

(क) नञ् तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'न' रहे और दूसरा कोई संज्ञा या विशेषण रहे तो उसे यह नाम दिया जाता है। यह 'न' व्यञ्जन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है, यथा—

न ब्राह्मणः=अब्राह्मणः (ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो), न गर्दभः=अगर्दभः (ऐसा जानवर जो गदहा न हो), न अब्जं= अनब्जं (जो कमल न हो), न सत्यं=असत्यं; न चरं = अचरं, न कृतं=अकृतं, न आगतं=अनागतं।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'न' शब्द भी एक प्रकार से विशेषण का कार्य करता है, इसलिए तत्पुरुष का मुख्य भाव कि समास का प्रथम शब्द विशेषण अथवा विशेषणस्थानीय होना चाहिए विद्यमान है।

(ख) प्रादि तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'प्र' आदि उपसर्गों (इनका व्याख्यान 'अव्यय विचार' में आगे देखिए) में से कोई हो तब उसे प्रादि तत्पुरुष कहते हैं। इन प्र आदि उपसर्गों से विशेष विशेषणों का अर्थ निकलता है, इसीलिए यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है।

उदाहरणार्थ—

प्रगतः (बहुत विद्वान्) आचार्यः =प्राचार्यः,

प्रगतः (बड़े) पितामहः =प्रपितामहः ;

प्रतिगतः (सामने आया हुआ) अक्षं (इन्द्रिय) = प्रत्यक्षः,

उद्गतः (ऊपर पहुँचा हुआ) वेलां (किनारा) = उद्वेलः,

अतिक्रान्तः मर्यादां = अतिक्रान्तमर्याद. (जिसने हद पार कर दी हो),

अतिक्रान्तः रथं = अतिरथः (ऐसा योद्धा जो बहुत बलवान् हो),

अवकुष्टः कोकिलया = अवकोकिलः (कोकिला से खींचा हुआ-मुग्ध),

परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययनः (पढ़ने से थका हुआ),

निर्गतः गृहात् = निर्गृहः (घर से निकला हुआ) इत्यादि ।

(ग) गति तत्पुरुष समास—

कृ, क्त्व् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के साथ कुछ विशेष शब्दों (ऊरी आदि) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं। ऊरी आदि शब्दों को पाणिनि ने 'गति' नाम दिया है, इसी से यह समास गति समास कहलाता है। दो एक उदाहरण ये हैं—

अलं (भूषित) कृत्वा = अलंकृत्य (भूषित करके) ।

सत्कृत्य (आदर करके) । शुक्लीभूय (सफेद होकर) ।

नीलीकृत्य (नीला करके) । पुरस्कृत्य (आगे करके) ।

(घ) उपपद तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसी संज्ञा या कोई ऐसा अव्यय हो जिसके न रहने से उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप नहीं रह सकता हो, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं। द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया का न होना चाहिए बल्कि कृदन्त का हो, किन्तु ऐसा हो जो

प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाए। प्रथम शब्द को उपप कहते हैं, इसी से इस समास का नाम उपपद समास पड़ा। उदाहरणार्थ—

कुम्भं करोति इति=कुम्भकारः।

यहाँ समास में 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' का नाम उप पद है। 'कारः' क्रिया का रूप नहीं, कृदन्त का है, किन्तु यदि उपपद न हो तो 'कारः' अपने आप नही ठहर सकता। 'कारः' उपपद से स्वाधीन कोई शब्द नहीं है, हम 'कारः' का अकेले कहीं प्रयोग नहीं कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते हैं, जैसेः—

चर्मकारः, स्वर्णकारः।

इसी प्रकार—साम गायतीति सामगः।

यहाँ 'साम' उपपद रहने के ही कारण 'गः' शब्द है, 'गः' का अकेले प्रयोग नही हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए।

इसी प्रकार—धनं ददातीति धनदः, कम्बलं ददातीति कम्बलदः, गाः ददातीति गोदः आदि।

इसी प्रकार उच्चैःकृत्य, एकधाभुय आदि।

(च) अलुक् तत्पुरुष समास

समास में प्रथम शब्द की विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाता है यह ऊपर बता चुके हैं; जैसेः—

कुम्भं+कारः=कुम्भकारः। चरणयोः+सेवकः=चरणसेवकः।

किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिन में विभक्ति के प्रत्यय का लोप नहीं होता, उनको अलुक् समास कहते हैं। अलुक् समास के

केवल ऐसे उदाहरण है जो साहित्य में पूर्व ग्रन्थकारो के ग्रन्थो में मिलते हैं, उनके अतिरिक्त किसी समास में विभक्ति (प्रत्यय) का लोप न करने का हम लोगो को अधिकार नहीं है। अलुक् समास के कुछ उदाहरण ये हैः।

मनसागुप्ता = (किसी स्त्री का नाम), जनुषान्धः = (जन्मान्ध), परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, दूरादागतः, देवानां प्रियः = (मूर्ख), देवप्रियः = देवताओं को प्रिय।

पश्यतोहरः = (देखते २ चुराने वाला, अर्थात् सुनार या डाकू),

युधिष्ठिरः = (युद्ध में डटा रहने वाला),

अन्तेवासी = (शिष्य), सरसिजम् = (कमल),

खेचरः = (देव, सिद्ध आदि आकाश में चलने वाले) इत्यादि।

ह) मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

ऐसे तत्पुरुष समास जिनमें से कोई ऐसा शब्द ग़ायब हो गया हो जिसे साधारण दशा में रहना चाहिए था, "मध्यमपदलोपी समास" के नाम से जाने जाते हैं। ऐसे 'शाकपार्थिव' आदि कुछ ही शब्द हैं। इन से अतिरिक्त शब्दों में यह समास नहीं लग सकता। उदाहरणार्थ -

शाकप्रिय पार्थिवः = शाकपार्थिवः। देवपूजकः ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः।

इन उदाहरणों में 'प्रिय' और 'पूजक' शब्द जो मध्य में आते हैं रहने चाहिए थे, किन्तु नहीं रहे।

(ज) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमें नियमों का प्रत्यक्ष उल्लङ्घन उनको पाणिनि ने मयूरव्यंसकादि नाम दे कर अलग कर दिया है। जैसे:

व्यंसकः मयूरः = मयूरव्यंसकः। (चालाक मोर)

यहाँ व्यंसक शब्द प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा।

अन्यो राजा = राजान्तरम्। अन्यो ग्रामः = ग्रामान्तरम्।

इसी प्रकार अन्य अन्तर शब्द वाले उदाहरण होते हैं।

द्वन्द्व समास

१२२—जब[1] ऐसी दो या अधिक संज्ञाएँ साथ रक्खी जाती जो 'च' शब्द से जोड़ी हुई थीं, तब उस समास को द्वन्द्व समा कहते हैं। इस समास में यदि दोनों संज्ञा रहें तो दोनों प्रधा रहती है, अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समा तीन प्रकार का होता है—

(१) इतरेतर द्वन्द्व।

(२) समाहार द्वन्द्व।

(३) एकशेष द्वन्द्व।

(क) इतरेतर द्वन्द्व

जब समास में आई हुई दोनों संज्ञाएँ अपना प्रधानत्व औ व्यक्तित्व रखती हैं तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं, जैसे:—

---

१ चार्थे द्वन्द्वः ।२।२।२९

रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ।

यदि दोनो मिलकर दो हो तो द्विवचन में समास रक्खा जाता है और यदि दो से अधिक हो तो बहुवचन में।

इस[1] समास का जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है: जैसे:—

रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ।

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मणभरताः,

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च = रामलक्ष्मणभरत-शत्रुघ्नाः।

मयूरी च कुक्कुटश्च = मयूरीकुक्कुटौ।

कुक्कुटश्च मयूरी च = कुक्कुटमयूर्यौ।

(ख) समाहार द्वन्द्व

जब समास में ऐसी संज्ञाएँ आवें जो 'च' से जुड़ी हुई होने पर अपना अर्थ बतलाती है और साथ ही साथ एक समाहार (समूह) का भी बोध कराती है तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है। इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एक वचन में ही रखते है। उदाहरणार्थ।

आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम्।

इस समाहार में आहार, निद्रा और भय का अर्थ है और साथ ही साथ जीवो के लक्षण का भी बोध होता है जीवों में

[1] परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। २।४।२६॥

खाना, पीना, सोना और डर येही मुख्य बातें होती हैं। इनी प्रकारः—

पाणी च पादौ च = पाणिपादम् (हाथ और पैर के साथ २ अङ्ग मात्र का भी बोध होता है)।

अहिनकुलम् (साँप और नेवले के साथ साथ, ये दोनो जन्म वैरी है यह भी बोध होता है)।

समाहार द्वन्द्व[1] बहुधा उन दशाओं में होता है जब उस में आए हुए शब्द मनुष्य अथवा पशु के—

(१) शरीर के अङ्ग हो—जैसे पाणिपादम्।

(२) सेना के अङ्ग हों—अश्वारोहाश्च पदातयश्च = अश्वारोह पदाति (घुड़सवार और पैदल)।

(३) गाने बजाने वाले हों—मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिक पाणविक (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)।

(४) अचेतन पदार्थ हो (द्रव्य हों गुण नहीं)—गोधूमाश्च चणकाश्च = गोधूमचणकं।

(५) नदियों के भिन्न लिङ्ग के नाम हों—गङ्गा च शोणश्च = गङ्गा-शोणं, (किन्तु गङ्गा च यमुना च = गङ्गायमुने होगा, क्योंकि ये एक ही लिङ्ग के हैं)।

---

१ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्। २।४।२। जातिरप्राणिनाम्। २।४।६। विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः। २।४।७ येषां च विरोधः शाश्वतिकः। २।४।९।

(६) देशों के नाम भिन्न लिङ्गों में हों तो इनके साथ नगर के नामों का भी समास हो सकता है, किन्तु ग्रामों का नहीं।

कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च=कुरुकुरुक्षेत्रम्।

मथुरा च पाटलिपुत्रश्च=मथुरापाटलिपुत्रम् आदि।

(७) क्षुद्र जीव हों तो—यूका च लिक्षा च= यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

(८) जन्मवैरी जीव हों तो—सर्पश्च नकुलश्च=सर्पनकुलम्, मूषकश्च मार्जारश्च=मूषकमार्जारम्।

(ग) एकशेष द्वन्द्व

जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही शेष रह जाए, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं; जैसेः—

माता च पिता च=पितरौ।

श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ।

एकशेष द्वन्द्व में केवल समान रूप वाले शब्द (जैसे चटक, चटका, मयूर, मयूरी, माता, पिता, भ्राता, स्वसा आदि) अथवा समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द ही आ सकते हैं।[1] समास का वचन समास के अङ्गभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होगा। यदि समास में पुंलिङ्ग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनों मिले हों तो समास पुंलिङ्ग में रहेगा। उदाहरणार्थः—

१ सरूपाणाम्। विरूपाणामपि समर्थानाम्।

सरूप—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ।

शूद्री च शूद्रश्च=शूद्रौ। अजश्च अजा च=अजौ। चटकश्च चटका च=चटकौ। गार्गी च गार्ग्यायणौ च=गार्ग्याः आदि।

विरूप—भ्राता च स्वसा च=भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च=पुत्रौ। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ।

१२३—द्वन्द्व समास करते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए:—

(१) इकारान्त[1] अथवा उकारान्त शब्द प्रथम रखना चाहिए जैसे:—

हरश्च हरिश्च=हरिहरौ।

यदि कई इकारान्त व उकारान्त हों तो एक को प्रथम रखना चाहिए, बाकी बचे हुओं को चाहे जहां रख सकते हैं, जैसे—

हरिश्च हरश्च गुरुश्च=हरिहरगुरवः।

(२) स्वर[2] से आरंभ होने वाले और 'अ' में अन्त होने वाले शब्द प्रथम आने चाहिएँ; जैसे:—

इन्द्रश्च अग्निश्च=इन्द्राग्नी।

ईश्वरश्च प्रकृतिश्च=ईश्वरप्रकृती।

---

१ द्वन्द्वे घि।२।२।३२।

२ अजाद्यदन्तम्।२।२।३३।

(३) वर्णों[1] के तथा भाइयों के नाम ज्येष्ठ के क्रम से आने चाहिएं; जैसे:—

ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च = ब्राह्मणक्षत्रियौ (क्षत्रियब्राह्मणौ नहीं)।
रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ (लक्ष्मणरामौ नहीं)।

(४) जिस शब्द में कम अक्षर हों वह पहिले आना चाहिए; जैसे =

शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ (केशवशिवौ नहीं; क्योंकि शिव में दो अक्षर हैं केशव में तीन)।

बहुव्रीहि समास

१२४–(क) जब समास में आये हुए दोनो[2] (या अधिक हों तो सब) शब्द किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है —बहुः व्रीहिः (धान्यं) यस्य अस्ति सः बहुव्रीहिः (जिसके पास बहुत चावल हो)। इसमें दो शब्द हैं—"बहु" और "व्रीहि"। प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनो मिल कर किसी

---

[1] वर्णानामानुपूर्व्येण। भ्रातुर्ज्यायसः (वार्तिक)।

[2] अनेकमन्यपदार्थे ।२।२।२४। अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः।

तीसरे के विशेषण हैं, इसी लिए इस प्रकार के समासों का नाम बहुव्रीहि पड़ा।

(ख) बहुव्रीहि और तत्पुरुष में यह भेद है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है; जैसे—

पीतम् अम्बरं = पीताम्बरम् (पीला कपड़ा)—कर्मधारय तत्पुरुष।

बहुव्रीहि में इसके अतिरिक्त यह होता है कि दोनों मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते है, जैसे—

पीताम्बरः—पीतम् अम्बरं यस्य सः (जिसका कपड़ा पीला हो = श्रीकृष्ण)।

इस प्रकार एक ही समास प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण के लिए एक मनोरञ्जक आख्यायिका है।

एक बार एक याचक फटे फटाए कपड़े पहने किसी राजा के निकट जाकर बोलाः—

'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथावुभावपि'। (हे राजश्रेष्ठ! मैं भी लोकनाथ हूँ और आप भी, अर्थात् हम दोनों लोकनाथ हैं)।

याचक की यह उक्ति सुनकर सभा में राजकर्मचारी उसकी धृष्टता पर चिढ़कर कहने लगे—देखो, इस पागल को क्या सूझा कि हमारे महाराज की बराबरी करने चला है, निकालो इसको।

तब तक याचक श्लोक का दूसरा अंश भी बोल उठा —

'बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्' ॥ (हे नृप ! मै बहुव्रीहि (समास) हूँ और आप षष्ठीतत्पुरुष.—अर्थात् मेरी दशा मे "लोकनाथः" का अर्थ होगा "लोकाः प्रजाः नाथाः पालका यस्य सः"—जिसकी सभी रक्षा करें और पालन करें और आपकी दशा में "लोकनाथः" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथः"—संसार भर के स्वामी)। यह सुन कर सब लोग हँस पड़े और याचक को उचित पारितोषिक देकर उसका लोकनाथत्व दूर किया गया।

बहुव्रीहि समास में प्रधानत्व समास के दोनो शब्दो में से किसी मे नही रहता. दोनो मिल कर तीसरे का (जिसके वह विशेषण स्वरूप होते है) ही प्राधान्य सूचित करते हैं।

(ग) इस समास के मुख्य दो भेद है—

(१) एक समानाधिकरण बहुव्रीहि।
(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि।

बहुव्रीहि समास का विग्रह करने के लिए विग्रह में यत् श० के किसी रूप का आना आवश्यक है। इस यत् से यह प्रकट किया जाता है कि समास में आए हुए शब्द किसी अन्य शब्द से ही सम्बन्ध रखते हैं।

१२५-(क) समानाधिकरण बहुव्रीहि के छः भेद होते हैं—

द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि।

तृतीया समानाधिकरण बहुव्रीहि।

चतुर्थी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

पञ्चमी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

षष्ठी समानाधिकरण बहुव्रीहि—और

सप्तमी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

यह भेद विग्रह में आए हुए यत् शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं। यदि यत् द्वितीया विभक्ति में हो तो समास द्वितीया स० ब० होगा, और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे ;उदाहरणार्थः—

द्वि० स० ब०—प्राप्तमुदकं यं सः प्राप्तोदकः (ग्राम)—ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो।

आरूढो वानरो यं स आरूढवानरः (वृक्षः)।

तृ० स० ब०—जितानि इन्द्रियाणि येन स जितेन्द्रियः (पुरुष)—जिसने इन्द्रियों को वश में कर रक्खा हो,

ऊढः रथः येन स ऊढरथः (अनड्वान्)—ऐसा बैल जिसने रथ खींचा हो।

दत्तं चित्तं येन स दत्तचित्तः (पुरुषः)—ऐसा पुरुष जो [illegible] हो, लगाए हो।

च० स० ब०—उपहृतः पशुः यस्मै सः उपहृतपशुः (रुद्रः)—जिसके लिए पशु (बल्यर्थ) लाया गया हो। दत्तधनः (पुरुषः)।

पं० स० ब०—उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा उद्धृतौदना (स्थाली)—ऐसी थाली जिसमें से भात निकाल लिया गया हो।

निर्गतं धनं यस्मात् स निर्धनः (पुरुषः)

निर्गतं बल यस्मात् स निर्बलः (पुरुषः)।

ष० स० ब०—पीताम्बरः (हरिः), महाबाहुः, लम्बकर्णः, चित्रगुः।

स० स० ब०—वीरा पुरुषाः यस्मिन् सः वीरपुरुषः (ग्रामः)—ऐसा गांव जिसमें वीर पुरुष हों।

(ख) व्यधिकरण बहुव्रीहि के दोनों शब्द प्रथमा विभक्ति में नही रहते, केवल एक रहता है, दूसरा षष्ठी या सप्तमी में रहता है; जैसेः—

चक्रं पाणौ यस्य सः चक्रपाणिः। चन्द्रशेखरः, चन्द्रकान्तिः, इत्यादि।

(ग) नीचे लिखे बहुव्रीहि भी कभी २ पाये जाते हैंः—

(१) नञ् अथवा कोई उपसर्ग किसी संज्ञा के साथ हो तो ऐसा रूप होता हैः उदाहरणार्थ—अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः अपुत्रः (अथवा अविद्यमानपुत्रः), निर्घृणः, उत्कन्धरः (अथवा उद्धृतकन्धरः) विजीवितः (अथवा विगतजीवितः)

(२) सह और तृतीयान्त संज्ञा—सह सीता यस्य सः, ससीतः (रामः)।

१२६—बहुव्रीहि बनाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुंलिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवान्—रूपवती, सुन्दर-सुन्दरी आदि) हो और ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग का हो तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदि रूप (पुलिङ्ग) रक्खा जाता है, जैसेः—

रूपवती भार्या यस्य सः रूपवद्भार्यः (रूपवतीभार्यः नहीं)।

इस उदाहरण में समास का प्रथम शब्द "रूपवती" था और द्वितीय "भार्या"। प्रथम शब्द "रूपवत्" (पुं०) से बना था और ऊकारान्त न था ईकारान्त था, तथा द्वितीय शब्द 'भार्या' स्त्रीलिङ्ग में था, इस लिए प्रथम शब्द का पुंलिङ्ग रूप आ गया। इसी प्रकार—

चित्राः गावः यस्य सः चित्रगुः (चित्रागुः नहीं), जरद्भार्यः।

परन्तु गङ्गा भार्या यस्य सः गङ्गाभार्यः (गङ्गभार्यः नहीं) क्योंकि गङ्गा शब्द किसी पुलिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप नहीं है।

वामोरूभार्यः—वामोरूः भार्या यस्य सः (क्योंकि यहां प्रथम शब्द ऊकारान्त है, आकारान्त या ईकारान्त नहीं)।

कुछ विशेष स्थलों में (जैसे यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणी संख्या हो, उसमें अङ्ग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो, जाति का नाम हो इत्यादि, अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रिया या प्रियादिगण में पठित कोई शब्द हो)। जैसे क्रमानुसार—

दत्ताभार्यः (जिसकी दत्ता नामवाली स्त्री है),

पञ्चमीभार्यः (जिसकी पाँचवी स्त्री है),

सुकेशीभार्यः (जिसकी अच्छे केशों वाली स्त्री है),

शूद्राभार्यः (जिसकी स्त्री शूद्रा है), कल्याणी प्रिया यस्य सः कल्याणी प्रियः ।

(२) यदि समास के अन्त में इन् से अन्त होने वाला शब्द आवे और यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है; जैसे—

बहवः दण्डिनः यस्यां सा बहुदण्डिका (नगरी)।

किन्तु यदि पुलिङ्ग बनाना हो तो कप् जोड़ना न जोड़ना इच्छा पर है, जैसे—

बहुदण्डिको ग्रामः, बहुदण्डी ग्रामः वा ।

(३) जब बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द में अन्य नियमों के अनुसार कोई विकार न हुआ हो तो उसमें इच्छानुसार कप् (क) जोड़ सकते हैं, जैसे—

उदात्तं मनः यस्य सः उदात्तमनस्कः अथवा उदात्तमनाः । इसी प्रकार-महोरस्कः, महायशस्कः आदि विकल्पसिद्ध रूप हैं ।

ईश्वरः कर्ता यस्य सः ईश्वरकर्तृकः (संसारः)।

अन्नं धातृ यस्य सः अन्नधातृकः (पुरुषः)।

सुशीला माता यस्य सः सुशीलमातृकः (मनुष्य)।

रूपवती स्त्री यस्य सः रूपवत्स्त्रीकः (मनुष्यः)।

सुन्दरी वधूः यस्य सः सुन्दरवधूकः (पुरुषः)।

(५) यदि अन्तिम शब्द आकारान्त हो तो इच्छानुसार आकार को अकार कर सकते हैं, जैसे—

पुष्पमालाकः, पुष्पमालकः।

१२७–समासों के कुछ साधारण नियम हैं जो सब समासों में लगते हैं। उन में से मुख्य २ यहाँ दिए जाते हैं।

(क) समास के किन्हीं दो शब्दों के बीच में कहीं भी सन्धि प्राप्त होती हो तो अवश्य करनी चाहिए (५ में उल्लिखित नियम के अनुसार)।

(ख) यदि[1] किसी समास का विग्रह ही न हो सके तो उसको नित्यसमास कहते हैं; जैसे—इव के साथ किसी शब्द का, जीमूतस्य इव=जीमूतस्येव, यह नित्य समास है।

(ग) यदि[2] समास के अन्त में राजन्, अहन्, या सखि

---

१ अविग्रहो नित्यसमासोऽस्वपदविग्रहो वा।

२ राजाहः सखिभ्यष्टच्।

शब्द आवे तो इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है; जैसेः—

महान् राजा = महाराजः, सिन्धुराजः,

उत्तमम् अहः = उत्तमाहः (अच्छा दिन),

कृष्णस्य सखा = कृष्णसखः ।

कहीं कहीं अहन् शब्द का अह हो जाता है, जैसे—सर्वाह्णः = (सारे दिन) । सायाह्नः = सायंकाल ।

(ग) में उदाहृत नियम नञ् तत्पुरुष में नहीं लगता, जैसे—

न राजा = अराजा, न सखा = असखा ।

(घ) महत् शब्द[1] यदि कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समास का प्रथम शब्द हो तो वह 'महा' हो जाता है, जैसे—

महाराजः, महादेवः ।

किन्तु महत्सेवा = महतां सेवा ।

(च) ऋक्[2], पुर्, अप्, धुर् शब्द जब समास के अन्तिम शब्द होते हैं तो अकारान्त हो जाते हैं, जैसे—

अर्धः ऋक् = अर्धर्चः,

विष्णोः पूः = विष्णुपुरम्,

विमलाः आपः यस्य तत् विमलापं सरः,

राज्यस्य धूः = राज्यधुरा (किन्तु अक्ष की धुरा का अभिप्राय होता नहीं, जैसे—अक्षधूः । अक्ष = गाड़ी) ।

---

१ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः । ६ । ३ । ४६ ॥

२ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे । ५ । ४ । ७४ ॥

(घ) सह और समान शब्द जब समास के प्रथम शब्द होते हैं तब उनके स्थान पर बहुधा स हो जाता है ; जैसे—

द्रोणेन सह= सद्रोणः,

समानः ब्रह्मचारी= सब्रह्मचारी ।

अष्टम सोपान

तद्धित विचार

१२८—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि में जिन प्रत्ययों को जोड़ कर कुछ और अर्थ भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं; जैसे—

दितेः अपत्यं =दैत्यः (दिति + ण्य) ।

इसमें ण्य (तद्धित प्रत्यय) जोड़ कर दिति के लड़के का बोध कराया गया है ।

कषायेण रक्तं =काषायम् (कषाय + अण्) —'कषाय रंग में रँगा हुआ' ।

यहाँ कषाय शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगा कर कषाय में रँगे हुए का अर्थ निकाला गया ।

कुशाम्बेन निर्वृत्ता =कौशाम्बी (एक नगरी का नाम) ।

यहाँ 'कुशाम्ब' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगा कर कुशाम्ब की बनाई हुई का अर्थ निकाला । इसी प्र

कितने ही अर्थों का बोध कराने के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

'तद्धित' शब्द का अर्थ है—'तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः इति तद्धिताः'—ऐसे प्रत्यय जो उन उन प्रयोगों के काम में आ सकें। किन २ प्रयोगों में तद्धित प्रत्यय मुख्यरूप से आते है यह नीचे दिखाया जायगा।

१८०.–तद्धित प्रत्यय लगाते समय नीचे लिखे नियमो का ध्यान रखना चाहिए। महर्षि पाणिनि ने इन प्रत्ययो के नामो में ऐसे अक्षर रख दिए है जिनसे कुछ और बातो का भी बोध होता है; जैसे—यदि किसी प्रत्यय मे ञ् अथवा ण् हो तो उस शब्द के (जिसमें यह प्रत्यय जुड़ेंगे) प्रथम स्वर की वृद्धि होगी, इत्यादि। ऐसे अक्षर कभी प्रत्यय के आदि में और कभी अन्त में रहते है और केवल वृद्धि, गुण आदि की सूचना देने के लिए रक्खे जाते हैं।

(१) तद्धित प्रत्यय मे यदि ञ् अथवा ण् होवे तो जिस शब्द में ऐसा प्रत्यय जोड़ा जायगा, उस शब्द में जो भी प्रथम स्वर आवेगा उसको (६) मे का वृद्धिरूप ग्रहण करना होगा।

जैसे—दिति+ण्य (य)=द्+इ+ति+य=द्+ऐ+त्य=दैत्य

विधि होगी, जैसे वर्षा+ठक् (इक)=व्+अ+र्षा+इक=व+आ+र्षा+इक=वार्षिकः।

नोट—दैत्य में दूसरी 'इ' का और वर्षा में 'आ' का कैसे लोप हो गया इसके लिए नीचे के नियम देखिए।

(२) स्वर अथवा य् से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व, शब्द के अन्तिम स्वर में विकार उत्पन्न होते है—अ, आ, इ, ई का तो लोप ही हो जाता है, उ और ऊ के स्थान में गुण रूप (ओ) हो जाता है और ओ तथा औ के साथ साधारण सन्धि के नियम लगते है; जैसे—

अकारान्त कृष्ण+अण्=कार्ष्ण (कृष्ण के अ का लोप
आकारान्त वर्षा+ठक् (इक)=वार्षिक (वर्षा के आ का लोप
इकारान्त गणपति+अण्=गाणपतम् (गणपति की इ का लोप
ईकारान्त गर्भिणी+अण=गार्भिणम् (गर्भिणी की ई का लोप
उकारान्त शिशु+अण=शैशव (शिशु के उ के स्थान में गुण रूप ओ),
ऊकारान्त वधू+अण्=वाधवम् (वधू की ऊ के स्थान में गुण रूप ओ),
ओकारान्त गो+यत्+टाप्=गो+अव्+गव्+या=गव्या,
औकारान्त नौ+ठक्=नौ+आव्+इक=नाविक।

(३) शब्दों के अन्तिम न् का ऐसे प्रत्ययों के सामने जो भिन्न व्यंजन से आरम्भ होते हैं बहुधा लोप हो जाता है; जैसे—राजन्+वुन् (अक) राज्+अक=राजकम्। यदि प्रत्यय स्वर से अथवा

से आरम्भ होते हों तो न् के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी
ाभी लोप हो जाता है; जैसे-आत्मन्+(ईय)=आत्म्+ईय=
ात्मीय।

(४) प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण
आदि किसी विधि की सूचना देने को होता है, शब्द के साथ नहीं
जुड़ता, जैसे—घण् का ण् केवल वृद्धि की सूचना के लिए है, केवल
अ जोड़ा जाएगा।

(५) प्रत्यय मे आए हुए ठ् के स्थान में[1] इक हो जाता है; जैसे-
ठक्=इक।

(६) प्रत्यय के यु वु के स्थान में[2] क्रम से अन और अक हो
जाते है, जैसे—ल्युट्=यु (अन), वुञ्=अक।

(७) प्रत्यय के आदि मे[3] आए हुए फ ढ ख छ घ के स्थान में
क्रम से आयन्, एय्, ईन, ईय्, इय् हो जाते है, अर्थात्—
फ=आयन्।
ढ=एय्
ख=ईन
छ=ईय्।
घ=इय्।

---

१ ठस्येकः ७।३।५०। २ युवोरनाकौ ७।१।१॥ ३. आयनेयी-
नीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।७।१।२।

अपत्यार्थ

१३०—अपत्य[1] शब्द का अर्थ है—सन्तान, 'पुत्र अथवा पुत्री'। अपत्याधिकार में ऐसे प्रत्ययो का विचार होगा जिनको संज्ञाओं में जोड़ने से किसी पुरुष या स्त्री की सन्तान का बोध होता है।[2] इन प्रत्ययो में गोत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ में आया है। नीचे केवल मुख्य मुख्य नियम दिये जाते है।

(क)[3] अपत्य का अर्थ बताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के अनन्तर इञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—दशरथ+इञ्=दाशरथिः (दशरथ का लड़का)। दत्तस्य अपत्यं=दात्तिः (दत्त्+इञ्) इत्यादि।

(ख)[4] ऐसे प्रातिपदिक जिनमें स्त्री प्रत्यय लगा हो उनसे अपत्य का अर्थ बताने के लिए ढक् (एय्) लगाना चाहिए, जैसे—विनता+ढक्=वैनतेयः (विनता का पुत्र)। भगिनी+ढक्=भागिनेयः (भांजा) इत्यादि। ऐसे प्रातिपदिक जिनमें केवल दो स्वर हों और जो इकार में अन्त होते हैं, ढक् प्रत्यय लगा कर अपत्यार्थ सूचित करते है, जैसे—अत्रि+ढक्=आत्रेय।

---

१ तस्यापत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥ २ अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥ ३ अत इञ् । ४ । १ । ९५ ॥ ४ स्त्रीभ्यो ढक् । द्व्यचः । ४ । १ १२०, १२१। इतश्चानिञः । ४।१।१२२ ।

(ग) अश्वपति आदि[1] (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, [illegible]पति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, [illegible]पति, क्षेत्रपति) प्रातिपदिकों में अण् प्रत्यय लगाकर अपत्यार्थ सूचित [illegible]या जाता है, जैसे—गणपति + अण् = गाणपतम् इत्यादि।

(घ) राजन् और श्वशुर[2] शब्दों के अनन्तर अपत्यार्थ में यत् (य) [illegible]त्यय लगता है। राजन् + यत् = राजन्यः, श्वशुर + यत् = श्वशुर्यः (साला)

मत्वर्थीय

१३१—हिन्दी में जो अर्थ 'वान्', 'वाला' आदि प्रत्ययों से सूचित [illegible]ता है (जैसे गाड़ीवान, छक्केवाला आदि) उसी अर्थ का बोध [illegible]राने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थीय (मतुप् प्रत्यय के अर्थ वाले) [illegible]हते हैं। उनमें से मुख्य दो चार का ही यहाँ विचार किया जायगा।

(क)[3] किसी वस्तु का होना किसी दूसरी वस्तु में सूचित [illegible]रने के लिये, जिस वस्तु का होना सूचित करना हो उसके अनन्तर मतुप् (मत्) प्रत्यय लगता है; जैसे :—

---

१ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ ।

२ राजश्वशुराद्यत् । ४ । १ । १३७ ।

३ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ।५।२।९४। भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगे-[illegible]तिशायने । सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ वार्तिक ॥

गावः अस्य सन्ति इति = गोमान् (गो + मतुप्)।

जब किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अ कता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो विशेष करके मत्व प्रत्यय लगाते हैं; जैसे :—

गोमान् (बहुत गायों वाला)।
ककुदावर्तिनी कन्या (कुबड़ी लड़की)।
रूपवान् (अच्छे रूप वाला) ।
क्षीरी वृक्षः (जिसमें नित्य दूध रहता हो)।
उदरिणी कन्या (बड़े पेट वाली लड़की)।
दण्डी (दण्ड के साथ रहने वाला साधु)।

मतुप् प्रत्यय विशेषकर गुणवाची शब्दों (रूप, रस, ग स्पर्श आदि) के उपरान्त लगता है। गुणवान्, रसवान् इत्यादि।

नोट—यदि[1] मतुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द हो जो म् अथवा अ, अथवा पाँचों वर्गों के प्रथम चार वर्णों मे अन्त होते हों अथवा जि उपधा (अन्तिम अक्षर के पूर्ववाला अक्षर उपधा कहलाता है) म् अथ अ आ हो तो मतुप् के म् के स्थान में व् हो जाता है, जैसे कि ऊप उदाहरण, और विद्यावान् लक्ष्मीवान्, यशस्वान् विद्युद्वान्, तडिद्वान्, इत्यादि कुछ शब्दों के अनन्तर (यव आदि में) यह नियम नहीं भी लगता है जैसे यवमान्।

---

1 मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य । ८ । २ । ९ । झय । ८ । २ । १

(ख) अकारान्त[1] शब्दों के अनन्तर इनि (इन्) और ठन् (इक) लगते हैं; जैसे :—

दण्डी (दण्ड+इनि) दण्डिकः (दण्ड+ठन्)।

(ग) तारका[2] आदि (तारका, पुष्प, मञ्जरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, द्रोह, दोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कञ्चुक, शृङ्गार, अङ्कुर, वकुल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, दीक्षा, गर्ज ये इस ये मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर 'यह जिसमें है—' इस अर्थ बोध कराने के लिए इतच् (इत) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

तारका+इतच्=तारकित (तारे है जिसमें)।

पिपासित (प्यास है जिसमें—प्यासा)।

पुष्पित, कुसुमित आदि इसी प्रकार बनते हैं।

भावार्थ तथा कर्मार्थ

१३२ किसी[1] शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए उ शब्द में त्व अथवा तल् (ता) जोड़ देते हैं। त्व मे अन्त होने वा शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और तल् में अन्त होने वा स्त्रीलिङ्ग में, जैसे—

गो + त्व = गोत्वम्, गो + तल् = गोता, शिशु + त्व = शिशुत्वम् शिशु + तल् = शिशुता, इत्यादि।

(क)[2] पृथु आदि (पृथु मृदु, महत, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु उरु गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन बाल, होड, पाक, वत्स मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र क्षुद्र, अणु) शब्दों के अनन्तर भाव का अर्थ सूचित करने के लिए इमनिच् (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से लगाते हैं। जिस शब्द में यह प्रत्यय लगाते हैं वह यदि व्यञ्जन से आरम्भ हो और उसके अनन्तर ऋकार (मृदु, पृथु आदि) आवे तो उस ऋकार के स्थान में र् होजाता है। इमनिच प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सभी पुंलिङ्ग में होते हैं, जैसे—

पृथु + इमनिच् = प्रथिमन (महिमन् के अनुसार रूप चलेंगे), पृथुत्व पृथुता, म्रदिमन्, महिमन्, पटिमन्, तनिमन्, लघिमन् बहिमन् आदि।

---

१ तस्य भावस्त्वतलौ। ५। १। ११९।

२ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। ५। १। १२२। र ऋतो हलादेर्लघोः ६। ४। १६१।

(ख) [1]वर्णवाची शब्दो (नील, शुक्ल आदि) के अनन्तर तथा दृढ आदि (दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड, बधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, स्थिर) के अनन्तर इमनिच् अथवा ष्यञ् (य) भाव के अर्थ मे लगाते है, जैसे—

शुक्लस्य भावः=शुक्लिमा शौक्ल्यम् (अथवा शुक्लत्व, शुक्लता)।

इसी प्रकार—

माधुर्यम् मधुरिमा, दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्व, दृढता आदि।

ष्यञ् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते है।

(ग) [2]गुणवाची शब्दो के अनन्तर तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्यभाव, संवादिन्, संवेशिन् संभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, वालिश, अलस दुष्पुरुष, कापुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायाद, विषम विपात, निपात—ये इस गण के मुख्य शब्द है) शब्दों के अनन्तर भावार्थ सूचित करने के लिए ष्यञ् (य)

चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतूहल्यम्, बालिश्यम्, आलस्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाड्यम्, मालिन्यम्, मौढ्यम् आदि।

नोट—कर्म का अर्थ बोध कराने के लिए भी इन शब्दों के अनन्तर ष्यञ् लगाते हैं; जैसे—ब्राह्मणस्य कर्म = ब्राह्मण्यम्, बालिशस्य कर्म = बालिश्यम्, काव्यम्।

(घ)[1] इ, उ, ऋ अथवा लृ में अन्त होने वाले शब्दों के अनन्तर (यदि पूर्व वर्ण में लघु अक्षर हो जैसे शुचि, मुनि आदि–पाण्डु नहीं) भाव अथवा कर्म का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे—

शुचेर्भावः कर्म वा = शौचम्, मुनेर्भावः कर्म वा = मौनम्।

(च)[2] यदि किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है उसके अनन्तर वति (वत्) प्रत्यय जोड़ देते हैं, जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते = ब्राह्मणवत् अधीते।

(छ)[3] यदि किसी में अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो तब भी वति प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्गं = इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्गं (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ में है वैसा ही प्रयाग में है)।

---

१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। ५। १। १३१॥

२ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः। ५। १। ११५॥

३ तत्र तस्येव। ५। १। ११६॥

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः = चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्र की वैसी ही मैत्र की हैं)।

(ज) यदि[1] किसी के समान किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा किसी के स्थान पर कोई रख लिया जाय तो उस शब्द के अनन्तर कन् (क) प्रत्यय लगाकर इस अर्थ का बोध कराते हैं; जैसे—

अश्व इव प्रतिकृति = अश्वकः (अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र है जिसका)।

पुत्रकः (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को जब पुत्र मान लें)।

समूहार्थ

१३३[2]—किसी वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—
बकानां समूहः = बाकम्।
काकानां समूहः = काकम्।
वृकाणां समूहः = वार्कम् (भेड़ियों का समूह)।
भैक्षम्, कापोतम्, सैक्तम्, गार्भिणम्।

१ इवे प्रतिकृतौ। ५। ३। ९६॥
२ तस्य समूहः। ४। २। ३७॥ भिक्षादिभ्योऽण्। ४। २। ३८।

(क) ग्राम[1], जन, बन्धु, गज, सहाय इन शब्दों के अनन्तर समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) लगता है :—

ग्रामता (ग्रामों का समूह), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

१३४—"यह[2] इसका है," इस अर्थ को बताने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो उसके अनन्तर अण् लगाते है, जैसे—

उपगोरिदम् (उपगु + अण्) = औपगवम्।

देवस्य अयम् = दैवः।

ग्रीष्म + अण् = ग्रैष्मम्, नैशम् आदि—

इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है।

(क) सम्बन्ध[3] अर्थ दिखाने के लिए हल और सीर शब्द के अनन्तर ठक् (इक) लगता है ; जैसे—हालिकम्, सैरिकम्।

(ख) जिस[4] वस्तु से बनी हुई (विकारस्वरूप) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते है ; जैसे—

---

१ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् । ४ । २ । ४३ गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् । वा० ।

२. तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ।

३ हलसीराट्ठक् । ४ । ३ । १२४ ।

४ तस्य विकारः । ४ । ३ । १३४ ।

भस्मनो विकारः=भास्मनः (भस्म से बना हुआ)।

मार्त्तिकः (मिट्टी से बना हुआ, मिट्टी का विकार)।

(ग)[1] प्राणिवाचक, ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों के अनन्तर यही प्रत्यय 'अवयव' का भी अर्थ बतलाता है, विकार तो बताता ही है; जैसे—

मयूरस्य विकारः अवयवो वा=मायूरः।

मर्कटस्य विकारोऽवयवो वा=मार्कटः।

मूर्वायाः विकारोऽवयवो वा=मौर्वं काण्डम्, भस्म वा।

पिप्पलस्य विकारः अवयवो वा=पैप्पलः।

(घ)[2] उ, ऊ में अन्त होने वाले शब्द के अनन्तर अवयव का अर्थ बताने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय होता है; जैसे—

देवदारु+अञ्=दैवदारवम्, भाद्रदारवम्।

(ङ)[3] विकार अथवा अवयव का अर्थ बताने के लिए विकल्प से मयट् प्रत्यय भी आ सकता है, किन्तु खाने पहनने की वस्तुओं के अनन्तर नहीं; जैसे—

अश्मनः विकारो अवयवो वा=आश्मनम्, अश्ममयम् वा।

भस्ममयम्, सुवर्णमयः, सुवर्णमयी इत्यादि।

किन्तु मौद्गः सूपः (मूँग की दाल) का मुद्गमयः सूपः नहीं होगा।

परिमाणार्थ तथा संख्यार्थ

१३५—जो प्रत्यय परिमाण (कितना आदि) बताने के लिये लगाए जाते है उन्हे परिमाणार्थ प्रत्यय कहते है।

(क) यत्, तत्, एतत् के अनन्तर वतुप्, किम्, इदम् के[1] अनन्तर व और घ (इय) लगता है, जैसे—इयान्, कियान्।

इनका विस्तृत रूप विशेषण विचार में दिखाया जा चुका है।

(ख) मात्रच्[2] प्रत्यय लगाकर प्रमाण, परिमाण, संख्या आदि का संशय हटाकर निश्चय स्थापित किया जाता है, जैसे—

रामः प्रमाणम्=राममात्रम् (निश्चय ही राम प्रमाण है)।

सेरमात्रम् (सेर ही भर)।

पञ्चमात्रम् (पाँच ही)।

(ग) पुरुष[3] और हस्तिन् के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाकर प्रमाण बताया जाता है; जैसे—

पौरुषम् (जलमस्या सरिति)—इस नदी मे आदमी भर (आदमी के डूबने भर) पानी है। हास्तिनम् (जलम्)।

(घ) किम्[4] शब्द के अनन्तर डति (अति) लगाकर संख्या का और परिमाण का भी बोध कराते है, कति—कितने।

---

१ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्। किमिदंभ्यां वो घः। ५। २। ३९—४०।

२ प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये। मात्रज्वक्तव्यः। वा०।

३ पुरुषहस्तिभ्यामण् च। ५। २। ३८।

४ किमः संख्यापरिमाणे डति च। ५। २। ४१।

(च) संख्या[1] शब्द के अनन्तर तयप् लगाकर संख्यासमूह का बोध कराते हैं, द्वितयम्, त्रितयम् आदि।

द्वि और त्रि के अनन्तर इसी अर्थ में अयच् प्रत्यय भी लगता है—द्वयम्, त्रयम्।

हितार्थ

१३६—जिसके[2] हित की कोई वस्तु हो उसके अनन्तर छ (इय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

वत्सेभ्यः हितं दुग्धं=वत्सीयम् दुग्धम् (बछड़ों के लिए दूध)।

इसी अर्थ में शरीर[3] के अवयववाची शब्दों के अनन्तर तथा उकारान्त[4] शब्दों के अनन्तर और गो आदि (गो, हविस्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, युग, मेधा, नाभि, श्वन्—शून् वा शुन् हो जाता है—कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है जैसे—

दन्तेभ्यः हिता (ओषधि)=दन्त्या, (दन्त+यत्) । इसी प्रकार नाभ्यम् गोभ्यः हितं=गव्यम्, शरवे हित=शरव्यम् (शरु+यत), अष्टक्यम्, अक्षय्यम्, बर्हिष्यम्, वेद्यम्, बीज्यम् आदि।

---

1 संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२। द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।५।२।४३।
2 तस्मै हितम् । ५ । १ । ५ ।
3 शरीरावयवाद्य । ५ । १ । ६ ।
4 उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ ।

क्रियाविशेषणार्थ

१३७—कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे है, जिनके जोड़ने से वह प्रयोजन सिद्ध होता है जो हिन्दी मे दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणो मे होता है।

(क)[1] पञ्चमी विभक्ति के अर्थ मे संज्ञा तथा सर्वनाम, विशेषण के अनन्तर, तथा परि और अभि प्रत्ययों के अनन्तर तसिल् (तस्) लगता है, इस प्रत्यय के पूर्व तथा नीचे लिखे प्रत्ययो के पूर्व कुछ सर्वनामो के रूप में हेर फेर हो जाता है ; जैसे—

त्वत्तः (त्वम्+तसिल्), मत्तः, युष्मत्त, अस्मत्तः, अतः यतः, ततः, मध्यतः, परतः, कुतः, सर्वतः, इतः, अमुतः, उभयतः, परितः, अभितः आदि।

(ख)[2] सप्तमी का अर्थ देने के लिए त्रल् (त्र) लगता है—कुत्र, अत्र, तत्र, यत्र, बहुत्र सर्वत्र, एकत्र।

(ग)[3] कब, जब आदि अर्थ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, तद् शब्दो के अनन्तर 'दा' प्रत्यय लगता है—

सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा यदा, तदा।

इसी अर्थ मे 'दानीम्' प्रत्यय भी लगता है, कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि।

---

१ पञ्चम्यास्तसिल ।५।३।७। पर्यभिभ्यां च ।५।३।९। सर्वोभयार्थाभ्यामेव । वा०।

२. सप्तम्यास्त्रल् ।५।३।१०।

३. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ।५।३।१५। [illegible]

(घ)[1] ऐसे वैसे आदि शब्दों के द्वारा सूचित प्रकार अर्थ को बताने के लिए थाल् (थम्) था प्रत्यय लगाते हैं—कथम्, इत्थम्, यथा, तथा।

(च)[2] आगे, पीछे आदि शब्दों का अर्थ बताने के लिए पुरः आदि दिशावाची शब्दों के अनन्तर प्रथमान्त, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ में अस्ताति (अस्तात) प्रत्यय लगता है;

पुर + अस्ताति = पुरस्तात्, अधस्तात्, अवस्तात् अवरस्तात्, उपरिष्टात्।

इसी प्रकार एनप् लगाकर प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने को दक्षिणेन, उत्तरेण, अधरेण, पूर्वेण, पश्चिमेन, तथा आति लगाकर पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात शब्द बनाते हैं।

(छ)[3] 'दो बार' 'तीन बार' आदि की तरह 'बार' शब्द [illegible] बताने के लिए पञ्चन् और इसके आगे के संख्यावाची शब्दों [illegible] कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय लगाते हैं:

---

१ प्रकारवचने थाल् । ५ । ३ । २३ ।

२ दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो [illegible] ५ । ३ । २७ । एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः [illegible] उत्तराधरदक्षिणादातिः । ५ । ३ । [illegible]

पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है)

इसी प्रकार—षट्कृत्वः, सप्तकृत्वः आदि।

इस अर्थ में एक बार के लिए 'सकृत्' शब्द है और द्वि, त्रि, चतुर् के अनन्तर सुच् (स्) लगता है—

द्विः—दो बार, त्रिः, चतुः।

बहु के अनन्तर कृत्वसुच् और धा दोनो प्रत्यय लगते हैं—

बहुकृत्वः, बहुधा—बहुत बार।

शैषिक

१३८-[1]ऐसे अर्थ जिनका बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं होता, वे तद्धित अर्थ पाणिनि व्याकरण में 'शेष' शब्द से बतलाये गये हैं। शेष तद्धित अर्थों के लिए बहुधा अण् जोड़ा जाता है। उदाहरणार्थः—

चक्षुषा गृह्यते (रूपं) = चाक्षुष (चक्षुष् + अण्)।

श्रवणेन श्रूयते (शब्दः) = श्रावणः (श्रवण + अण)।

अश्वैरुह्यते (रथः) = आश्वः।

चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) = चातुरम्।

चतुर्दश्या दृश्यते (रक्षः) = चातुर्दशम्।

(क) [2]ग्राम शब्द के अनन्तर शैषिक प्रत्यय यत् और खञ् (ईन) होते हैं:—ग्राम्यः, ग्रामीणः।

---

१ शेषे। ४। २। ९२। २. ग्रामाद्यखञौ। ४। २। ९४।

द्यु, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रतीच् शब्दों के अनन्तर यत् होता है[1]:—
दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्।

अमा इह, क्व, नि, तसि प्रत्ययान्त शब्द तथा त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) आता है:—अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, नित्यः, ततस्त्यः, आतस्त्यः, कुतस्त्यः, यतस्त्य आदि, कुत्रत्यः, तत्रत्यः, अत्रत्यः, यत्रत्य आदि।

(ख) जिस शब्द के स्वरों में पहला स्वर वृद्धि वाला (आ, ऐ औ) हो उन शब्दों को तथा त्यद् आदि (त्यद्, तद् यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्) शब्दों को पाणिनि ने 'वृद्ध' नाम दिया है[2], इन वृद्धों के अनन्तर शैषिक छ (ईय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

शाला+छ=शालीय, माला+छ=मालीय; तद्+छ=तदीय, यदीय, एतदीय युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

(ग) युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी अर्थ में छ के[3]

---

१. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् । ४ । २ । १०१ । अमेहक्वतसित्रेभ्य एव । वा० । त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् । वा० ।

२. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । त्यदादीनि च । १ । १ । ७३–७४ । वृद्धाच्छः । ४ । २ । ११४ ।

अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से हो सकते हैं, किन्तु इस दशा में युष्मद् और अस्मद् के स्थान में युष्माक और अस्माक तथा एकवचन में तवक और ममक, खञ् और अण् प्रत्यय लगाने के पूर्व आदेश हो जाते हैं—

युष्मद्—युष्माक (+ अण्) = यौष्माक, (+ खञ्) = यौष्माकीण (तुम्हारा)। तवक (+ अण्) = तावक, (+ खञ्) = तावकीन (तेरा)। युष्मद् (+ छ) = युष्मदीय।।

अस्मद्—अस्माक (+ अण्) = आस्माक (+ खञ्) = आस्माकीन (हमारा)। ममक (+ अण्) = मामक, (+ खञ्) = मामकीन (मेरा)। अस्मद् (+ छ) = अस्मदीय।

नोट—'विशेषण विचार' में इनका उल्लेख आ चुका है।

(घ) कालवाची[1] शब्दों के अनन्तर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है—

मास + ठञ् (इक) = मासिक, सांवत्सरिक, सायंप्रातिक, पौनःपुनिकः आदि।

परन्तु[2] सन्धिवेला शब्द, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची शब्द (ग्रीष्म आदि) और नक्षत्रवाची शब्दों के अनन्तर अण् होता है—

सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम् (वार्षिकम्—वर्षा + ठक्, प्रावृषेण्यम्—प्रावृष् + एण्य), शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि।

---

१ कालाट्ठञ्। ४। ३। ११।

२ सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्। ४। ३। १६।

(च) साय[1], चिरं, प्राह्णे, प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययों के अनन्तर शैषिक ट्यु-ट्युल (अन) लगते हैं और शब्द और प्रत्यय के बीच में त् भी ऊपर से आ जाता है --

साय + त् + ट्युल् (अन)=सायन्तनम्, चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम्, इत्यादि।

(छ)[2] दो के बीच में अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्यय लगते हैं और दो से अधिक के बीच में दिखाने के लिए तमप् और इष्ठन्।

लघु से लघीयस्, लघुतर (दो के लिए) और लघिष्ठ और लघुतम दो से अधिक के लिए। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन विशेषण विचार (१०३) में आ चुका है।

(ज) किम् के अनन्तर, एत् प्रत्ययान्त (प्राह्णे, प्रगे आदि) शब्दों के अनन्तर अव्ययों के अनन्तर तथा तिङन्त के अनन्तर तमप् + आमु = (तमाम्) लगाया जाता है—

किन्तमाम्, प्राह्णेतमाम्, उच्चैस्तमाम्—(खूब ऊँचा), पचतितमाम्—(खूब अच्छी तरह पकाता है)। इसी प्रकार—नीचैस्तमाम् गच्छतितमाम्, हरतितमाम् आदि।

(झ)[1] कुछ कमी दिखाने के लिए कल्पप् (कल्प) देश्य, देशीय((देशीय) प्रत्यय लगाए जाते हैं ; जैसे —

विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः—कुछ कम विद्वान् पुरुष।

पञ्चवर्षकल्पः, पञ्चवर्षदेश्यः पञ्चवर्षदेशीयः—कुछ कम पाँच बरस का।

यजतिकल्पम्—ज़रा कम यज्ञ करता है।

(ट)[2] अनुकम्पा का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय लगाते है ; जैसे—

पुत्रकः (बेचारा लड़का), भिक्षुक (बेचारा भिखारी) आदि।

(ठ)[3] जब कोई वस्तु कुछ से कुछ हो जाए, इतनी बदल जाए कि काली न हो तो काली हो जाए, मीठी न हो तो मीठी हो जाए इत्यादि तो च्वि प्रत्यय लगा कर इस अर्थ का बोध कराते है। यह प्रत्यय केवल कृ धातु, भू धातु और अस् धातु के योग मे आता है। च्वि का लोप हो जाता है, किन्तु पूर्व पद का अकार अथवा आकार ईकार मे बदल जाता है और यदि अन्य स्वर पूर्व में आवे तो वह दीर्घ हो जाता है, जैसे —

अकृष्णः कृष्णः क्रियते (कृष्ण + क्रियते + च्वि) = कृष्ण + ई + क्रियते = कृष्णीक्रियते।

---

1 ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५।३।६७।

२ अनुकम्पायाम्। ५। ३। ७६।

३ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः। ५। ४। ५०। अभूततद्भावे इति वक्तव्यम्। वा०। अस्य च्वौ। ७। ४। ३२। च्वौ च। ७। ४। २६।

अमहा महा भवति महीभवति (जो महा नहीं है वह महा होता है)।

अगङ्गा गङ्गा स्यात्=गङ्गीस्यात् (जो गङ्गा नहीं है वह गङ्गा हो जाए)। शुचीभवति, पटूकरोति इत्यादि।

(ङ) जब किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में ही परिणत हो जाना दिखाना हो तो साति (सात्) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे :—

इन्धनम् अग्निः भवति=इन्धनम् अग्निसात् भवति=(ईंधन आग हो जाता है)।

अग्निः भस्मसात् भवति—आग भस्म हो जाती है।

प्रकीर्णक

१११—ऊपर उल्लिखित अर्थों के अतिरिक्त और भी कितने ही अर्थों के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं। प्रधान प्रधान अर्थ नीचे दिए जाते हैं।

(क) यदि किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो, अर्थात् वह वहाँ विद्यमान हो तो जिस वस्तु में सत्ता हो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—

इसी[1] अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा (दिश्, वर्ग, पूग, पक्ष रहस्, उखा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेध, यूथ, न्याय, वंश, काल, मुख, जघन), इन शब्दों में यत् (य) जोड़ा जाता है—

दन्त्यम्, मुख्य, नासिक्य, दिश्य, पूग्य, वर्ग्यः (पुरुषः), पक्ष्य, (राजा), रहस्यं (मन्त्रम्), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्यः (पुरुषः) आद्य आदि, अन्त्य, मेध्य, यूथ्य, न्याय्य, वंश्य काल्य, मुख्य (सेना आदि के अङ्ग के अर्थ में), जघन्य (नीच)। इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा।

इसी[2] अर्थ में कुछ अव्ययीभाव समासों के अनन्तर 'ञ्य (य)' लगता है, जैसे परिमुखं भव = पारिमुख्यम्।

(ख) यदि[3] किसी स्थान में किसी मनुष्य का निवास (अपना अथवा पूर्वजों का) हो और यह बतलाना हो कि यह अमुक स्थान का निवासी है तो स्थानवाचक शब्द में अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुरायां निवासः अभिजनो वाऽस्य = माथुरः भटनागर।

यदि[4] किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध से बताना हो तो जनवाची शब्द के अनन्तर अण लगाते हैं, जैसे—

शिवीनां विषयो देशः = शैव देश (शिवि लोगों के रहने का देश)।

---

१ दिगादिभ्यो यत् शरीरावयवाच्च। ४। ३। ५४-५५।

२ अव्ययीभावाच्च। ४। ३। ५९।

३ सोऽस्य निवासः ४। ३। ८९। अभिजनश्च। ४। ३। ९०।

४ विषयो देशे। ४। २। ५२। तस्य निवासः। ४। २। ६९।

(ग) यदि[1] किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु आवे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु, अथवा मनुष्य से आई है तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाते हैं ; जैसे—

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ।

आमदनी[2] के स्थान (दूकान, कारखाना) आदि के अनन्तर ठक् (इक) होता है ; जैसे—

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः ।

जिनसे[3] विद्या अथवा जन्म (योनि) का सम्बन्ध हो उन से, यदि ऋकारान्त शब्द न हो, तो वुञ् (अक) होता है ; जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या—औपाध्यायिका,

पितामहादागत धन पैतामहकम् ; अन्यथा भ्रातृकम्, पैतृकम् ।

(घ) यदि[4] कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुआ खेले, कुछ खो दे, कुछ जीते हारे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है ; जैसे—

अक्षैर्दीव्यति = आक्षिकः (अक्ष+ठक्)—ऐसा मनुष्य जो पा (पाँसे) से जुआ खेलता है।

अभ्र्या खनति = आभ्रिकः—फावड़े से खोदने वाला।

अक्षैर्जयति = आक्षिकः – पाँसों से जीतने वाला।

उडुपेन तरति = औडुपिकः—डोंगी से तैरने वाला।

हस्तिना चरति = हास्तिक —हाथी के साथ चलने वाला।

(ख) अस्ति, नास्ति, दिष्ट इनके अनन्तर मति के अर्थ में; प्रहरण वाची शब्दों के अनन्तर, 'यह प्रहरण इस के पास है' इस अर्थ में जिस बात के करने का शील (स्वभाव) हो उसके अनन्तर, और जिस काम पर नियुक्त किया गया हो उसके अनन्तर मनुष्य का बोध कराने के लिए ठक् प्रत्यय लगता है; जैसे[1]

अस्ति परलोकः इति मतिर्यस्य स. = आस्तिकः (अस्ति+ठक्),

नास्ति परलोकः इति मतिर्यस्य सः = नास्तिकः।

दिष्टमिति मतिर्यस्य सः = दैष्टिकः (भाग्यवादी)।

असिः प्रहरण यस्य सः = आसिक. (असि+ठक्)।

अपूपभक्षणं शीलमस्य - आपूपिक (अपूप+ठक्)—जिसकी पुआ खाने की आदत हो।

आकरे नियुक्त = आकरिक (आकर+ठक्) = खजानची।

1 अस्तिनास्तिदिष्टं मति ४। ४। ६०। प्रहरणम् । ४। ४। ५७। शीलम् । ४। ४। ६१। तत्र नियुक्त । ४। ४। ६९।

(ङ) 'वश में आया हुआ[1] ' के अर्थ में वश के अनन्तर, अनुकूल के अर्थ में धर्म, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय के अर्थ में हृद् (हृदय) के अनन्तर, तथा यदि किसी वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो उस वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

वशंगतः = वश्यः (वश + यत्), धर्मादनपेतं = धर्म्यम् (धर्म + यत्)— (धर्मानुकूल), पथ्यम्, अर्थ्यम्, न्याय्यम् ; हृदयस्य प्रियः = हृद्यः (जनः)—हृद् + यत—(प्रिय), शरणे साधुः = शरण्यः (शरण + यत्)— (शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि साधुः = कर्मण्यः—(काम के लिए अच्छा) ।

(च)[2] जिस वस्तु के जो योग्य होता है उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के अनन्तर ठञ् आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे—

प्रस्थमर्हति असौ याचक = प्रास्थिकः (प्रस्थ भर अन्न के योग्य)— प्रस्थ + ठञ्,

द्रौणिकः—द्रोण + ठञ् ;

श्वेतच्छत्रमर्हति = श्वैतच्छत्रिकः—श्वेतच्छत्र + ठक् ;

इसी अर्थ में दण्ड आदि (दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, मेधा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ, भङ्ग) शब्दों के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे :—

---

१ वशं गतः । धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते । हृदयस्य प्रियः । तत्र साधुः । ४।४।८६,९२ ९५ ९८

२ तदर्हति ५।१।६३। दण्डादिभ्यः ।५।१।६६।

दण्ड्य, मुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मेध्य, मेध्य, वध्य, युग्य, गुह्य, भाग्य भंग्य आदि।

(झ) प्रयोजन के अर्थ में ठञ् प्रत्यय लगता है; जैसे—[1]

इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य पदार्थस्य=ऐन्द्रमाहिकः (पदार्थ)--इन्द्र के उत्सव के लिए। प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनों हैं।

(ट) जिस रँग से रँगी हुई वस्तु हो उस रङ्गवाची शब्द के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते है, जैसे—[2]

कषाय+अण्=काषाय वस्त्रम्,

मञ्जिष्ठा+अण्=माञ्जिष्ठम्।

किन्तु लाक्षा, रोचन, शकल, कर्दम के अनन्तर ठक् (लाक्षिक, रौचनिक शाकलिक, कार्दमिक) ; नीली के अनन्तर अन् (नीली+अन्=नील), पीत के अनन्तर कन् (पीतकम्), तथा हरिद्रा और महारजन के अनन्तर अञ् (हारिद्रम्, महारजनम्) इसी अर्थ में लगता है।

(ठ) नक्षत्र से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में अण् जोड़ते हैं, जैसे—[3]

---

१ प्रयोजनम् ।५।१।१०९

२ तेन रक्तं रागात् ४।२।१। लाक्षारोचनाट्ठक् ।४।२।२। शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् (वा०) । नील्या अन् (वा०) । पीतात्कन् (वा०) । हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् (वा०) ।

३ नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३।

चित्रया युक्तः मासः=चैत्रः,

पुष्येण युक्ता रात्रिः पौषी रात्रिः इत्यादि ।

(ड) जिस वस्तु में खाने पीने की वस्तु तय्यार की जाए तो यह बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु में यह वस्तु तय्यार हुई है, तो उस वस्तु के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

भ्राष्ट्रे संस्कृताः यवाः भ्राष्ट्राः (भाड में भूने हुए जौ) ।

पयसि संस्कृतं भक्तं=पायसम् (दूध में बने चावल) आदि ।

किन्तु दधि शब्द के अनन्तर ठक् लगता है ।

दधि संस्कृतम्=दाधिकम् (दही में बनी चीज़) ।

किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) से संस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक् लगता है ; जैसे—

तैलेन संस्कृतं=तैलिकम् (तेल में बनी वस्तु), घार्तिकम् (घी से बनी), मारीचिकम् (मिर्च से छोंकी) ।

(ढ) जिस खेल में कोई प्रहरण प्रयोग में लाया जाए तो उस खेल का बोध कराने के लिए, प्रहरणवाची शब्द के अनन्तर ण (अ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

कोई चीज़ पढ़नेवाले या जाननेवाले का बोध कराने के लिए[1] (अ) लगता है; जैसे:--

व्याकरणमधीते वेद वा=वैय्याकरणः (व्याकरण +अ।)

(त) "इसमें वह वस्तु है", "उससे यह बनी है", "इस में उस[2] निवास है", "यह उससे दूर नहीं है"—ये सब अर्थ दिखाने के लि अण् प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे:—

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे इति औदुम्बर देशः,

कुशाम्बेन निर्वृत्ता=कौशाम्बी (नगरी)

शिबीनां निवासो देशः=शैब' देशः,

विदिशाया. अदूरभवं (नगरम्)=वैदिशम्।

इन चार अर्थों के बोधक प्रत्ययों को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

यदि जनपद का अर्थ लाना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययों का लोप हो[3] जाता है।

पञ्चालानां निवासो जनपद. = पञ्चाला., कुरव, वङ्गा., कलिङ्गा आदि।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचन में रहते हैं।

---

१ तदधीते तद्वेद।४।२।५९।

२ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि। तेन निर्वृत्तम्। तस्य निवास। अदूरभवश्च।४।२।६७-७०।

३ जनपदे लुप्।४।२।८१।

इ, ई, उ, ऊ से अन्त होने वाले शब्दों में चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय लगता है; जैसे—इक्षुमती।

नवम सोपान

क्रिया विचार

१४०—संस्कृत भाषा के प्रायः सभी शब्द धातुओं से बनते हैं, क्या संज्ञा, क्या विशेषण, क्या क्रिया, क्या अव्यय आदि। कुछ शब्द ऐसे हैं जो कि ऊपर से धातु से बने नहीं जान पड़ते, किन्तु वैयाकरण उनको भी धातुओं से निर्मित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। व्याकरण की दृष्टि से धातु शब्द का अर्थ है 'शब्दयोनि'; अर्थात् जिससे शब्दों की उत्पत्ति हो। 'धातुपाठ' में कुल १८८० धातुओं की गणना है, इन्हीं से प्रत्यय विशेष जोड़ जोड़ कर संस्कृत भाषा के शब्द बनते हैं।

धातुओं से कृदन्त प्रत्यय जोड़ कर संज्ञा, विशेषण आदि बनते हैं। इनका विचार आगे ग्यारहवें सोपान में किया जायगा। धातुओं से तुङ् (तिङ्) प्रत्यय जोड़ कर क्रियाएँ बनाई जाती हैं। इस सोपान में क्रिया की दृष्टि से ही विचार किया गया है।

स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि[1]। इनको क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम गण भी कहते है। गण का अर्थ है "समूह" धातुओ के उस समूह को जिसके आदि में भू धातु है भ्वादिगण कहते हैं, इसी प्रकार अदादि भी है। जिन धातुओ के रूप एक प्रकार से चलते है वे एक गण में रक्खी गई हैं। प्रत्येक गण में रूप चलाने के लिए क्या विशेषता लानी होती है यह आगे प्रत्येक गण के विचार के समय उल्लेख किया जाएगा।

(ख) रूप चलाने की सुगमता के लिए धातुओ का विभाग सेट्, वेट्, अनिट्, इन तीन भागों में भी किया जाता है। सेट् का अर्थ है इट् सहित, अर्थात् जिनके रूपो मे धातु और प्रत्यय के बीच में एक "इ" आ जाती है। यह "इ" कुछ ही प्रत्ययो के पूर्व आती है सब के पूर्व नहीं। वेट् (वा + इट्) विभाग में वे धातुएँ है जिनके उपरान्त इ विकल्प से आती है और अनिट् विभाग में वे है जिनमें इट् नहीं लाई जाती।

(ग) कुछ धातुएँ सकर्मक होती है, और कुछ अकर्मक। सकर्मक धातुओं के रूपो के साथ किसी कर्म की आकांक्षा रहती है अकर्मक धातुओं के रूपों के साथ नहीं।

---

[1] भ्वाद्यदादी जुहोत्यादि दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रिचुरादयः ॥

(घ) संस्कृत भाषा में दो पद होते हैं:—परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है "वह पद जो दूसरे के लिए हो" और आत्मनेपद का अर्थ है "वह पद जो अपने लिए हो"। अस्तु ऐसी क्रियाएँ जिनका फल दूसरे के लिए हो परस्मैपद में होनी चाहिएँ और ऐसी जिनका फल अपने लिए हो आत्मनेपद में होनी चाहिएँ, जैसे—सः वपति (वह बोता है). यहाँ 'वपति' परस्मैपद की क्रिया है और इस से यह तात्पर्य निकलता है कि बोने की क्रिया का जो फल होगा वह दूसरे के लिए होगा, बोने वाले के लिए नहीं. यदि सः वपते (वह बोता है) कहा जाय जहाँ 'वपते' आत्मनेपद की क्रिया है तो इसका अर्थ होगा कि बोने की क्रिया का फल बोने वाले को मिलेगा। परन्तु क्रिया के रूपों को इस दृष्टि से प्रयोग करने का नियम केवल व्याकरणों में ही दिखाया गया है, संस्कृत के ग्रन्थकार प्रायः सभी इस नियम का उल्लंघन करते आए हैं। धातुएँ पदों के हिसाब से भी विभक्त हैं, कुछ परस्मैपद में ही होती हैं, कुछ आत्मनेपद में ही और कुछ दोनों में। इससे परस्मैपदी धातु, आत्मनेपदी धातु और उभयपदी धातु ये तीन विभाग धातुओं के होते हैं। कभी कभी विशेष दशा में कोई एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है—इसका विचार आगे किया जायगा।

भोजनमद्मि), यह कर्तृवाच्य में; मुझ से खाना खाया जाता है (मया भोजनमद्यते), यह कर्मवाच्य में, तथा मुझसे चला नहीं जाता (मया न अट्यते) यह भाववाच्य में। केवल सकर्मक धातुओं की क्रियाओं में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य सम्भव होते हैं, अकर्मक धातुओं के रूपों के साथ कर्तृवाच्य और भाववाच्य। अँगरेजी में केवल कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य होते हैं, भाववाच्य नहीं। हिन्दी में कर्तृवाच्य में बोलना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है, किन्तु संस्कृत में कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य में।

(क) संस्कृत भाषा में दस काल अथवा वृत्तियाँ (Tenses and moods) होती हैं, वे इस प्रकार हैं:—

(१) वर्तमानकाल— लट् —(Present tense)
(२) आज्ञा— लोट् —(Imperative mood)
(३) विधि— विधिलिङ् —(Potential mood)
(४) अनद्यतनभूत— लङ् —(Imperfect tense)
(५) परोक्षभूत— लिट् —(Perfect tense)
(६) सामान्यभूत— लुङ् —(Aorist)
(७) अनद्यतनभविष्य—लुट् —(First Future)
(८) सामान्यभविष्य—लृट् —(Simple Future)
(९) आशीः— आशीर्लिङ् (Benedictive)
(१०) क्रियातिपत्ति— लृङ्[1] —(Conditional)

---

1 लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति॥

लट् आदि नाम पाणिनि के व्याकरण में इन कालों का बोध कराने के लिए मिलते है, ये सब ल् से आरंभ होते हैं, इसलिए इनको दस लकार भी कहते है। अंगरेज़ी के नाम इन कालों का यथा ठीक ठीक बोध नहीं कराते।

(१) वर्तमानकाल की क्रिया का प्रयोग वर्तमान समय में होने वाली वस्तु के विषय में किया जाता है, जैसे—स गच्छति, सः कटं करोति, वयं कुर्मः आदि।

(२) आज्ञा का प्रयोग किसी को कुछ करने की आज्ञा देने के लिए प्रयोग में आता है, जैसे—त्वं पाठशालां गच्छ, यूयं मह्यं धनं दत्त, आदि। आज्ञा बहुधा सामने उपस्थित मनुष्य को ही दी जाती है, इसलिए आज्ञा का प्रयोग बहुधा मध्यम पुरुष में ही होता है। परन्तु ऐसे प्रयोग जैसे मैं करूँ (अहं करवाणि), वह करे (सः करोतु) आदि भी आवश्यकतानुसार होते हैं।

(३) विधिलिङ् का प्रयोग किसी को आदेश देने के लिए, जैसे प्रभु सेवक को देता है, किया जाता है। यदि आज्ञा के रूप का प्रयोग हो तो नरम आदेश समझना चाहिए, विधि के प्रयोग से कड़ा। विधि का प्रयोग 'चाहिए' अर्थ का बोध कराने के लिए भी होता है, जैसे—सः कुर्यात् (उसको करना चाहिए)।

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतनभूत का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् इस काल के रूप ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जब क्रिया आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो। जैसे—'मैं आज पढ़ने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद संस्कृत में अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा। परोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न हुआ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है तो उस दशा में परोक्षभूत का प्रयोग न होगा। जैसे—'मैं पाठशाला गया' यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ "गया" का अनुवाद परोक्षभूत के रूप से न करके किसी और के रूप से करना होगा।[1] तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं प्रयोग में लाया जा सकता है चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो अथवा बरसों पहले।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

---

1 इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होना ही नहीं क्योंकि स्वयं की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की दशा में किया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि पागल मनुष्य की क्रियाएँ समक्ष नहीं कही जातीं।

अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्रायः क़िस्से कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है; जैसे :—

कश्चिद्राजा प्रतिवसति स्म।

(७, ८) दोनों भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य-भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है; जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्वं जीव्याः शरदां शतम्। कभी कभी आशीर्वाद अथवा आकांक्षा प्रकट करने को आज्ञा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्वं जीव शरदां शतम्, जीवेम शरदां शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक

इन दस लकारों के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनेपद दोन में दिए जाते है। जो धातुएँ परस्मैपदी हैं उनमें परस्मैपद प्रत्यय, जो आत्मनेपदी हैं उनमें आत्मनेपद के प्रत्यय तथा जे उभयपदी हैं उनमें परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों के प्रत्य जुड़ते हैं। प्रत्येक लकार में तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं (देखिए नियम ४०)। हिन्दी में बहुधा क्रिया कर्तृवाच्य मे कत के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—राम जाता है, गौरी जाती है, रा गया, गौरी आई; राम जायगा, गौरी जायगी) तथा कर्मवाच में कर्म के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—मुझसे किताब नहीं पढ़ जाती, मुझ से अख़बार नहीं पढ़ा जाता आदि) बदलती है परन्तु संस्कृत में क्रिया लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलती (राम गच्छति या गौरी गच्छति ; रामोऽगच्छत् या गौरी अगच्छ रामो गमिष्यति या गौरी गमिष्यति , मया पुस्तिका न पठ्यते य मया समाचारपत्रं न पठ्यते आदि)।

१४२—लकारों के प्रत्यय इस प्रकार है—

(क) वर्तमान काल (लट्)

परस्मैपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	ति	तस्	अन्ति
म० पु०	सि	थस्	थ
उ० पु०	मि	वस्	मस्

आत्मनेपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	ते	इते	अन्ते
म० पु०	से	इथे	ध्वे
उ० पु०	इ	वहे	महे

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवे गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं:—

प्र० पु०	ते	आते	अते
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

(ख) आज्ञा (लोट्)

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु
म० पु०	तु या तात्	तम्	त
उ० पु०	आनि	आव	आम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म० पु०	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवे, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ऊपर लिखे ही प्रत्यय लगते हैं केवल म० पु० एक

वचन में 'हि' जोड़ा जाता है। इन गणों में आत्मनेपद में ये लगते हैं:—

प्र० पु०	ताम्	आताम्	अताम्
म० पु०	स्व	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

(ग) विधिलिङ्

परस्मैपद

प्र० पु०	इत्	ईताम्	इयुः
म० पु०	ईः	ईतम्	ईत
उ० पु०	ईयम्	ईव	ईम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	ईय	ईवहि	ईमहि

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ये प्रत्यय लगते हैं:—

प्र० पु०	यात्	याताम्	युः
म० पु०	याः	यातम्	यात
उ० पु०	याम्	याव	याम

(घ) अनद्यतनभूत (लङ्)

परस्मैपद

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स	तम्	त
उ० पु०	अम्	व	म

आत्मनेपद

प्र० पु०	त	इताम्	अन्त
पु०	थास्	इथाम्	ध्वम्
पु०	इ	वहि	महि

नोट - दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं
परान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं:—

पु०	त	आताम्	अत
पु०	थाम्	आथाम्	ध्वम्
पु०	इ	वहि	महि

(च) परोक्षभूत (लिट्)

परस्मैपद

आत्मनेपद

प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

नोट—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययों को जोड़ कर ब[illegible] हैं। दूसरे प्रकार के रूप धातु में कृ, भू अथवा अस् के रूप जोड़[illegible] बनते हैं, इस दशा में धातु और इन रूपों के बीच में—आम्—जोड़ दि[illegible] जाता है। जिस पद की धातु होती है उसी पद के रूप जोड़े जाते[illegible] जैसे—ईड् धातु से ईडाञ्चक्रे, ईडाम्बभूव, ईडामास आदि।

(छ) सामान्यभूत (लुङ्)

सामान्यभूत के रूप संस्कृत में सात प्रकार के होते हैं, कु[illegible] किसी गण की धातुओं में लगते हैं कुछ किसी में। इन स[illegible] प्रकार के प्रत्ययों में भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ प्रथम प्रक[illegible] के सामान्यभूत के और अनद्यतनभूत के प्रत्ययों में केवल प्र० पु[illegible] के बहुवचन में अन् के स्थान में उस् हो जाता है। दूसरे प्रकार [illegible] सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के हैं केवल अ [illegible] और प्रत्ययों के बीच में जोड़ लिया जाता है। तीसरे प्रका[illegible] भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के हैं, केवल प्रत्यय जोड़ने के पूर्व धातु [illegible] डबल (अभ्यस्त) करके अ जोड़ते हैं।

सामान्य भूत के चौथी प्रकार के प्रत्यय ये हैं:—

परस्मैपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	सीत्	स्ताम्	सुः
म० पु०	सीः	स्तम्	स्त
उ० पु०	सम्	स्व	स्म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्वि वचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
म० पु०	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं:—

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	इष्टाम्	इषुः
म० पु०	ईः	इष्टम	इष्ट
उ० पु०	इषम्	इष्व	इष्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	इष्ट	इषाताम्	इषत
म० पु०	इष्ठाः	इषाथाम्	इषध्वम्
उ० पु०	इषि	इष्वहि	इष्महि

[illegible] प्रकार के रूप केवल परस्मैपद में होते है और उसके

आत्मनेपद

प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

नोट—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययों को जोड़ कर बनते हैं। दूसरे प्रकार के रूप धातु में कृ, भू अथवा अस् के रूप जोड़कर बनाते हैं, इस दशा में धातु और इन रूपों के बीच में—आम्—जोड़ दिया जाता है। जिस पद की धातु होती है उसी पद के रूप जोड़े जाते हैं जैसे—ईड् धातु से ईडाञ्चक्रे, ईडाम्बभूव, ईडामास. आदि।

(छ) सामान्यभूत (लुङ्)

सामान्यभूत के रूप संस्कृत मे सात प्रकार के होते हैं, कुछ किसी गण की धातुओं में लगते है कुछ किसी मे। इन सात प्रकार के प्रत्ययो मे भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ प्रथम प्रकार के सामान्यभूत के और अनद्यतनभूत के प्रत्ययो में केवल प्र० पु० के बहुवचन मे अन् के स्थान मे उस् हो जाता है। दूसरी प्रकार के सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के है केवल अ धातु और प्रत्ययो के बीच में जोड़ लिया जाता है। तीसरी प्रकार के भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के है, केवल प्रत्यय जोड़ने के पूर्व धातु को डबल (अभ्यस्त) करके अ जोड़ते हैं।

सामान्य भूत के चौथी प्रकार के प्रत्यय ये हैः—

परस्मैपद

	एक वचन	द्वि वचन	वहु वचन
प्र० पु०	सीत्	स्ताम्	सुः
म० पु०	सीः	स्तम्	स्त
उ० पु०	सम्	स्व	स्म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्वि वचन	वहुवचन
प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
म० पु०	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं:—

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	इष्टाम्	इषुः
म० पु०	ईः	इष्टम	इष्ट
उ० पु०	इषम्	इष्व	इष्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	इष्ट	इषाताम्	इषत
म० पु०	इष्ठा	इषाथाम्	इषध्वम्
उ० पु०	इषि	इष्वहि	इष्महि

षष्ठ प्रकार के रूप केवल परस्मैपद में होते हैं और उसके

प्रत्यय पांचवीं प्रकार के ही हैं केवल उनके पूर्व स् और जोड़ दिया जाता है, जैसे पादि।

सातवीं प्रकार के प्रत्यय ये हैं :—

परस्मैपद

प्र० पु०	सत्	सताम्	सन्
म० पु०	सः	सतम्	सत
उ० पु०	सम्	साव	साम

आत्मनेपद

प्र० पु०	सत	साताम्	सन्त
म० पु०	सथाः	साथाम्	सध्वम्
उ० पु०	सि	सावहि	सामहि

सात प्रकार के सामान्यभूत के रूप कौन और किस धातु के होते हैं, यह प्रवेशिका व्याकरण में बताना कठिन है। गण विशेषों की मुख्य २ धातुओं के जो रूप होते हैं वे आगे दिखा दिये गये हैं।

(ज) अनद्यतनभविष्य (लुट्)

परस्मैपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तारः
म० पु०	तासि	तास्थः	तास्थ
उ० पु०	तास्मि	तास्वः	तास्मः

आत्मनेपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तारः
म० पु०	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० पु०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

धातुओं मे ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इनमें प्रथम पुरुष के रूप कर्तृवाचक ऋकारान्त दातृ आदि (५० ग) के रूप हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष में प्रथमा एकवचन में अस् (होना) के वर्तमान काल के रूप जोड़ देने से निकल सकते हैं।

(झ) सामान्य भविष्य (लृट्)

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्यति	स्यतः	स्यन्ति
म० पु०	स्यसि	स्यथः	स्यथ
उ० पु०	स्यामि	स्यावः	स्यामः

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

(ट) आशीर्लिङ्

परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यासुः
म० पु०	याः	यास्तम्	यास्त
उ० पु०	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
म० पु०	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उ० पु०	सीय	सीवहि	सीमहि

(ठ) क्रियातिपत्ति (लृङ्)

परस्मैपद

प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
म० पु०	स्यः	स्यतम्	स्यत
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ० पु०	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

नोट१—इस प्रकार ऊपर दसो लकारों के प्रत्यय दिए गए हैं। इनमें से अनद्यतनभूत, सामान्यभूत और क्रियातिपत्ति में धातु के पूर्व अ—जोड़

जाता है और परोक्षभूत में धातु द्विवल (अभ्यस्त) कर दी जाती है।
अभ्यास करने के नियम ये हैं :—

धातु के प्रथम स्वर को दो बार लाते हैं (जैसे उख् का अभ्यस्त रूप उ उख्); यदि प्रथम स्वर के पूर्व में कोई व्यंजन हो तो उस व्यंजन सहित उस स्वर को लाते है (जैसे पत् से पपत्)। यदि आरंभ में संयुक्ताक्षर हो तो संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यंजन के साथ स्वर आता है (जैसे प्रच्छ् से पप्रच्छ्), किन्तु यदि संयुक्ताक्षर के आदि में श्, ष्, स् में से कोई हो तो दूसरा अर्थात् श्, ष्, स् के बाद वाला ही व्यंजन साथ वाले स्वर के साथ आता है (जैसे स्पर्ध् से पस्पर्ध्)। अभ्यास में आने वाला अक्षर यदि पञ्चवर्गों का द्वितीय अथवा चतुर्थ हो तो क्रम से उसके स्थान पर प्रथम अथवा तृतीय आ जाते हैं (जैसे छिद् से चिच्छिद्, भुज् से बुभुज्)। कवर्गीय अक्षर का अभ्यास करना हो तो उसके जोड़ का चवर्गीय अक्षर लाना चाहिए (जैसे–कम् से चकम्, खन् = कखन् = चखन्)। इसी प्रकार ह के स्थान पर ज् (जैसे–हु से जुहु)। अभ्यास में दीर्घ स्वर का ह्रस्व (जैसे दा से ददा, नी से निनी), ऋ का अ (जैसे कृ से चकृ), ए अथवा ऐ का इ (जैसे सेव् से सिषेव्), और ओ अथवा औ का उ (जैसे गोप् से जुगोप्, ढौक् से डुढौक्) हो जाता है।

नोट २—इन लकारों में से वर्तमान, आज्ञा, विधि और अनद्यतनभूत इनको सार्वधातुक कहते हैं और शेष छः को आर्धधातुक। सार्वधातुक लकारों के प्रत्यय लगने के पूर्व धातुओं में प्रत्येक गण में अलग अलग कुछ

विकार कर दिया जाता है—कभी २ धातु के रूप में कुछ परिवर्तन हो जा
है (जैसे गम् धातु का गच्छ् हो जाता है, प्रच्छ् का पृच्छ्) । आर्धधातु
में यह विकार नहीं किया जाता (जैसे—गम् से सामान्यभूत में अग
आदि, प्रच्छ् से अप्राक्षीत् आदि) ।

इस सोपान में केवल कर्तृवाच्य के रूप दिये जारहे
अन्य वाच्यों का विचार अगले सोपान में किया जायगा ।

भ्वादिगण

१४३—भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, इस लिए इस गण का यह नाम पड़ा । दसों गणों में यह प्रमुख है । धातुपाठ में इसकी १०३५ धातुएँ गिनाई गई हैं, इस हिसाब से जितनी और नौ गणों की धातुएँ मिलाकर हैं उन से कहीं अधिक इस एक गण में हैं । संज्ञाओं में जो महत्व अकारान्त शब्दों का है वही क्रिया में भ्वादिगण का है ।

इस गण की धातुओं के अनन्तर (प्रत्यय लगने के पूर्व) शप् (अ) जोड़ दिया जाता है तथा धातु की उपधा का ह्रस्व स्वर अथवा धातु का अन्तिम स्वर गुणसन्धि (८) को प्राप्त होता है , जैसे—भू धातु में वर्तमान के प्रत्यय जोड़ने हों तो भू+शप् (अ)+ति=भ्+ऊ+अ+ति=भ्+ओ (गुण) +अ+ति=भ्+अव्+अ+ति=भवति, रूप प्रथम पुरुष के एक वचन में बनेगा । इसी प्रकार जि+शप्+ति=जि+अ+ति=ज्+इ+अ

+ति=ज्+ए+अ+ति=ज्+अय्+अ + ति=जयति, इसी प्रकार नयति आदि। उपधाभूत ह्रस्वस्वर का गुण, जैसे—बुध्+शप्+ति=ब्+उ+ध्+ अ+ति=ब्+ओ +ध्+अ + ति= बोधति। जिन धातुओं की उपधा में अथवा अन्त में अ होगा उन में गुणसन्धि करने से भी अ ही रहता है, यह नियम ८ से स्पष्ट ही है।

१४४—परस्मैपदी भू—होना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म० पु०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितारः
म० पु०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म० पु०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

१४५—भ्वादिगण की अन्य धातुओं के रूप—

परस्मैपदी, गम्—जाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यम पुरुष	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तम पुरुष	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गच्छतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गच्छेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगच्छत्

परोक्षभूत—लिट्

प्रथम पुरुष	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः

मध्यम पुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म
उत्तम पुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्रथम पुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
मध्यम पुरुष	अगमः	अगमतम्	अगमत
उत्तम पुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्रथम पुरुष	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
मध्यम पुरुष	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
उत्तम पुरुष	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्रथम पुरुष	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः
मध्यम पुरुष	गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उत्तम पुरुष	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्रथम पुरुष	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
मध्यम पुरुष	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उत्तम पुरुष	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

परस्मैपदी—गै—गाना[1]

लट्

प्र० पु०	गायति	गायतः	गायन्ति
म० पु०	गायसि	गायथः	गायथ
उ० पु०	गायामि	गायाव	गायामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गायतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गायेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगायत्

लिट्

प्र० पु०	जगौ	जगतुः	जगुः
म० पु०	जगिथ, जगाथ	जगतुः	जग
उ० पु०	जगौ	जगिव	जगिम

लुङ्

प्र० पु०	अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषुः
म० पु०	अगासीः	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
उ० पु०	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म

लुट्

प्र० पु०	गाता	गातारौ	गातारः

---

१ क्षै (प०, क्षीण होना), ध्यै (प०, ध्यान करना), म्लै (प०, मुरझाना) के रूप गै की तरह होते हैं।

म० पु०	गातासि	गातास्थः	गातास्थ
उ० पु०	गातास्मि	गातास्वः	गातास्मः

लृट्

प्र० पु०	गास्यति	गास्यतः	गास्यन्ति
म० पु०	गास्यसि	गास्यथः	गास्यथ
उ० पु०	गास्यामि	गास्यावः	गास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासु
म० पु०	गेयाः	गेयास्तम्	गेयास्त
उ० पु०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म

लृङ्—अगास्यत्।

परस्मैपदी

जि—जीतना

लट्

प्र० पु०	जयति	जयतः	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथः	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयावः	जयामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	जयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	जयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अजयत्

लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
म० पु०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

लुङ्

प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
म० पु०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० पु०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

लुट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतारः
म० पु०	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः

लृट्

प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

आशी०

प्र० पु०	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः
म० पु०	जीयाः	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

लृङ्

प्र० पु०	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
म० पु०	अजेष्यः	अजेष्यतम्	अजेष्यत
उ० पु०	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम

परस्मैपदी

दृश्—देखना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पश्यतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पश्येत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अपश्यत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
म० पु०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदर्शत् / अद्राक्षीत्	अदर्शताम् / अद्राष्टाम्	अदर्शन् / अद्राक्षुः

म० पु०	अदर्शः / अद्राक्षीः	अदर्शतम् / अद्राष्टम्	अदर्शत / अद्राष्ट
उ० पु०	अदर्शम् / अद्राक्षम्	अदर्शाव / अद्राक्ष्व	अदर्शाम / अद्राक्ष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
म० पु०	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
उ० पु०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
म० पु०	दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
उ० पु०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म० पु०	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ० पु०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

उभयपदी धृ[1]—धरना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	धरति	धरतः	धरन्ति
म० पु०	धरसि	धरथः	धरथ
उ० पु०	धरामि	धरावः	धरामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अधरत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधार	दध्रतुः	दध्रुः
म० पु०	दधर्थ	दध्रथुः	दध्र
उ० पु०	दधार, दधर	दध्रिव	दध्रिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधार्षीत्	अधार्ष्टाम्	अधार्षुः
म० पु०	अधार्षीः	अधार्ष्टम्	अधार्ष्ट
उ० पु०	अधार्षम्	अधार्ष्व	अधार्ष्म

---

1 तृ (उ०, पार करना), भृ (उ०, भरण पोषण करना), सृ० (प०, चलना,), स्मृ (प०, स्मरण करना), हृ (उ०, हरण करना) के रूप धृ के समान होते हैं।

लुट्	प्र० पु०	धर्ता	धर्तारौ
लृट्	प्र० पु०	धरिष्यति	धरिष्यतः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ध्रियात्	ध्रियास्ताम्	ध्रियासुः
म० पु०	ध्रियाः	ध्रियास्तम्	ध्रियास्त
उ० पु०	ध्रियासम्	ध्रियास्व	ध्रियास्म

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	धरते	धरेते	धरन्ते
म० पु०	धरसे	धरेथे	धरध्वे
उ० पु०	धरे	धरावहे	धरामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अधरत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दध्रे	दध्राते	दध्रिरे
म० पु०	दध्रिषे	दध्राथे	दध्रिढ्वे
उ० पु०	दध्रे	दध्रिवहे	दध्रिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधृत	अधृषाताम्	अधृषत
म० पु०	अधृथाः	अधृषाथाम्	अधृढ्वम्
उ० पु०	अधृषि	अधृष्वहि	अधृष्महि

लुट्—धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः । धर्तासे	धर्तासाथे ।
लृट्—			धरिष्यते
आशी०—			धृषीष्ट

उभयपदी नी (नय्)—ले जाना ।

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयति	नयतः	नयन्ति
म० पु०	नयसि	नयथः	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयावः	नयामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयतु, नयतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निनाय	निन्यतु	निन्यु:
म० पु०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य
उ० पु०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु
म० पु०	अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासि	नेतास्थः	नेतास्थ
उ० पु०	नेतास्मि	नेतास्वः	नेतास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्याव	नेष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः
म० पु०	नीयाः	नीयास्तम्	नीयास्त
उ० पु०	नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
म० पु०	अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उ० पु०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयते	नयेते	नयन्ते
म० पु०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उ० पु०	नये	नयावहे	नयामहे

लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिढ्वे,-
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म० पु०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
उ० पु०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्

म० पु०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथा	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

परस्मैपदी

पठ्—पढ़ना

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथ	पठथ
उ० पु०	पठामि	पठाव.	पठामः
लोट्	प्र० पु०		पठतु, पठतात्

विधिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
म० पु०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषु
म० पु०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	पठिता	पठितारौ	पठितार
म० पु०	पठितासि	पठितास्थः	पठितास
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्‍

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यत	पठिष्य
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्य
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्या

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
म० पु०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
उ० पु०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
म० पु०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
उ० पु०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

परस्मैपदी

पा—(पिव्)—पीना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	पिवति	पिवतः	पिवन्ति
म० पु०	पिवसि	पिवथः	पिवथ
उ० पु०	पिवामि	पिवावः	पिवामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पिवतु, पिवतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पिवेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अपिवत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पपौ	पपतुः	पपुः
म० पु०	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
उ० पु०	पपौ	पपिव	पपिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अपात्	अपाताम्	अपुः
म० पु०	अपाः	अपातम्	अपात
उ० पु०	अपाम्	अपाव	अपाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातारः
म० पु०	पातासि	पातास्थः	पातास्थ
उ० पु०	पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
म० पु०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उ० पु०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः
म० पु०	पेयाः	पेयास्तम्	पेयास्त
उ० पु०	पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
म० पु०	अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
उ० पु०	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

आत्मनेपदी

लभ् – पाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते

म० पु०	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	लेभे	लेभाते	लेभिरे
म० पु०	लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे
उ० पु०	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
म० पु०	अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
उ० पु०	अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
म० पु०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उ० पु०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्
म० पु०	लप्सीष्ठाः	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्
उ० पु०	लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० पु०	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० पु०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

आत्मनेपदी

वृत्—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
म० पु०	वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
उ० पु०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

लोट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	वर्तेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अवर्तत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ववृते	ववृताते	ववृतिरे
म० पु०	ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे
उ० पु०	ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे

सामान्यभूत—लुङ्[1]

प्र० पु०	अवर्तिष्ट / अवृतत	अवर्तिषाताम् / अवृतताम्	अवर्तिषत / अवृतन्
म० पु०	अवर्तिष्ठाः / अवृतः	अवर्तिषाथाम् / अवृततम्	अवर्तिध्वम्-ढ्वम् / अवृतत
उ० पु०	अवर्तिषि / अवृतम्	अवर्तिष्वहि / अवृताव	अवर्तिष्महि / अवृताम
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तिता

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
उ० पु०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

अथवा

प्र० पु०	वर्त्स्यति	वर्त्स्यतः	वर्त्स्यन्ति
म० पु०	वर्त्स्यसि	वर्त्स्यथः	वर्त्स्यथ

[1] लुङ्, लृट् तथा लृङ् में यह परस्मैपदी भी हो जाती है।

उ० पु०	वर्त्स्यामि	वर्त्स्यावः	वर्त्स्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्	वर्तिषीरन्
म० पु०	वर्तिषीष्ठाः	वर्तिषीयास्थाम्	वर्तिषीध्वम्
उ० पु०	वर्तिषीय	वर्तिषीवहि	वर्तिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
म० पु०	अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
उ० पु०	अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अवर्त्स्यत्	अवर्त्स्यताम्	अवर्त्स्यन्
म० पु०	अवर्त्स्यः	अवर्त्स्यतम्	अवर्त्स्यत
उ० पु०	अवर्त्स्यम्	अवर्त्स्याव	अवर्त्स्याम

उभयपदी

श्रि—सहारा लेना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	श्रयति	श्रयतः	श्रयन्ति
म० पु०	श्रयसि	श्रयथः	श्रयथ
उ० पु०	श्रयामि	श्रयावः	श्रयामः

लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत्

लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्राय	शिश्रियतुः	शिश्रियु
म० पु०	शिश्रयिथ	शिश्रियथुः	शिश्रिय
उ० पु०	शिश्राय, शिश्रय	शिश्रियिव	शिश्रियिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
म० पु०	अशिश्रिय	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
उ० पु०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव	अशिश्रियाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
म० पु०	श्रयितासि	श्रयितास्थः	श्रयितास्थ
उ० पु०	श्रयितास्मि	श्रयितास्वः	श्रयितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	श्रयिष्यति	श्रयिष्यतः	श्रयिष्यन्ति
म० पु०	श्रयिष्यसि	श्रयिष्यथः	श्रयिष्यथ
उ० पु०	श्रयिष्यामि	श्रयिष्यावः	श्रयिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्रीयात	श्रीयास्ताम्	श्रीयासुः
म० पु०	श्रीया	श्रीयास्तम्	श्रीयास्त
उ० पु०	श्रीयासम्	श्रीयास्व	श्रीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्
म० पु०	अश्रयिष्यः	अश्रयिष्यतम्	अश्रयिष्यत
उ० पु०	अश्रयिष्यम्	अश्रयिष्याव	अश्रयिष्या

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते
म० पु०	श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे
उ० पु०	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयताम्
लिङ्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे
म० पु०	शिश्रियिषे	शिश्रियाथे	शिश्रियिध्वे,-
उ० पु०	शिश्रिये	शिश्रियिवहे	शिश्रियिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
म० पु०	अशिश्रियथाः	अशिश्रियेथाम्	अशिश्रियध
उ० पु०	अशिश्रिये	अशिश्रियावहि	अशिश्रिया

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
म० पु०	श्रयितासे	श्रयितासाथे	श्रयिताध्वे
उ० पु०	श्रयिताहे	श्रयितास्वहे	श्रयितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते
म० पु०	श्रयिष्यसे	श्रयिष्येथे	श्रयिष्यध्वे
उ० पु०	श्रयिष्ये	श्रयिष्यावहे	श्रयिष्यामहे
आशी०	प्र० पु०	एकवचन	श्रयिषीष्ट
लृङ्	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयिष्यत

परस्मैपदी

श्रु—सुनना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुवः, शृण्वः	शृणुमः, शृण्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
म० पु०	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म
लुट् —	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः
लृट् —	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
आशी०—	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः
लृङ् —	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्

परस्मैपदी

स्था—ठहरना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठतु, तिष्ठतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अतिष्ठत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
म० पु०	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
म० पु०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
म० पु०	स्थातासि	स्थातास्थः	स्थातास्थ
उ० पु०	स्थातास्मि	स्थातास्वः	स्थातास्मः

सामान्यभविष्य - लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
म० पु०	स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्य
म० पु०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्य
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्म

१४६–भ्वादिगण की मुख्य धातुओं की सूची और रूपो दिग्दर्शन—

क्रन्द् (प०)—रोना। क्रन्दति । लिट्—चक्रन्द चक्रन्दतुः चक्रन् चक्रन्दिथ। लुङ्—अक्रन्दीत् अक्रन्दिष्टाम् अक्रन्दिषुः। अक्र अक्रन्दिष्टम् अक्रन्दिष्ट। अक्रन्दिषम् अक्रन्दिष्व अक्रन्दिष लुट्—क्रन्दिता । लृट्—क्रन्दिष्यति । आशी०—क्रन्द्यात् लृङ्—अक्रन्दिष्यत्।

क्रीड् (प०)—खेलना । क्रीडति । लोट्—क्रीडतु । विधि—क्रीडेत्। लङ्—अक्रीडत् अक्रीडताम् अक्रीडन्। लिट्—चिक्रीड चिक्री

डनुः । चिक्रीडु । चिक्रीडिथ चिक्रीडथुः चिक्रीड । चिक्रीड चिक्रीडिव चिक्रीडिम । लुङ्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम् अक्रीडिषुः । अक्रीडीः अक्रीडिष्टम् अक्रीडिष्ट । अक्रीडिषम् अक्रीडिष्व अक्रीडिष्म । लुट्—क्रीडिता । लृट्—क्रीडिष्यति । आशी०—क्रीड्यात् । लृङ्—अक्रीडिष्यत् ।

क्रुश् (प०)—चिल्लाना, रोना । लट्—क्रोशति । लोट्—क्रोशतु । विधि—क्रोशेत् । लङ्—अक्रोशत् । लिट्—चुक्रोश, चुक्रुशतुः, चुक्रुशुः । चुक्रोशिथ चुक्रुशथुः चुक्रुश । चुक्रोश चुक्रुशिव चुक्रुशिम । लुङ्—अक्रुशत् अक्रुशताम् अक्रुशन् । अक्रुशः अक्रुशतम् अक्रुशत । अक्रुशम् अक्रुशाव अक्रुशाम । लुट्—क्रोष्टा । लृट्—क्रोक्ष्यति । आशी०—क्रुश्यात् । लृङ्—अक्रोक्ष्यत् ।

क्रम्[1] (प०) —क्रामति । लिट्—चक्राम चक्रमतुः चक्रमुः । चक्रमिथ चक्रमथुः चक्रम । चक्राम चक्रम चक्रमिव चक्रमिम । लुङ्—अक्रमीत् अक्रमिष्टाम् अक्रमिषुः । लुट्—क्रमिता । लृट्—क्रमिष्यति । आशी०—क्रम्यात् ।

क्षम्[2] (आ०)—क्षमा करना । क्षमते क्षमेते क्षमन्ते ।

लिट्—चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे
{ चक्षमिषे { चक्षंसे	चक्षमाथे	{ चक्षमिध्वे { चक्षन्ध्वे

१ यह दिवादि गण में भी है। वहाँ इसका रूप क्राम्यति इत्यादि होगा। २ यह भी दिवादि में होती है, क्षाम्यति इत्यादि।

उत्तमे	चचमिवहे	चचमिमहे
	चचामवहे	चचामहे

कम्प् (आ०)—काँपना । लट्—कम्पते कम्पेते कम्पन्ते । लोट्—कम्पताम् कम्पेताम् कम्पन्ताम् । कम्पस्व । विधि–कम्पेत कम्पेयाताम् कम्पेरन् । लङ्—अकम्पत अकम्पेताम् अकम्पन्त । अकम्पथाः अकम्पेथाम् अकम्पध्वम् । अकम्पे अकम्पावहि अकम्पामहि । लिट्—चकम्पे चकम्पाते चकम्पिरे । चकम्पिषे चकम्पाथे चकम्पिध्वे । चकम्पे चकम्पिवहे चकम्पिमहे । लुङ् अकम्पिष्ट अकम्पिषाताम् अकम्पिषत । अकम्पिष्ठाः अकम्पिषाथाम् अकम्पिध्वम् । अकम्पिषि अकम्पिष्वहि अकम्पिष्महि । लुट्—कम्पिता कम्पितारौ कम्पितारः । कम्पितासे कम्पितासाथे कम्पिताध्वे । कम्पिताहे कम्पितास्वहे कम्पितास्महे । लृट्—कम्पिष्यते कम्पिष्येते कम्पिष्यन्ते । कम्पिष्यसे कम्पिष्येथे कम्पिष्यध्वे । कम्पिष्ये कम्पिष्यावहे कम्पिष्यामहे । आशी०—कम्पिषीष्ट कम्पिषीयास्ताम् कम्पिषीरन् । लृङ्—अकम्पिष्यत अकम्पिष्येताम् अकम्पिष्यन्त ।

काङ्क्ष् (प०)—इच्छा करना । लट्—काङ्क्षति । लोट्—काङ्क्षतु । विधि—काङ्क्षेत् । लङ्—अकांक्षत् । लिट्—चकाङ्क्ष । चकाङ्क्षतुः चकाङ्क्षुः । चकाङ्क्षिथ चकाङ्क्षथु चकाङ्क्ष । चकाङ्क्ष चकाङ्क्षिव चकाङ्क्षिम । लुङ्—अकाङ्क्षीत् अकाङ्क्षिष्टाम् अकाङ्क्षिषु । अकाङ्क्षीः अकाङ्क्षिष्टम् अकाङ्क्षिष्ट । अकाङ्क्षिषम् अकाङ्क्षिष्व अकाङ्क्षिष्म । लुट्—काङ्क्षिता । लृट्—काङ्क्षिष्यति । आशी०—काङ्क्ष्यात् । लृङ्—अकाङ्क्षिष्यत् ।

काश् (आ०)—चमकना। लट्—काशते काशेते काशन्ते। लिट्—चकाशे चकाशाते चकाशिरे। चकाशिषे चकाशाथे चकाशिध्वे। चकाशे चकाशिवहे चकाशिमहे। लुङ्—अकाशिष्ट अकाशिषाताम् अकाशिषत। अकाशिष्ठा अकाशिषाथाम् अकाशिध्वम्। अकाशिषि अकाशिष्वहि अकाशिष्महि। लुट्—काशिता। लृट्—काशिष्यते। आशी०—काशिषीष्ट। लृङ्—अकाशिष्यत।

खन् (उ०)-खनना। लट्—खनति, खनते। लिट्—चखान चख्नतु चख्नुः। चखनिथ चख्नथु चख्न। चखान-चखन चख्निव चख्निम। चख्ने चख्नाते चख्निरे चख्निषे चख्नाथे चख्निध्वे। चख्ने चख्निवहे चख्निमहे। लुङ्—अखनीत् अखनिष्टाम् अखनिषु. अखानीत् अखानिष्टाम् अखानिषुः। अखनिष्ट अखनिषाताम् अखनिषत। लुट्—खनिता। लृट्—खनिष्यति खनिष्यते। आशी०—खन्यात् खायात्, खनिषीष्ट।

ग्लै (प०)—क्षीण होना। ग्लायति ग्लायत ग्लायन्ति। लिट्—जग्लौ जग्लतुः जग्लुः। जग्लिथ जग्लाथ जग्लथुः जग्ल। जग्लौ जग्लिव जग्लिम। लुङ्—अग्लासीत्। लुट्—ग्लाता। लृट्—ग्लास्यति। आशी०—ग्लायात् ग्लेयात्।

चल् (प०)—चलना। चलति चलत चलन्ति। लिट्—चचाल चेलतुः चेलुः। चेलिथ चेलथु. चेल। चचाल चचल चेलिव चेलिम। लुङ्—अचालीत्। लुट—चलिता। लृट्—चलिष्यति। आशी०—चल्यात्। लृङ्—अचलिष्यत्।

ज्वल (प०)—जलना । ज्वलति । लिट्—जज्वाल जज्वलतुः जज्वलुः। जज्वलिथ जज्वलथुः जज्वल । जज्वाल जज्वल जज्वलिव जज्वलिम । लुङ्—अज्वालीत् अज्वालिष्टाम् अज्वालिषुः। लुट्—ज्वलिता। लृट्—ज्वलिष्यति । आशी० – ज्वल्यात् ।

डी[1] (आ०)—उड़ना । डयते डयेते डयन्ते । लिट्—डिड्ये डिड्याते डिड्यिरे । लुङ्—अडयिष्ट अडयिषाताम् अडयिषत । लुट्—डयिता । लृट्—डयिष्यते । आशी०—डयिषीष्ट ।

त्यज् (प०)—छोड़ना । त्यजति त्यजतः त्यजन्ति । लिट्—तत्याज तत्यजतुः तत्यजुः । तत्यजिथ तत्यक्थ तत्यजथुः तत्यज । तत्याज तत्यज तत्यजिव तत्यजिम । लुङ्—अत्याक्षीत् अत्याक्ताम् अत्याक्षुः। अत्याक्षीः अत्याक्तम् अत्याक्त । अत्याक्षम् अत्याक्ष्व अत्याक्ष्म लुट्—त्यक्ता त्यक्तारौ । लृट्—त्यक्ष्यति त्यक्ष्यतः त्यक्ष्यन्ति आशी०—त्यज्यात् ।

दह् (प०)—जलाना । दहति दहतः दहन्ति । लिट्—ददाह देहतुः देहुः देहिथ-ददग्ध देहथुः देह । ददाह-ददह देहिव देहिम । लुङ्—अधाक्षीत् अदाग्धाम् अधाक्षुः । अधाक्षीः अदाग्धम् अदाग्ध अधाक्षम् अधाक्ष्व अधाक्ष्म । लुट्—दग्धा दग्धारौ दग्धारः लृट्—धक्ष्यति धक्ष्यतः धक्ष्यन्ति । आशी०—दह्यात् ।

---

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर इसके रूप डीयते डीयेते डीयन्ते चलते हैं ।

ड़ (उ०)—इसका रूप पहिले लिखा जा चुका है।

ध्यै (प०)—ध्यान करना। ध्यायति ध्यायतः ध्यायन्ति। लिट्—दध्यौ दध्यतु दध्युः। दध्यिथ-दध्याथ दध्यथु, दध्य · दध्यौ दध्यिव दध्यिम। लुङ्—अध्यासीत् अध्यासिष्टाम् अध्यासिषुः। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यति।

पच (उ०)—पकाना या पचाना। पचति पचते।

लिट्—परस्मैपद

प्र० पु०	पपाच	पेचतुः	पेचुः
म० पु०	पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच
उ० पु०	पपाच-पपच	पेचिव	पेचिम

लिट्—आत्मनेपद

प्र० पु०	पेचे	पेचाते	पेचिरे
म० पु०	पेचिषे	पेचाथे	पेचिध्वे
उ० पु०	पेचे	पेचिवहे	पेचिमहे

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अपाक्षीत	अपाक्ताम्	अपाक्षुः
म० पु०	अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त
उ० पु०	अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत

म० पु०	अपक्था	अपक्थाथाम्	अपग्ध्वम्
उ० पु०	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि

लुट्—पक्ता पक्तारौ पक्तार । लृट्—पक्ष्यति, पक्ष्यते । आशी०—पच्यात्, पक्षीष्ट । लृङ्—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत ।

पत् (प०)—गिरना । पतति । लिट्—पपात पेततुः पेतुः ।

लुङ्

प्र० पु०	अपप्तत्	अपप्तताम्	अपप्तन्
म० पु०	अपप्तः	अपप्ततम्	अपप्तत
उ० पु०	अपप्तम्	अपप्ताव	अपप्ताम

लुट्—पतिता । लृट्—पतिष्यति ।

फल् (प०)—फलना । फलति । लिट्—पफाल फेलतुः फेलुः । फेलिथ । लुङ्—अफालीत् अफालिष्टाम् । लुट्—फलिता । लृट्—फलिष्यति ।

फुल्ल् (प०)—फूलना । फुल्लति । लिट्—पुफुल्ल पुफुल्लतुः पुफुल्लुः । लुङ्—अफुल्लीत् अफुल्लिष्टाम् । लुट्—फुल्लिता । लृट्—फुल्लिष्यति ।

बाध् (आ०)—पीडा देना । बाधते । लिट्—बबाधे बबाधाते बबाधिरे । लुङ्—अबाधिष्ट अबाधिषाताम् अबाधिषत । लुट्—बाधिता । लृट्—बाधिष्यते ।

बुध (उ०)—जानना। बोधति, बोधते। लिट्—बुबोध बुबुधे। लुङ्—अबुधत् अबुधताम् अबुधन्। अबोधीत् अबोधिष्टाम् अबोधिषुः। अबोधिष्ट अबोधिषाताम् अबोधिषत। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यति, बोधिष्यते। आशी०—बुध्यात्, बोधिषीष्ट।

भज् (उ०)—सेवा करना। भजति भजते। लिट्—बभाज भेजतुः भेजुः। भेजिथ बभक्थ भेजथुः भेज। बभाज बभज भेजिव भेजिम। भेजे भेजाते भेजिरे। भेजिषे भेजाथे भेजिध्वे। भेजे भेजिवहे भेजिमहे। लुङ्—अभाक्षीत् अभाक्ताम् अभाक्षुः। अभाक्षीः अभाक्तम् अभाक्त। अभाक्षम् अभाक्ष्व अभाक्ष्म। अभक्त अभक्षाताम् अभक्षत। अभक्थाः अभक्षाथाम्। अभग्ध्वम्। अभक्षि अभक्ष्वहि अभक्ष्महि। लुट्—भक्ता। लृट्—भक्ष्यति भक्ष्यते। आशी०—भज्यात् भक्षीष्ट

भाष (आ०)—बोलना। भाषते भाषेते भाषन्ते। लिट्—बभाषे बभाषाते बभाषिरे। बभाषिषे बभाषाथे बभाषिध्वे। बभाषे बभाषिवहे बभाषिमहे। लुङ्—अभाषिष्ट अभाषिषाताम् अभाषिषत। अभाषिष्ठाः अभाषिषाथाम् अभाषिध्वम्। अभाषिषि अभाषिष्वहि अभाषिष्महि। लुट्—भाषिता। लृट्—भाषिष्यते। आशी०—भाषिषीष्ट।

[illegible] दिवादिगण की है। वहाँ यह आत्मनेपद होती है और बुध्यते [illegible]।

भिक्ष् (आ०)—भीख माँगना। भिक्षते। लिट्—बिभिक्षे बिभिक्षाते बिभिक्षिरे। बिभिक्षिषे बिभिक्षाथे बिभिक्षिध्वे। बिभिक्षे बिभिक्षिवहे बिभिक्षिमहे। लुङ्—अभिक्षिष्ट अभिक्षिषाताम् अभिक्षिषत। लुट्—भिक्षिता। लृट्—भिक्षिष्यते। आशी०—भिक्षिषीष्ट।

भूष्[1] (प०)—सजाना। भूषति। लिट्—बुभूष बुभूषतुः बुभूषु। लुङ्—अभूषीत् अभूषिष्टाम् अभूषिषुः। लुट्—भूषिता। लृट्—भूषिष्यति। आशी०—भूष्यात् भूष्यास्ताम् भूष्यासु:।

भृ[2] (उ०)—भरना या पालना पोसना। भरति भरते। लिट्—बभार बभ्रतुः बभ्रुः। बभर्थ बभ्रथुः बभ्र। बभार-बभर बभृव बभृम बभ्रे बभ्राते बभ्रिरे। बभृषे बभ्राथे बभृध्वे। बभ्रे बभृवहे बभृमहे लुङ्—अभार्षीत् अभार्ष्टाम् अभार्षु:। अभार्षी: अभार्ष्टम् अभार्ष्ट अभार्षम् अभार्ष्व अभार्ष्म। अभृत अभृषाताम् अभृषत अभृथा: अभृषाथाम् अभृढ्वम्। अभृषि अभृष्वहि अभृष्महि लुट्—भर्ता। लृट्—भरिष्यति भरिष्यते। आशी०—भ्रियात् भृषीष्ट।

---

१ यह धातु चुरादिगणी भी है। वहाँ यह उभयपदी है। भूषयति, भूषयते रूप होते हैं।

२ यह धातु जुहोत्यादिगणी भी है, वहाँ इसके रूप बिभर्ति, बिभृतः बिभ्रति, इत्यादि होते हैं।

—(आ०)—गिरना । भ्रशते । लिट—बभ्रशे । लुङ्—अभ्रशत्
अभ्रशताम् अभ्रशन् तथा अभ्रंशिष्ट अभ्रंशिषाताम् अभ्रंशिषत ।
लुट्—भ्रंशिता । लृट्—भ्रंशिष्यते । आशी०—भ्रंशिषीष्ट ।
(१) यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह परस्मैपदी होती है (भ्रश्यति)
(२) भ्वादिगण में लुङ् लकार में इसके रूप परस्मैपद तथा
मनेपद दोनों में चलते हैं ।

(प०)—भ्रमण करना । भ्रमति । लिट्—बभ्राम भ्रेमतुः भ्रेमुः ।
भ्रेमिथ भ्रेमथुः भ्रेम । बभ्राम-बभ्रम भ्रेमिव भ्रेमिम तथा बभ्राम
बभ्रमतुः बभ्रमु. । बभ्रमिथ बभ्रमथुः बभ्रम । बभ्राम-बभ्रम
बभ्रमिव बभ्रमिम । लुङ्—अभ्रमीत् । लुट्—भ्रमिता । लृट्—
भ्रमिष्यति । आशी०—भ्रम्यात् ।

(आ०)—गिरना । भ्रशते । लिट्—बभ्रशे । लुङ्—अभ्रशत, अभ्र-
शिष्ट । लुट—भ्रशिता । लृट्—भ्रशिष्यते । आशी०—भ्रशिषीष्ट ।

(प०)—मथना । मथति । लिट्—ममाथ । लुङ्—अमथीत् । लुट्—
मथिता । लृट्—मथिष्यति । आशी०—मथ्यात् ।

(प०) –मथना । मन्थति । लिट्—ममन्थ । लुङ्—अमन्थीत् ।
लुट—मन्थिता । लृट्—मन्थिष्यति । आशी० मथ्यात् ।

---

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर लट्, लोट्, विधि, लङ् तथा
[illegible] पद जाता है ।

२ यह क्र्यादिगणी भी है । वहाँ मथ्नाति, मथ्नीति, मथ्नन्ति इत्यादि
[illegible] होते हैं ।

[illegible] प्र०—६६

मुद् (आ०)—प्रसन्न होना। मोदते। लिट्—मुमुदे। लुङ्—अमोदिष्ट
लुट्—मोदिता। लृट्—मोदिष्यते। आशी०—मोदिषीष्ट।

यज्—(उ०)—यज्ञ करना, देवता की पूजा करना, संग करना या देना
यजति, यजते।

लिट्—इयाज	ईजतुः	ईजुः
इयजिथ / इयष्ठ	ईजथुः	ईज
इयाज / इयज	ईजिव	ईजिम
ईजे	ईजाते	ईजिरे
ईजिषे	ईजाथे	ईजिध्वे
ईजे	ईजिवहे	ईजिमहे

लुङ्—परस्मैपद

अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्षुः
अयाक्षीः	अयाष्टम्	अयाष्ट
अयाक्षम्	अयाक्ष्व	अयाक्ष्म

लुङ्—आत्मनेपद

अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत

लुट्—यष्टा यष्टारौ यष्टारः। लृट्—यक्ष्यति यक्ष्यते। आशी०—
इज्यात्, यक्षीष्ट।

यत् (आ०)—प्रयत्न करना। यतते। लिट्—येते येताते येतिरे। येति

येताथे येतिध्वे। येते येतिवहे येतिमहे। लुङ्—अयतिष्ट अयतिषाताम् अयतिषत। अयतिष्ठाः अयतिषाथाम् अयतिध्वम्। अयतिषि अयतिष्वहि अयतिष्महि। लुट्—यतिता। लृट्—यतिष्यते। आशी०—यतिषीष्ट।

याच् (उ०)—माँगना। याचति याचते। लिट्—ययाच ययाचतुः ययाचुः। ययाचिथ ययाचथुः ययाच। ययाच ययाचिव ययाचिम। ययाचे ययाचाते ययाचिरे। ययाचिषे ययाचाथे ययाचिध्वे। ययाचे ययाचिवहे ययाचिमहे। लुङ्—अयाचीत् अयाचिष्ट। लुट्—याचिता। लृट्—याचिष्यति याचिष्यते। आशी०—याच्यात्, याचिषीष्ट।

रभ (आ०)—शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाज़ी में काम करना। रभते। लिट्—रेभे रेभाते रेभिरे। रेभिषे रेभाथे रेभिध्वे। रेभे रेभिवहे रेभिमहे। लुङ्—अरब्ध अरप्साताम् अरप्सत। अरब्धाः अरप्साथाम् अरब्ध्वम्। अरप्सि अरप्स्वहि अरप्स्महि। लुट्—रब्धा रब्धारौ रब्धारः। लृट्—रप्स्यते। आशी०—रप्सीष्ट। लृङ्—अरप्स्यत।

रम् (आ०)—खेलना, हर्षित होना। रमते रमेते रमन्ते। लिट्—रेमे रेमाते रेमिरे। लुङ्—अरंस्त अरंसाताम् अरंसत। अरंस्थाः अरंसाथाम् अरंध्वम्। अरंसि अरंस्वहि अरंस्महि। लुट्—रन्ता रन्तारौ। लृट्—रंस्यते। लृङ्—अरंस्यत।

रुह् (प०)—उत्पन्न करना, उगना। रोहति रोहतः रोहन्ति। लिट्—रुरोह रुरुहतुः रुरुहुः। रुरोहिथ रुरुहथुः रुरुह। रुरोह रुरुहिव रुरुहिम।

लुङ्—अरुहत् अरुहताम् अरुहन्। अरुहः अरुहतम् अरुहत अरुहम् अरुहाव अरुहाम।

वद् (प०) –कहना। वदति।

लिट्

प्र० पु०	उवाद	ऊदतु	ऊदु
म० पु०	उवदिथ	ऊदथुः	ऊद
उ० पु०	उवाद उवाद	ऊदिव	ऊदिम

लुङ्

प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
म० पु०	अवादी	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

लुट्—वदिता। लृट्—वदिष्यति। आशी०—उद्यात्।

वन्द् (आ०)—नमस्कार करना या स्तुति करना। वन्दते वन्देते वन्दन्ते। लिट्—ववन्दे ववन्दाते ववन्दिरे। लुङ्—अवन्दिष्ट अवन्दिषाताम् अवन्दिषत। लुट्—वन्दिता। लृट्—वन्दिष्यते। आशी०—वन्दिषीष्ट।

वप् (उ०)—बोना, छितराना, कपड़ा बुनना, बाल बनाना। वपति वपते।

लिट्—परस्मैपद

प्र० पु०	उवाप	ऊपतुः	ऊपुः
म० पु०	उवपिथ-उवप्थ	ऊपथुः	ऊप

उ० पु०	उवाप-उवप	ऊपिव	ऊपिम

लिट्—आत्मनेपद

प्र० पु०	ऊपे	ऊपाते	ऊपिरे
म० पु०	ऊपिषे	ऊपाथे	ऊपिध्वे
उ० पु०	ऊपे	ऊपिवहे	ऊपिमहे

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अवाप्सीत्	अवाप्ताम्	अवाप्सुः
म० पु०	अवाप्सीः	अवाप्तम्	अवाप्त
उ० पु०	अवाप्सम्	अवाप्स्व	अवाप्स्म

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अवप्त	अवप्साताम्	अवप्सत
म० पु०	अवप्थाः	अवप्साथाम्	अवब्ध्वम्
उ० पु०	अवप्सि	अवप्स्वहि	अवप्स्महि

लुट्—वप्ता वप्तारौ वप्तारः। लृट्—वप्स्यति वप्स्यते। आशी०—उप्यात् उप्यास्ताम् उप्यासुः। वप्सीष्ट वप्सीयास्ताम् वप्सीरन्।

वस (प०)—रहना, होना, समय व्यतीत करना। वसति।

लिट्

प्र० पु०	उवास	ऊषतुः	ऊषुः
म० पु०	उवसिथ—उवस्थ	ऊषथुः	ऊष
उ० पु०	उवास-उवस	ऊषिव	ऊषिम

लुङ्

प्र० पु०	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
म० पु०	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उ० पु०	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म

लुट्

प्र० पु०	वस्ता	वस्तारौ	वस्तारः

लृट्

प्र० पु०	वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति
म० पु०	वत्स्यसि	वत्स्यथः	वत्स्यथ
उ० पु०	वत्स्यामि	वत्स्यावः	वत्स्यामः

वाञ्छ् (प०)—इच्छा करना। वाञ्छति वाञ्छतः वाञ्छन्ति। लिट्—ववाञ्छ ववाञ्छतुः ववाञ्छुः। ववाञ्छिथ। लुङ्—अवाञ्छीत्। लुट् वाञ्छिता। लृट्—वाञ्छिष्यति। आशी०—वाञ्छ्यात्।

वृध्[1] (आ०)—बढ़ना। वर्धते वर्धेते वर्धन्ते। लिट्—ववृधे ववृधाते ववृधिरे। ववृधिषे ववृधाथे ववृधिध्वे। ववृधे ववृधिवहे ववृधिमहे लुङ्—अवर्धिष्ट अवर्धिषाताम् अवर्धिषत। अवृधत् अवृधताम्। अवृधन्। लुट्—वर्धिता। लृट्—वर्धिष्यते अथवा वर्त्स्यति।

आशी०

वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
वर्धिषीष्ठाः	वर्धिषीयास्थाम्	वर्धिषीध्वम्
वर्धिषीय	वर्धिषीवहि	वर्धिषीमहि

1 यह लृट्, लुङ् तथा लृङ् में परस्मैपदी भी हो जाती है।

वृष् (प०)—बरसना। वर्षति वर्षतः वर्षन्ति। लिट्—ववर्ष ववर्षतुः ववर्षुः। लुङ्—अवर्षीत्। लुट्—वर्षिता। लृट्—वर्षिष्यति। आशी०—वृष्यात्।

व्रज् (प०)—चलना। व्रजति। लिट्—वव्राज वव्रजतुः। लुङ्—अव्राजीत् अव्राजिष्टाम्। लुट्—व्रजिता। लृट्—व्रजिष्यति। आशी०—व्रज्यात्

शंस् (प०)—स्तुति करना या चोट पहुंचाना। शंसति। लिट्—शशंस शशंसतुः शशंसुः। लुङ्—अशंसीत् अशंसिष्टाम् अशंसिषुः। लुट्—शंसिता। लृट्—शंसिष्यति। आशी०—शस्यात् शस्यास्ताम् शस्यासुः।

शङ्क् (आ०)—शङ्का करना। शङ्कते शङ्केते शङ्कन्ते। लिट्—शशङ्के शशङ्काते शशङ्किरे। लुङ्—अशङ्किष्ट अशङ्किषाताम् अशङ्किषत। लुट्—शङ्किता। लृट्—शङ्किष्यते। आशी०—शङ्किषीष्ट।

शिक्ष् (आ०)—सीखना। शिक्षते। लिट्—शिशिक्षे। लुङ्—अशिक्षिष्ट अशिक्षिषाताम् अशिक्षिषत। लुट्—शिक्षिता। लृट्—शिक्षिष्यते। आशी०—शिक्षिषीष्ट।

शुच् (प०)—शोक करना, पछताना। शोचति शोचतः शोचन्ति। लिट्—शुशोच शुशुचतुः शुशुचुः। शुशोचिथ। लुङ्—अशोचीत् अशोचिष्टाम् अशोचिषुः। लुट्—शोचिता। लृट्—शोचिष्यति। आशी०—शुच्यात्।

शुभ् (आ०)—शोभित होना, प्रसन्न होना। शोभते शोभेते शोभन्ते। लिट्—शुशुभे शुशुभाते शुशुभिरे। लुङ्—अशोभिष्ट अशो-

भिपाताम् अशोभिपत । लुट्—शोभिता । लृट्—शोभिष्यते ।
आशी०—शोभिषीष्ट ।

सह् (आ०)—सहना । सहते । लिट्—सेहे सेहाते सेहिरे ।

लुङ्

प्र० पु०	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
म० पु०	असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिध्वम्
उ० पु०	असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

लुट्

प्र० पु०	सोढा	सोढारौ	सोढारः
म० पु०	सोढासे	सोढासाथे	सोढाध्वे
उ० पु०	सोढाहे	सोढास्वहे	सोढास्महे

अथवा

प्र० पु०	सहिता	सहितारौ	सहितारः
म० पु०	सहितासे	सहितासाथे	सहिताध्वे
उ० पु०	सहिताहे	सहितास्वहे	सहितास्महे

लृट्—सहिष्यते । आशी०—सहिषीष्ट ।

सृ (प०)—चलना । सरति सरतः सरन्ति । लिट्—ससार सस्रतुः सस्रुः ।
ससर्थ सस्रथुः सस्र । ससार-ससर सस्रिव सस्रिम । लुङ्—
असरत् असरताम् असरन् तथा असार्षीत् असार्ष्टाम् असार्षुः ।
लुट्—सर्ता । लृट्—सरिष्यति । आशी०—स्रियात् ।

सेव् (आ०)—सेवा करना । सेवते सेवेते सेवन्ते । लिट्—सिषेवे सिषेवाते

सिपेविरे। सिपेविषे सिपेवाथे सिपेविध्वे। सिपेवे सिपेविवहे सिपेविमहे। लुङ्—असेविष्ट असेविषाताम् असेविषत। लुट्—सेविता। लृट्—सेविष्यते। आशी०—सेविषीष्ट।

स्मृ (पा०)—स्मरण करना। स्मरति स्मरतः स्मरन्ति।

लिट्

प्र० पु०	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः
म० पु०	सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर
उ० पु०	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

लुङ्—अस्मार्षीत् अस्मार्ष्टाम् अस्मार्षुः। अस्मार्षीः अस्मार्ष्टम् अस्मार्ष्ट। अस्मार्षम् अस्मार्ष्व अस्मार्ष्म। लुट्—स्मर्ता। लृट्—स्मरिष्यति। आशी० स्मर्यात्।

स्वद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। स्वदते स्वदेते स्वदन्ते। लिट्—सस्वदे सस्वदाते सस्वदिरे। सस्वदिषे सस्वदाथे सस्वदिध्वे। सस्वदे सस्वदिवहे सस्वदिमहे। लुङ्—अस्वदिष्ट अस्वदिषाताम् अस्वदिषत। अस्वदिष्ठाः अस्वदिषाथाम् अस्वदिध्वम्। अस्वदिषि अस्वदिष्वहि अस्वदिष्महि। लुट्—स्वदिता। लृट्—स्वदिष्यते। आशी०—स्वदिषीष्ट।

स्वाद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। स्वादते स्वादेते स्वादन्ते। लिट्—सस्वादे सस्वादाते सस्वादिरे। सस्वादिषे सस्वादाथे सस्वादिध्वे। लुङ्—अस्वादिष्ट अस्वादिषाताम्। लुट्—स्वादिता। लृट्—स्वादिष्यते। आशी०—स्वादिषीष्ट।

ह्लाद् (आ०)—खुश होना या शब्द करना। ह्लादते। लिट्—जह्लादे जह्लादाते जह्लादिरे। लुङ्—अह्लादिष्ट। लुट्—ह्लादिता। लृट्—ह्लादिष्यते। आशी०—ह्लादिषीष्ट

---

(२) अदादिगण

१४७—इस गण के आदि में अद्—खाना धातु है, इसलिये इसका नाम अदादि है। धातुपाठ में इस गण की ७२ धातुएँ पठित हैं। इस गण की धातुओं के उपरान्त ही प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं, धातु और प्रत्यय के बीच में भ्वादिगण के शप् (अ) की तरह कुछ नहीं लाया जाता। उदाहरणार्थ अद्+मि=अद्मि, अद्+ति=अत्ति, स्ना+ति=स्नाति।

परस्मैपदी आकारान्त धातुओं के अनन्तर अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष बहुवचन के अन् प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से उस् आता है, जैसे—आदन् अथवा आदुः।

परस्मैपदी

अद्—खाना।

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ० पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अत्तु, अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अद्धि, अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन्, आदु
म० पु०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम्	आद्व	आद्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतुः	जक्षुः
म० पु०	जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष
उ० पु०	जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम

अथवा

प्र० पु०	आद	आदतुः	आदुः
म० पु०	आदिथ	आदथुः	आद
उ० पु०	आद	आदिव	आदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्

म० पु०	अघसः	अघसताम्	अघसत
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० प्र०	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उ० पु०	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासु
म० पु०	अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त
उ० पु०	अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म० पु०	आत्स्य.	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ० पु०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

१४९—अदादिगण की अन्य धातुओं के रूप।

परस्मैपदी

अस्—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थ	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि, स्तात्	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

शेष लकारों में अस धातु के रूप वे ही हैं जो भ्वादिगणी भू धातु के हैं।

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

विधि—लिङ्

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म० पु०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ० पु०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
म० पु०	अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
उ० पु०	अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
म० पु०	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
म० पु०	अध्येतासे	अध्येतासाथे	अध्येताध्वे
उ० पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
म० पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उ० पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
म० पु०	अध्येषीष्ठाः	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीध्वम्
उ० पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
म० पु०	अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि

परस्मैपदी

इ—जाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	एति	इतः	यन्ति
म० पु०	एषि	इथः	इथ
उ० पु०	एमि	इवः	इमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	एतु	इताम्	यन्तु
म० पु०	इहि	इतम्	इत
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	इयुः
म० पु०	इयाः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
म० पु०	ऐः	ऐतम्	ऐत
उ० पु०	आयम्	ऐव	ऐम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	इयाय	ईयतुः	ईयुः
म० पु०	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
उ० पु०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अगात्	अगाताम्	अगुः
म० पु०	अगाः	अगातम्	अगात
उ० पु०	अगाम्	अगाव	अगाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	एता	एतारौ	एतारः
म० पु०	एतासि	एतास्थः	एतास्थ
उ० पु०	एतास्मि	एतास्वः	एतास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति
म० पु०	एष्यसि	एष्यथः	एष्यथ
उ० पु०	एष्यामि	एष्यावः	एष्यामः

आशीर्लिङ्

क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
म० पु०	ऐष्य	ऐष्यतम्	ऐष्यत
उ० पु०	ऐष्यम्	ऐष्याव	ऐष्याम

उभयपदी

ब्रू—बोलना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	ब्रवीति / आह	ब्रूतः / आहतुः	ब्रुवन्ति / आहुः
म० पु०	ब्रवीषि / आत्थ	ब्रूथः / आहथुः	ब्रूथ
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु ब्रूतात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि, ब्रूतात्	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

विधि-लिङ्

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
म० पु०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
म० पु०	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	उवाच	ऊचतु	ऊचु
म० पु०	उवचिथ, उवक्थ	ऊचथु	ऊच
उ० पु०	उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवोचत	अवोचताम्	अवोचन्
म० पु०	अवोचः	अवोचतम्	अवोचत
उ० पु०	अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासि	वक्तास्थ	वक्तास्थ
उ० पु०	वक्तास्मि	वक्तास्व	वक्तास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः
म० पु०	उच्याः	उच्यास्तम्	उच्यास्त
उ० पु०	उच्यासम्	उच्यास्व	उच्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्यः	अवक्ष्यतम्	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ० पु०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधि-लिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
म० पु०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
म० पु०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उ० पु०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
म० पु०	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
उ० पु०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
उ० पु०	वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्ठाः	वक्षीयास्थाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीवहि	वक्षीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
म० पु०	अवक्ष्यथाः	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

परस्मैपदी, या—जाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	याति	यातः	यान्ति
म० पु०	यासि	याथः	याथ
उ० पु०	यामि	यावः	यामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	यातु, यातात्	याताम्	यान्तु
म० पु०	याहि, यातात्	यातम्	यात
उ० पु०	यानि	याव	याम

विधि-लिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायाताम्	यायुः
म० पु०	यायाः	यायातम्	यायात
उ० पु०	यायाम्	यायाव	यायाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अयात्	अयाताम्	अयुः
म० पु०	अयाः	अयातम्	अयात
उ० पु०	अयाम्	अयाव	अयाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ययौ	ययतुः	ययुः
म० पु०	ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय
उ० पु०	ययौ	ययिव	ययिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः
म० पु०	अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
उ० पु०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	याता	यातारौ	यातारः
म० पु०	यातासि	यातास्थः	यातास्थ
उ० पु०	यातास्मि	यातास्वः	यातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति
म० पु०	यास्यसि	यास्यथः	यास्यथ
उ० पु०	यास्यामि	यास्यावः	यास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायास्ताम्	यायासुः

म० पु०	याया:	यायास्तम्	यायास्त
उ० पु०	यायासम्	यायास्व	यायास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
म० पु०	अयास्य:	अयास्यतम्	अयास्यत
उ० पु०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

ख्या (कहना), पा (पालना), भा (चमकना), मा (नापना), रा (देना), ला (देना या लेना), वा (बहना) के रूप या के समान होते है।

परस्मैपदी

रुद्—रोना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

विधि-लिङ्

रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

०	अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
०	अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

परोक्षभूत—लिट्

पु०	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
पु०	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
पु०	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

सामान्यभूत—लुङ्

पु०	अरुदत् / अरोदीत्	अरुदताम् / अरोदिष्टाम्	अरुदन् / अरोदिषुः
पु०	अरुदः / अरोदीः	अरुदतम् / अरोदिष्टम्	अरुदत / अरोदिष्ट
पु०	अरुदम् / अरोदिषम्	अरुदाव / अरोदिष्व	अरुदाम / अरोदिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

० पु०	रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः
० पु०	रोदितासि	रोदितास्थः	रोदितास्थ
० पु०	रोदितास्मि	रोदितास्वः	रोदितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति
म० पु०	रोदिष्यसि	रोदिष्यथः	रोदिष्यथ
उ० पु०	रोदिष्यामि	रोदिष्यावः	रोदिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यास्तम्	रुद्यास्त
उ० पु०	रुद्यासम्	रुद्यास्व	रुद्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्
म० पु०	अरोदिष्यः	अरोदिष्यतम्	अरोदिष्यत
उ० पु०	अरोदिष्यम्	अरोदिष्याव	अरोदिष्याम

परस्मैपदी

शास्—शासन करना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शास्ति	शिष्टः	शासति
म० पु०	शास्सि	शिष्ठ	शिष्ठ
उ० पु०	शास्मि	शिष्व	शिष्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु

म० पु०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उ० पु०	शासानि	शासाव	शासाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उ० पु०	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
म० पु०	अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशास	शशासतुः	शशासुः
म० पु०	शशासिथ	शशासथुः	शशास
उ० पु०	शशास	शशासिव	शशासिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
म० पु०	अशिषः	अशिषतम्	अशिषत
उ० पु०	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शासिता	शासितारौ	शासितारः
म० पु०	शासितासि	शासितास्थः	शासितास्थ
उ० पु०	शासितास्मि	शासितास्वः	शासितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति
म० पु०	शासिष्यसि	शासिष्यथः	शासिष्यथ
उ० पु०	शासिष्यामि	शासिष्यावः	शासिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
म० पु०	अशासिष्यः	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
उ० पु०	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

आत्मनेपदी

शी—लेटना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शये	शेवहे	शेमहे

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्

म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
म० पु	शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम्,-ध्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितारः
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम्,-ध्वम्
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्व
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

परस्मैपदी

स्ना—स्नान करना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति
म० पु०	स्नासि	स्नाथः	स्नाथ
उ० पु०	स्नामि	स्नावः	स्नामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्नातु, स्नातात्	स्नाताम्	स्नान्तु
म० पु०	स्नाहि, स्नातात्	स्नातम्	स्नात

उ० पु०	स्नानि	स्नाव	स्नाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायाताम्	स्नायुः
म० पु०	स्नायाः	स्नायातम्	स्नायात
उ० पु०	स्नायाम्	स्नायाव	स्नायाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अस्नात्	अस्नाताम्	अस्नुः, अस्नान्
म० पु०	अस्नाः	अस्नातम्	अस्नात
उ० पु०	अस्नाम्	अस्नाव	अस्नाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	सस्नौ	सस्नतुः	सस्नुः
म० पु०	सस्निथ, सस्नाथ	सस्नथुः	सस्न
उ० पु०	सस्नौ	सस्निव	सस्निम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्नासीत्	अस्नासिष्टाम्	अस्नासिषुः
म० पु०	अस्नासीः	अस्नासिष्टम्	अस्नासिष्ट
उ० पु०	अस्नासिषम्	अस्नासिष्व	अस्नासिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	स्नाता	स्नातारौ	स्नातारः
म० पु०	स्नातासि	स्नातास्थः	स्नातास्थ
उ० पु०	स्नातास्मि	स्नातास्वः	स्नातास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	स्नास्यति	स्नास्यतः	स्नास्यन्ति
म० पु०	स्नास्यसि	स्नास्यथ	स्नास्यथ
उ० पु०	स्नास्यामि	स्नास्यावः	स्नास्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासुः
म० पु०	स्नायाः	स्नायास्तम्	स्नायास्त
उ० पु०	स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म

अथवा

प्र० पु०	स्नेयात्	स्नेयास्ताम्	स्नेयासुः
म० पु०	स्नेयाः	स्नेयास्तम्	स्नेयास्त
उ० पु०	स्नेयासम्	स्नेयास्व	स्नेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
म० पु०	अस्नास्यः	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
उ० पु०	अस्नास्यम्	अस्नास्याव	अस्नास्याम

परस्मैपदी

स्वप्—सोना

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
म० पु०	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म० पु०	अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
म० पु०	सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप
उ० पु०	सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
म० पु०	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ० पु०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	स्वप्ता
लृट्—	"	"	स्वप्स्यति
आशीर्लिङ्—	"	"	सुप्यात्
लृङ्—	"	"	अस्वप्स्यत्

परस्मैपदी

श्वस्—साँस लेना

लट्—	प्र० पु०	एकवचन	श्वसिति।
लोट्—	"	"	श्वसितु।
विधि—	"	"	श्वस्यात्।
लङ्—	"	"	अश्वसीत् अश्वसत्।
लिट्—	"	"	शश्वास।
लुङ्—	"	"	अश्वसीत्।
लुट्—	"	"	श्वसिता।
लृट्—	"	"	श्वसिष्यति।

श्वस् के रूप स्वप् के समान होते है।

परस्मैपदी

हन्—मार डालना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	हन्ति	हत॰	घ्नन्ति
म० पु०	हंसि	हथ	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्व	हन्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	हन्तु, हतात्	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि, हतात्	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म० पु०	जघनिथ,जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उ० पु०	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवधीत	अवधिष्टाम्	अवधिषुः
म० पु०	अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः
म० पु०	हन्तासि	हन्तास्थः	हन्तास्थ
उ० पु०	हन्तास्मि	हन्तास्वः	हन्तास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
म० पु०	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ० पु०	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्यास्ताम्	हन्यासुः
म० पु०	हन्याः	हन्यास्तम्	हन्यास्त
उ० पु०	हन्यासम्	हन्यास्व	हन्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
म० पु०	अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
उ० पु०	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

(३) जुहोत्यादिगण

१५०—इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है और उसके रूप जुहोति आदि होते है, इसलिए इस गण का नाम जुहोत्यादि गण पड़ा। इस गण में २४ धातुएँ हैं। इनके उपरान्त प्रत्यय जोड़ते समय धातु और प्रत्यय के बीच में कुछ नहीं लाया जाता, केवल

धातु का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास करने के नियम ऊपर नियम १४२ के अन्तर्गत नोट नं० १ पृ० ३१५ पर दिए गए है।

इस गण में वर्तमान प्रथम पुरुष के बहुवचन मे अन्ति के स्थान पर अति तथा अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष के बहुवचन में अन् के स्थान पर उस् होता है। इस उस् प्रत्यय के पूर्व धातु का अन्तिम आ लोप कर दिया जाता है और अन्तिम इ, उ, ऋ को गुण (=) प्राप्त होता है।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओं के रूप दिए जाते है :—

(उभयपदी) दा—देना।

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थ.	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्म.

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ददातु.	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदुः
म० पु०	अदाः	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

अनद्यतन भविष्य—लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासि	दातास्थः	दातास्थ
उ० पु०	दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
म० पु०	देया.	देयास्तम्	देयास्त
उ० पु०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

क्रियातिपत्ति—ऌङ्

प्र० पु०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
म० पु०	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
उ० पु०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उ० पु०	ददे	दद्वहे	दद्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहै	ददामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	ददीथा.	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
म० पु०	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिध्वम्
उ० पु०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्

म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

उभयपदी

धा—धारण करना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दधाति	धत्तः	दधति
म० पु०	दधासि	धत्थ	धत्थ
उ० पु०	दधामि	दध्वः	दध्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दधातु	धत्ताम्	दधतु
म० पु०	धेहि	धत्तम्	धत्त
उ० पु०	दधानि	दधाव	दधाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः
म० पु०	दध्याः	दध्यातम्	दध्यात

उ० पु०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
म० पु०	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उ० पु०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधौ	दधतुः	दधुः
म० पु०	दधिथ, दधाथ	दधथुः	दध
उ० पु०	दधौ	दधिव	दधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधात्	अधाताम्	अधुः
म० पु०	अधाः	अधातम्	अधात
उ० पु०	अधाम्	अधाव	अधाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातारः
म० पु०	धातासि	धातास्थः	धातास्थ
उ० पु०	धातास्मि	धातास्व	धातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति
म० पु०	धास्यसि	धास्यथः	धास्यथ
उ० पु०	धास्यामि	धास्यावः	धास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासुः
म० पु०	धेया	धेयास्तम्	धेयास्त
उ० पु०	धेयासम्	धेयास्व	धेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्
म० पु०	अधास्यः	अधास्यतम्	अधास्यत
उ० पु०	अधास्यम्	अधास्याव	अधास्याम

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	धत्ते	दधाते	दधते
म० पु०	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ० पु०	दधे	दध्वहे	दध्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म० पु०	धत्स्व	दधाथाम्	धध्वम्
उ० पु०	दधै	दधावहै	दधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म० पु०	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ० पु०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
म० पु०	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधे	दधाते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
उ० पु०	दधे	दधिवहे	दधिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
म० पु०	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिध्वम्
उ० पु०	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातार
म० पु०	धातासे	धातासाथे	धाताध्वे
उ० पु०	धाताहे	धातास्वहे	धातास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
म० पु०	धास्यसे	धास्येथे	धास्यध्वे
उ० पु०	धास्ये	धास्यावहे	धास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्

म० पु०	धासीष्ठाः	धासीयास्थाम्	धासीध्वम्
उ० पु०	धासीय	धासीवहि	धासीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त
म० पु०	अधास्यथाः	अधास्येथाम्	अधास्यध्वम्
उ० पु०	अधास्ये	अधास्यावहि	अधामास्यहि

परस्मैपदी भी—डरना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बिभेति	बिभितः, बिभीतः	बिभ्यति
म० पु०	बिभेषि	बिभिथः बिभीथः	बिभिथ, बिभीथ
उ० पु०	बिभेमि	बिभिव, बिभीव	बिभिमः, बिभीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	बिभेतु / बिभितात्	बिभिताम् / बिभीताम्	बिभ्यतु
म० पु०	बिभिहि / बिभीहि	बिभितम् / बिभीतम्	बिभित / बिभीत
उ० पु०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बिभियात् / बिभीयात्	बिभियाताम् / बिभीयाताम्	बिभियुः / बिभीयुः
म० पु०	बिभियाः / बिभीयाः	बिभियातम् / बिभीयातम्	बिभियात / बिभीयात

उ० पु०	विभियाम् विभीयाम्	विभियाव विभीयाव	विभियाम विभीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अविभेत्	अविभिताम् अविभीताम्	अविभयुः
म० पु०	अविभेः	अविभितम् अविभीतम्	अविभित अविभीत
उ० पु०	अविभयम्	अविभिव अविभीव	अविभिम अविभीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विभयाञ्चकार	विभयाञ्चक्रतुः	विभयाञ्चक्रुः
म० पु०	विभयाञ्चकर्थ	विभयाञ्चक्रथुः	विभयाञ्चक्र
उ० पु०	विभयाञ्चकार विभयाञ्चकर	विभयाञ्चकृव	विभयाञ्चकृम
प्र० पु०	विभयाम्बभूव	विभयाम्बभूवतुः	विभयाम्बभूवुः
म० पु०	विभयाम्बभूविथ	विभयाम्बभूवथुः	विभयाम्बभूव
उ० पु०	विभयाम्बभूव	विभयाम्बभूविव	विभयाम्बभूविम
प्र० पु०	विभयामास	विभयामासतुः	विभयामासुः
म० पु०	विभयामासिथ	विभयामासथुः	विभयामास
उ० पु०	विभयामास	विभयामासिव	विभयामासिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः

म० पु०	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ० पु०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	भेता	भेतारौ	भेतारः
म० पु०	भेतासि	भेतास्थः	भेतास्थ
उ० पु०	भेतास्मि	भेतास्वः	भेतास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
म० पु०	भेष्यसि	भेष्यथः	भेष्यथ
उ० पु०	भेष्यामि	भेष्यावः	भेष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
म० पु०	भीयाः	भीयास्तम्	भीयास्त
उ० पु०	भीयासम्	भीयास्व	भीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
म० पु०	अभेष्यः	अभेष्यतम्	अभेष्यत
उ० पु०	अभेष्यम्	अभेष्याव	अभेष्याम

२२० व्या० प्र०—२६

परस्मैपदी

हा—छोड़ना

वर्तमान-लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहाति	जहितः / जहीतः	जहति
म० पु०	जहासि	जहिथः / जहीथः	जहिथ / जहीथ
उ० पु०	जहामि	जहिवः / जहीवः	जहिमः / जहीमः

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहातु / जहितात् / जहीतात्	जहिताम् / जहीताम्	जहतु
म० पु०	जहाहि / जहिहि, जहीहि / जहितात्, जहीतात्	जहितम् / जहीतम्	जहित / जहीत
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः
म० पु०	जह्याः	जह्यातम्	जह्यात
उ० पु०	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजहात्	अजहीताम् / अजहिताम्	अजहुः

म० पु०	अजहाः	अजहीतम्, अजहितम्	अजहीत, अजहित
उ० पु०	अजहाम्	अजहीव, अजहिव	अजहीम, अजहिम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जहौ	जहतुः	जहुः
म० पु०	जहिथ, जहाथ	जहथुः	जह
उ० पु०	जहौ	जहिव	जहिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः
म० पु०	अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट
उ० पु०	अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	हाता	हातारौ	हातारः
म० पु०	हातासि	हातास्थः	हातास्थ
उ० पु०	हातास्मि	हातास्वः	हातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति
म० पु०	हास्यसि	हास्यथ	हास्यथ
उ० पु०	हास्यामि	हास्याव.	हास्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः

म० पु०	हेयाः	हेयास्तम्	हेयास्त
उ० पु०	हेयासम्	हेयास्व	हेयास्म

क्रियातिपत्ति—लङ्

प्र० पु०	अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्
म० पु०	अहास्यः	अहास्यतम्	अहास्यत
उ० पु०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

(४) दिवादिगण

१५१—इस गण की प्रथम धातु दिव् (जुआ खेलना) है, इस कारण इसका नाम दिवादिगण है। इस में १४० धातुएँ है। इस गण की धातुओं और प्रत्ययों के बीच में श्यन् (य) जोड़ा जाता है; जैसे—मन् धातु से मन्+य+ते=मन्यते। कुप्+य+ति=कुप्यति।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओं के रूप दिखाए जाते हैं:—

परस्मैपदी

(क) दिव्—जुआ खेलना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीव्यतु, दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु

म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
म० पु०	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्य.	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिवतु.	दिदिवुः
म० पु०	दिदेविथ	दिदिवथु.	दिदिव
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषु
म० पु०	अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म
लुट्—	देविता	देवितारौ	देवितारः
लृट्—	देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति
आशी०—	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासु·
लृङ्—	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्

आत्मनेपदी

(ख) जन्—पैदा होना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जायै	जायावहै	जायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे

उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अजनि, अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
म० पु०	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
उ० पु०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि
लुट्—	जनिता	जनितारौ	जनितारः
लृट्—	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
आशी०—	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	जनिषीरन्
लृङ्—	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त

परस्मैपदी

(ग) कुप्—कोप करना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति
म० पु०	कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ
उ० पु०	कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
म० पु०	कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत
उ० पु०	कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयु.
म० पु०	कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत
उ० पु०	कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
म० पु०	अकुप्यः	अकुप्यतम्	अकुप्यत
उ० पु०	अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः
म० पु०	चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप
उ० पु०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
म० पु०	अकुप.	अकुपतम्	अकुपत
उ० पु०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम
लुट्—	कोपिता	कोपितारौ	कोपितार
लृट्—	कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति
आशी०—	कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासु
लृङ्—	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

(घ) विद्—होना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
म० पु०	विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्
म० पु०	विद्यस्व	विद्येथाम्	विद्यध्वम्
उ० पु०	विद्यै	विद्यावहै	विद्यामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	विद्येत	विद्येयाताम्	विद्येरन्
म० पु०	विद्येथाः	विद्येयाथाम्	विद्येध्वम्
उ० पु०	विद्येय	विद्येवहि	विद्येमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त
म० पु०	अविद्यथाः	अविद्येथाम्	अविद्यध्वम्
उ० पु०	अविद्ये	अविद्यावहि	अविद्यामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विविदे	विविदाते	विविदिरे

म० पु०	विविदिषे	विविदाथे	विविदिध्वे
उ० पु०	विविदे	विविदिवहे	विविदिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवित्त	अवित्साताम्	अवित्सत
म० पु०	अवित्थाः	अवित्साथाम्	अविद्ध्वम्
उ० पु०	अवित्सि	अवित्स्वहि	अवित्स्महि
लुट्—	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तारः
लृट्—	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
आशी०—	वित्सीष्ट	वित्सीयास्ताम्	वित्सीरन्
लृङ्—	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम्	अवेत्स्यन्त

१५२—नीचे कुछ मुख्य धातुओं की सूची दी जाती है।

क्रम् (प०)—जाना। क्राम्यति। लुट्—क्रमिता, क्रन्ता। लृट्—क्रमिष्यति। आशी०—क्रम्यात्। लङ्—अक्रमिष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्राम	चक्रमतु	चक्रमु
म० पु०	चक्रमिथ	चक्रमथुः	चक्रम
उ० पु०	चक्राम, चक्रम	चक्रमिव	चक्रमिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषु·
म० पु०	अक्रमी·	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उ० पु०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

क्रुध् (प०)—गुस्सा करना। क्रुध्यति। लिट्—चुक्रोध। लुङ्—अक्रुधत्। लुट्—क्रोद्धा। लृट्—क्रोत्स्यति। आशी०—क्रुध्यात्। लृङ्—अक्रोत्स्यत्।

क्लिश (आत्म०)—दु:खी होना, क्लेश पाना। क्लिश्यते। लुट्—क्लेशिता। लृट्— क्लेशिष्यते। आशी०—क्लेशिषीष्ट। लृङ्—अक्लेशिष्यत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्लेश	चिक्लिशतुः	चिक्लिशुः
म० पु०	चिक्लेशिथ चिक्लेष्ठ	चिक्लिशथुः	चिक्लिश
उ० पु०	चिक्लेश	चिक्लिशिव चिक्लिश्व	चिक्लिशिम चिक्लिश्म
लुङ्	प्र० पु०	एकवचन	अक्लेशिष्ट

क्षम् (प०)—क्षमा करना। क्षाम्यति। लुट्—क्षमिता अथवा क्षन्ता।

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	क्षमिष्यति	क्षमिष्यतः	क्षमिष्यन्ति
म० पु०	क्षमिष्यसि	क्षमिष्यथः	क्षमिष्यथ
उ० पु०	क्षमिष्यामि	क्षमिष्यावः	क्षमिष्यामः

अथवा

प्र० पु०	क्षंस्यति	क्षंस्यतः	क्षंस्यन्ति
म० पु०	क्षंस्यसि	क्षंस्यथः	क्षंस्यथ
उ० पु०	क्षंस्यामि	क्षंस्यावः	क्षंस्यामः

आशी०— क्षम्यात्। लृङ्—अक्षमिष्यत्, अक्षंस्यत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्षाम	चक्षमतुः	चक्षमुः
म० पु०	{ चक्षमिथ { चक्षन्थ	चक्षमथुः	चक्षम
उ० पु०	{ चक्षाम { चक्षम	{ चक्षमिव { चक्षण्व	{ चक्षमिम { चक्षण्म

लुङ्—अक्षमत् अक्षमताम् अक्षमन्।

क्षुध् (प०)—भूखा होना। क्षुध्यति। लिट्—चुक्षोध। लुङ्—अक्षुधत्। लुट्—क्षोद्धा। लृट्—क्षोत्स्यति। आशी०—क्षुध्यात्। लृङ्—अक्षोत्स्यत्।

खिद् (आत्म०)—दुःखी होना। खिद्यते। लिट्—चिखिदे। लुङ्—अखैत्सीत्। लुट्—खेत्ता। लृट्—खेत्स्यते। आशी०—खित्सीष्ट। लृङ्—अखेत्स्यत।

तुष् (प०)—प्रसन्न होना। तुष्यति। लिट्—तुतोष। लुङ्—अतुषत्। लुट्—तोष्टा। लृट्—तोक्ष्यति। आशी०—तुष्यात्। लृङ्—अतोक्ष्यत्।

दम् (प०)—दमन करना, दबाना। दाम्यति। लिट्—ददाम। लुङ्—अदमत्। लुट्—दमिता। लृट्—दमिष्यति। आशी०—दम्यात्। लृङ्—अदमिष्यत्।

दुष् (प०)—अशुद्ध होना। दुष्यति। लिट्—दुदोष। लुङ्—अदुषत्। लुट्—दोष्टा। लृट्—दोक्ष्यति। आशी०—दुष्यात्। लृङ्—अदोक्ष्यत्।

द्रुह (प०)—डाह करना। द्रुह्यति। लुट्—द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा। लृट्—द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति। आशी०—द्रुह्यात्। लृङ्—अद्रोहिष्यत्, अध्रोक्ष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहतुः	दुद्रुहुः
म० पु०	दुद्रोहिथ दुद्रोढ दुद्रोग्ध	दुद्रुहथुः	दुद्रुह
उ० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहिव दुद्रुह्व	दुद्रुहिम दुद्रुह्म

नश् (प०)—नाश हो जाना। नश्यति। लुट्—नशिता, नंष्टा। लृट्—नशिष्यति, नङ्क्ष्यति। आशी०—नश्यात्। लृङ्—अनशिष्यत्, अनंक्ष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननाश	नेशतुः	नेशुः
म० पु०	नेशिथ ननंष्ठ	नेशथुः	नेश
उ० पु०	ननाश ननश	नेशिव नेश्व	नेशिम नेश्म

नृत (प०)—नाचना। नृत्यति। लुट्—नर्तिता। लृट्—नर्तिष्यति नर्त्स्यति। आशी०—नृत्यात्।

लिट्

प्र० पु०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः

म० पु०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
उ० पु०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम

लुङ्

अनर्तीत् अनर्तिष्टाम् अनर्तिषुः, इत्यादि।

भ्रम् (प०)—घूमना। भ्राम्यति। लुट्—भ्रमिता। लृट्—भ्रमिष्यति। आशी०—भ्रम्यात्।

लिट्

प्र० पु०	बभ्राम	बभ्रमतुः / भ्रेमतुः	बभ्रमुः / भ्रेमुः
म० पु०	बभ्रमिथ / भ्रेमिथ	बभ्रमथुः / भ्रेमथुः	बभ्रम / भ्रेम
उ० पु०	बभ्राम / बभ्रम	बभ्रमिव / भ्रेमिव	बभ्रमिम / भ्रेमिम

लुङ्— अभ्रमत्

मन् (आत्म०)—समझना। मन्यते। लुट्—मन्ता। लृट्—मंस्यते। आशी०—मंसीष्ट। लिट्—मेने मेनाते मेनिरे। लुङ्—अमंस्त अमंसाताम् अमंसत अमंस्थाः अमंसाथाम् अमन्ध्वम् अमंसि अमंस्वहि अमंस्महि।

युध् (आ०)—सङ्ग्राम करना। युध्यते। लुट्—योद्धा। लृट्—योत्स्यते आशी०—युत्सीष्ट। लृङ्—अयोत्स्यत। लिट्—युयुधे लुङ्—अयुद्ध अयुत्साताम् अयुत्सत।

व्यध् (प०)—वेधना। विध्यति। लुट—व्यद्धा। लृट्—व्यत्स्यति। आशी० विध्यात्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विव्याध	विविधतुः	विविधुः
म० पु०	विव्यधिथ, विव्यद्ध	विविधथुः	विविध
उ० पु०	विव्याध, विव्यध	विविधिव	विविधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अव्यात्सीत्	अव्याताम्	अव्यात्सुः
म० पु०	अव्यात्सीः	अव्यात्तम्	अव्यात्त
उ० पु०	अव्यात्सम्	अव्यात्स्व	अव्यात्स्म

शुष् (प०)—सूखना । शुष्यति । लुट्—शोष्टा । लृट्—शोक्ष्यति । आशी०—शुष्यात् । लिट्—शुशोष । लुङ्—अशुषत् ।

सिध् (प०)—सिद्ध करना, कामयाब होना । सिध्यति । लुट्—सेद्धा । आशी०—सिध्यात् । लिट्—सिषेध । लुङ्—असिधत् ।

सिव (प०)—सीना । सीव्यति । लुट्—सेविता । आशी०—सीव्यात् । लिट्—सिषेव । लुङ्—असेवीत् ।

हृष (प०)—हर्षित होना । हृष्यति । लुट्—हर्षिता । लृट्—हर्षिष्यति । आशी०—हृष्यात् । लिट्—जहर्ष । लुङ्—अहृषत् ।

(५) स्वादिगण

नोट—प्रत्यय के व्, म् के पूर्व विकल्प से नु का उ गिरा कर केवल न् जोड़ा जाता है, (जैसे—सु+नु+वः=सुनुवः, सुन्वः अथवा सुनुमः सुन्मः) किन्तु यदि नु के पूर्व कोई व्यजन हो तो उ नहीं गिराया जाता। (जैसे—साध्+नु+मः=साध्नुमः)।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओं के रूप दिये जाते है।

परस्मैपदी

(क) आप्—पाना

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
म० पु०	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
उ० पु०	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

विधि लिङ्

प्र० पु०	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
म० पु०	आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उ० पु०	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म० पु०	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत

उ० पु०	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	आप	आपतुः	आपुः
म० पु०	आपिथ	आपथुः	आप
उ० पु०	आप	आपिव	आपिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	आपत्	आपताम्	आपन्
म० पु०	आपः	आपतम्	आपत
उ० पु०	आपम्	आपाव	आपाम
लुट्—	आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः
लृट्—	आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति
आशी०—	आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः
लृङ्—	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्

उभयपदी

(ख) चि—इकट्ठा करना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
म० पु०	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
उ० पु०	चिनोमि	चिनुव, चिन्वः	चिनुमः, चिन्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
म० पु०	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
उ० पु०	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः
म० पु०	चिनुया	चिनुयातम्	चिनुयात
उ० पु०	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
म० पु०	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
उ० पु०	अचिनवम्	अचिन्व	अचिन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिकाय	चिक्यतु:	चिक्युः
म० पु०	चिकयिथ चिकेथ	चिक्यथुः	चिक्य
उ० पु०	चिकाय, चिकय	चिक्यिव	चिक्यिम

अथवा

प्र० पु०	चिचाय	चिच्यतुः	चिच्यु
म० पु०	चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य
उ० पु०	चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः

म० पु०	अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट
उ० पु०	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म
लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्—	चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति
आशी०—	चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः
लृङ्—	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
म० पु०	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
उ० पु०	चिन्वे	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
म० पु०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
उ० पु०	चिनवै	चिनवावहै	चिनवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
म० पु०	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ० पु०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत

म० पु०	अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
उ० पु०	अचिन्वि	अचिन्वहि	अचिन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

अथवा

प्र० पु०	चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे
म० पु०	चिच्यिषे	चिच्याथे	चिच्यिध्वे
उ० पु०	चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
म० पु०	अचेष्ठाः	अचेषाथाम्	अचेध्वम्
उ० पु०	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि
लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्—	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
आशी०—	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
लृङ्—	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त

उभयपदी

(ग) वृ—चुनना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
उ० पु०	वृणोमि	वृणुवः, वृण्वः	वृणुमः, वृण्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
म० पु०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
म० पु०	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उ० पु०	अवृणवम्	अवृणुव, अवृण्व	अवृणुम, अवृण्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वदार	ववतुः	ववुः

म० पु०	ववरिथ	वव्रथुः	ववर
उ० पु०	ववार, ववर	वव्रिव	वव्रिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवारीत्	अवारिष्टाम्	अवारिषुः
म० पु०	अवारीः	अवारिष्टम्	अवारिष्ट
उ० पु०	अवारिषम्	अवारिष्व	अवारिष्म
लुट्—	वरिता / वरीता	वरितारौ / वरीतारौ	वरितारः / वरीतारः
लृट्—	वरिष्यति / वरीष्यति	वरिष्यतः / वरीष्यतः	वरिष्यन्ति / वरीष्यन्ति
आशी०—	व्रियात्	व्रियास्ताम्	व्रियासुः
लृङ्—	अवरिष्यत् / अवरीष्यत्	अवरिष्यताम् / अवरीष्यताम्	अवरिष्यन् / अवरीष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृणुवहे, वृण्वहे	वृणुमहे, वृ

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृण्वहि	अवृण्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वव्रे	वव्राते	वव्रिरे
म० पु०	ववृषे	वव्राथे	ववृध्वे
उ० पु०	वव्रे	ववृवहे	ववृमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवरिष्ट	अवरिषाताम्	अवरिषत
म० पु०	अवरिष्ठाः	अवरिषाथाम्	अवरिध्वम्
उ० पु०	अवरिषि	अवरिष्वहि	अवरिष्महि

या

प्र० पु०	अवरीष्ट	अवरीषाताम्	अवरीषत
म० पु०	अवरीष्ठाः	अवरीषाथाम्	अवरीध्वम्
उ० पु०	अवरीषि	अवरीष्वहि	अवरीष्महि

अथवा

प्र० पु०	अवृत	अवृषाताम्	अवृषत

म० पु०	अवृथाः	अवृषाथाम्	अवृध्वम्
उ० पु०	अवृषि	अवृण्वहि	अवृष्महि
लुट्—	वरिता / वरीता	वरितारौ / वरीतारौ	वरितार / वरीतार
लृट्—	वरिष्यते / वरीष्यते	वरिष्येते / वरीष्येते	वरिष्यन्ते / वरीष्यन्ते
आशी०—	वरिषीष्ट / वृषीष्ट	वरिषीयास्ताम् / वृषीयास्ताम्	वरिषीरन् / वृषीरन्
लृङ्—	अवरिष्यत / अवरीष्यत	अवरिष्येताम् / अवरीष्येताम्	अवरिष्यन्त / अवरीष्यन्त

परस्मैपदी

(घ) शक्—सकना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुत	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः

म० पु०	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
उ० पु०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
म० पु०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उ० पु०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
म० पु०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथुः	शेक
उ० पु०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम

सामान्यभूत - लुङ्

प्र० पु०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
म० पु०	अशकः	अशकतम्	अशकत
उ० पु०	अशकम्	अशकाव	अशकाम
लुट्—	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
लृट्—	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आशी०—	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
लृङ्—	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्

(६) तुदादिगण

६५९—इस गण की प्रथम धातु तुद् (पीडा पहुँचाना) है, इसी से इसका नाम तुदादिगण है। इस में १५७ धातुएँ हैं। धातु और

प्रत्यय के बीच में इस गण में श (अ) जोड़ा जाता है। भ्वादिगण में भी अ जोड़ा जाता है किन्तु वहाँ धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर को गुण प्राप्त होता है, यहाँ तुदादिगण में ऐसा नहीं होता। यहाँ अन्तिम इ ई को इय्, उ ऊ को उव् और ऋ को रिय् और ॠ को इर् हो जाता है; जैसे—रि+अ+ति=रियति। धु+अ+ति= धुवति मृ+अ+ते=म्रियते। गॄ+अ+ति=गिरति। कृप् धातु भ्वादिगण तथा तुदादिगण दोनों में है, भ्वादि में कर्पति आदि और तुदादि में कृपति आदि रूप होते हैं

नीचे मुख्य धातुओं के रूप दिये जाते हैं।

उभयपदी

तुद्—पीड़ा पहुँचाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदति	तुदत	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदावः	तुदाम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तुदतु, तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद तुदतात	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतोद	तुतुदतु.	तुतुदुः
म० पु०	तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद
उ० पु०	तुतोद, तुतुद	तुतुदिव	तुतुदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः
म० पु०	अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
उ० पु०	अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म

लुट्— तोत्ता। लृट्—तोत्स्यति। आशी०—तुद्यात्। लृङ्—अतोत्स्यत्।

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
म० पु०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उ० पु०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
म० पु०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उ० पु०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

विधि लिङ्

प्र० पु०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
म० पु०	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उ० पु०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
म० पु०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उ० पु०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
म० पु०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
उ० पु०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
म० पु०	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
उ० पु०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

लुट्—तोत्ता, तोत्तारौ तोत्तारः । तोत्तासे । लृट्—तोत्स्यते । आशी०-
तुत्सीष्ट । लृङ्—अतोत्स्यत ।

परस्मैपदी

इष्—इच्छा करना

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
म० पु०	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उ० पु०	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	इच्छतु	इच्छतात्	इच्छन्तु
म० पु०	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उ० पु०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
म० पु०	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उ० पु०	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
म० पु०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उ० पु०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	इयेष	ईषतुः	ईषु
म० पु०	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
उ० पु०	इयेष	ईषिव	ईषिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः
म० पु०	ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट
उ० पु०	ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	{ एषिता { एष्टा	{ एषितारौ { एष्टारौ	{ एषितारः { एष्टारः
म० पु०	{ एषितासि { एष्टासि	{ एषितास्थः { एष्टास्थः	{ एषितास्थ { एष्टास्थ
उ० पु०	{ एषितास्मि { एष्टास्मि	{ एषितास्वः { एष्टास्वः	{ एषितास्मः { एष्टास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
म० पु०	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उ० पु०	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

आशी०— इष्यात्। लृङ्— ऐषिष्यत्।

१५५—तुदादिगण की अन्य मुख्य धातुओं की सूची।

कृत् (प०)—काटना। कृन्तति। लुट्—कर्तिता। लृट्—कर्तिष्यति। आशी०—कृत्यात्। लृङ्—अकर्तिष्यत्। लिट्—चकर्त चकृततुः चकृतुः। लुङ्—अकर्तीत्।

कृष् (उ०)—जोतना। कृषति, कृषते। लुट्—कर्ष्टा, क्रष्टा लृट्—कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यते, क्रक्ष्यते। आशी०—कृष्यात्, कृक्षीष्ट। लृङ्—

अकर्प्स्यत्, अक्रक्ष्यत्, अकर्प्स्यत, अक्रक्ष्यत। लिट्—चकर्ष, चकृषे।
लुङ्—अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत्, अकृक्षत् । अकृष्ट, अकृक्षत ।

कॄ (प०)—तितर बितर करना। किरति। लुट्—करिता, करीता। लृट्—करिष्यति, करीष्यति। आशी०—कीर्यात् ।लृङ्—अकरिष्यत्, अकरीष्यत्। लिट्—चकार चकरतुः चकरुः। चकरिथ। लुङ्—अकारीत् अकारिष्टाम् अकारिषुः।

गॄ (प०)—निगलना। गिरति गिरतः गिरन्ति तथा गिलति, गिलतः गिलन्ति भी। लुट्—गरिता, गरीता। गलिता, गलीता। लृट्—गरिष्यति गरीष्यति। गलिष्यति, गलीष्यति। आशी०—गीर्यात्। लिट्—जगार जगरतुः जगरुः। जगाल जगलतुः। जगलिथ। लुङ्—अगारीत्। अगालीत्।

त्रुट् (प०)—टूट जाना। त्रुटति। लुट्—त्रुटिता। लृट्—त्रुटिष्यति। आशी०—त्रुट्यात्। लिट्—तुत्रोट, तुत्रुटतुः तुत्रुटुः। तुत्रुटिथ तुत्रुटथुः तुत्रुट। लुङ्—अत्रुटीत् अत्रुटिष्टाम् अत्रुटिषुः।

प्रच्छ (प०)—पूछना। पृच्छति पृच्छतः पृच्छन्ति। लुट्—प्रष्टा प्रष्टारौ प्रष्टारः। लृट्—प्रक्ष्यति। आशी०—पृच्छ्यात्। लृङ्—अप्रक्ष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
म० पु०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
म० पु०	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
उ० पु०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

मिल् (उ०)—मिलना। मिलति मिलते। लिट्—मिमेल मिमिलतु मिमिलु। मिमेलिथ मिमिलथुः मिमिल । मिमेल मिमिलिव मिमिलिम। मिमिले मिमिलाते मिमिलिरे। लुङ्- अमेलीत् अमेलिष्टाम् अमेलिषुः। अमेलिष्ट अमेलिषाताम् अमेलिषत। लुट्—मेलिता। लृट्—मेलिष्यति मेलिष्यते। आशी०—मिल्यात् मेलिषीष्ट। लृङ्—अमेलिष्यत् अमेलिष्यत।

मुच् (उ०)—छोड़ना। मुञ्चति मुञ्चतः मुञ्चन्ति। मुञ्चते मुञ्चेते मुञ्चन्ते। लुट्—मोक्ता। लृट्—मोक्ष्यति मोक्ष्यते। आशी०—मुच्यात् मुक्षीष्ट। लृङ्—अमोक्ष्यत् अमोक्ष्यत।

परोक्षभूत—लिट्, परस्मैपद

प्र० पु०	मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः
म० पु०	मुमोचिथ	मुमुचथु	मुमुच
उ० पु०	मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम

परोक्षभूत—लिट्, आत्मनेपद

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

सामान्यभूत—लुङ्, परस्मैपद

प्र० पु०	अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्
म० पु०	अमुचः	अमुचतम्	अमुचत
उ० पु०	अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम

सामान्यभूत—लुङ्, आत्मनेपद

प्र० पु०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

लिख् (प०)—लिखना। लिखति। लुट्—लेखिता। लृट्—लेखिष्यति। आशी०—लिख्यात्। लृङ्—अलेखिष्यत्। लिट्—लिलेख लिलिखतुः लिलिखुः। लिलेखिथ लिलिखथुः लिलिख। लुङ्—अलेखीत्।

लिप (उ०)—लीपना। लिम्पति लिम्पतः लिम्पन्ति। लिम्पते लिम्पेते लिम्पन्ते। लुट्—लेप्ता। लृट्—लेप्स्यति लेप्स्यते। आशी०—लिप्यात्। लिप्सीष्ट लिप्सीयास्ताम् लिप्सीरन्। लिट्—लिलेप लिलिपतुः लिलिपुः। लिलिपे लिलिपाते लिलिपिरे। लुङ्—अलिपत। अलिपत अलिपेताम् अलिपन्त। अलिप्त अलिप्साताम् अलिप्सत।

विश (प०)—घुसना। विशति। लुट्—वेष्टा। लृट्—वेक्ष्यति। आशी०—विश्यात्। लृङ्—अवेक्ष्यत्। लिट्—विवेश। लुङ्—अविक्षत्।

सद (प०)—दुःखी होना, सहारा लेना, जाना। सीदति। लुट्—सत्ता। लृट्—सत्स्यति। आशी०—सद्यात्। लृङ्—असत्स्यत्। लिट्—

ससाद सेदतुः सेदुः । सेदिथ ससत्थ सेदथुः सेद । ससाद, ससद सेदिव सेदिम । लुङ्—असदत् असदताम् असदन् ।

सिच् (उ०)—छिड़कना, सींचना । सिञ्चति सिञ्चते । लुट्—सेक्ता । लृट्—सेक्ष्यति सेक्ष्यते । आशी०—सिच्यात् सिक्षीष्ट । लिट्—सिषेच सिषिचतुः सिषिचुः । सिषेचिथ । लुङ्—असिचत् । असिचत असिक्त ।

सृज् (प०)—बनाना । सृजति । लुट्—स्रष्टा । लृट्—स्रक्ष्यति । आशी०—सृज्यात् । लृङ्—अस्रक्ष्यत् । लिट्—ससर्ज ससृजतुः ससृजुः । ससर्जिथ, सस्रष्ठ ससृजथुः ससृज । ससर्ज ससृजिव ससृजिम । लुङ्—अस्राक्षीत् अस्राष्टाम् ।

स्पृश् (प०)—छूना । स्पृशति । लुट्—स्पर्ष्टा, स्प्रष्टा । लृट्—स्प्रक्ष्यति । आशी०—स्पृश्यात् । लिट्—पस्पर्श पस्पृशतुः पस्पृशुः । पस्पर्शिथ पस्पृशथुः पस्पृश । पस्पर्श पस्पृशिव पस्पृशिम । लुङ्—अस्प्राक्षीत् अस्प्राष्टाम् अस्प्राक्षुः । अस्प्राक्षीः अस्प्राष्टम् अस्प्राष्ट अस्प्राक्षम् अस्प्राक्ष्व अस्प्राक्ष्म ; तथा—अस्पार्क्षीत् अस्पार्ष्टाम् अस्पार्क्षुः और अस्पृक्षत् अस्पृक्षताम् अस्पृक्षन् ।

स्फुट (प०)—खुलना, खिलना या फट जाना । स्फुटति । लुट्—स्फुटिता लृट्—स्फुटिष्यति । आशी०—स्फुट्यात् । लिट्—पुस्फोट पुस्फुटतुः पुस्फुटुः । पुस्फुटिथ पुस्फुटथुः पुस्फुट । पुस्फोट पुस्फुटिव पुस्फुटिम । लुङ्—अस्फुटीत् अस्फुटिष्टाम् अस्फुटिषुः । अस्फुटीः अस्फुटिष्टम् अस्फुटिष्ट । अस्फुटिषम् अस्फुटिष्व अस्फुटिष्म ।

स्फुर् (प०)—काँपना, फड़कना, लपलपाना, चमकना। स्फुरति। लुट्—स्फुरिता। लृट्—स्फुरिष्यति। आशी०—स्फुर्यात्। लिट्—पुस्फोर पुस्फुरतुः पुस्फुरु। पुस्फुरिथ। लुङ्—अस्फुरीत् अस्फुरिष्टाम् अस्फुरिषुः।

(७) रुधादिगण

१५६—इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना, घेरना) है, इस कारण इसका नाम रुधादि है। इसमें २५ धातुएँ हैं। धातु के प्रथम स्वर के उपरान्त इस गण में श्नम् (न) अथवा न् जोड़ा जाता है, जैसे—क्षुद्+ति=क्षु+न+द्+ति=क्षु+ण+द्+ति=क्षुणत्ति। क्षुद्+यात्=क्षु+न्+द्+यात्=क्षुन्द्यात्।

नीचे मुख्य मुख्य धातुओं के रूप दिखाये जाते हैं।

उभयपदी

(क) रुध्—रोकना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु

म० पु०	रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
म० पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरुणत्, अरुणद्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुणः, अरुणत्	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुरोध	रुरुधतु	रुरुधुः
म० पु०	रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध
उ० पु०	रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अरुधत् / अरौत्सीत्	{ अरुधताम् / अरौद्धाम्	{ अरुधन् / अरौत्सुः
म० पु०	{ अरुधः / अरौत्सीः	{ अरुधतम् / अरौद्धम्	{ अरुधत / अरौद्ध
उ० पु०	{ अरुधम् / अरौत्सम्	{ अरुधाव / अरौत्स्व	{ अरुधाम / अरौत्स्म
लुट्—	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
लृट्—	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति

आशी०—	रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः
लृङ्—	अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्द्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्द्ध्वम्
उ० पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्द्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्द्ध्वम्
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
म० पु०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिढ्वे,-ध्वे

उ० पु०	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
म० पु०	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
उ० पु०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
म० पु०	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
उ० पु०	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे
आशी०—	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
लृङ्—	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त

उभयपदी

(ख) छिद्—काटना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
म० पु०	छिनत्सि	छिन्थः	छिन्थ
उ० पु०	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
म० पु०	छिन्द्धि	छिन्तम्	छिन्त
उ० पु०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
म० पु०	छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
उ० पु०	छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
म० पु०	अच्छिनः, अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उ० पु०	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः
म० पु०	चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद
उ० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
म० पु०	अच्छिदः	अच्छिदतम्	अच्छिदत
उ० पु०	अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम

अथवा

प्र० पु०	अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः

म० पु०	अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
उ० पु०	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
लृट्—	छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति
आशी०—	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः
लृङ्—	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्	अच्छेत्स्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
उ० पु०	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्

उ० पु०	अच्छिन्धि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे
म० पु०	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे
उ० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अच्छित्त	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
म० पु०	अच्छित्थाः	अच्छित्साथाम्	अच्छिद्ध्वम्
उ० पु०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तार
लृट्—	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
आशी०—	छित्सीष्ट	छित्सीयास्ताम्	छित्सीरन्
लृङ्—	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त

परस्मैपदी

(ग) भञ्ज्—तोड़ना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
म० पु०	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
उ० पु०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भनक्तु, भङ्क्तात्	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु

म० पु०	भङ्ग्धि, भङ्क्तात्	भङ्क्तम्	भङ्क्त
उ० पु०	भनजानि	भनजाव	भनजाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
म० पु०	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उ० पु०	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
म० पु०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उ० पु०	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
म० पु०	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
उ० पु०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्ताम्	अभाङ्क्षुः
म० पु०	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्तम्	अभाङ्क्त
उ० पु०	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म
लुट्—	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
लृट्—	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
आशी०—	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः

लृङ्—	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	अभङ्क्ष्यन्

उभयपदी

(घ) भुज्—रक्षा करना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
म० पु०	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ
उ० पु०	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
म० पु०	भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उ० पु०	भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः
म० पु०	भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात
उ० पु०	भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभुनक्—ग्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
म० पु०	अभुनक्—ग्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उ० पु०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः
म० पु०	बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज
उ० पु०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः
म० पु०	अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त
उ० पु०	अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म
लुट्—	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
लृट्—	भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति
आशी०—	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः
लृङ्—	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान - लट्

प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुन्ज्वहि	अभुन्ज्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
म० पु०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
उ० पु०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
म० पु०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
उ० पु०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि
लुट्—	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
लृट्—	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
आशी०—	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	भुक्षीरन्
लृङ्—	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त

(८) तनादिगण

१५७–इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, इस लि इस का नाम तनादि है। इसमें दस धातुएँ हैं। धातु और प्रत्य के बीच में, इस गण में उ जोड़ा जाता है, जैसे—तन्+उ+ते तनुते।

[नोट—नियम १५३ में उद्धृत नोट यहाँ भी लागू होता है

नीचे तन् और कृ धातुओं के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी

(क) तन्—फैलाना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
म० पु०	तनोषि	तनुथः	तनुथ
उ० पु०	तनोमि	{ तनुवः { तन्वः	{ तनुमः { तन्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
म० पु०	तनु	तनुतम्	तनुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः
म० पु०	तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात
उ० पु०	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म० पु०	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
उ० पु०	अतनवम्	अतनुव, अतन्व	अतनुम, अतन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ततान	तेनतुः	तेनुः
म० पु०	तेनिथ	तेनथुः	तेन
उ० पु०	ततान, ततन	तेनिव	तेनिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः
म० पु०	अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट
उ० पु०	अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म

अथवा

प्र० पु०	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषुः
म० पु०	अतानीः	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
उ० पु०	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म

लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लृट्—	तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति
आशी०—	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः
लङ्—	अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	अतनिष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म० पु०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ० पु०	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, त

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म० पु०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ० पु०	तन्वै	तन्वावहै	तन्वामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म० पु०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ० पु०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म० पु०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्

उ० पु०	अतन्वि	अतनुवहि / अतन्वहि	अतनुमहि / अतन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तेने	तेनाते	तेनिरे
म० पु०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
उ० पु०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतत, अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
म० पु०	अतथाः, अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
उ० पु०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि
लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लृट्—	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
आशी०—	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	तनिषीरन्
लृङ्—	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त

उभयपदी

(ख) कृ—करना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रतु	चक्रुः
म० पु०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार, चकर	चकृव	चकृम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म
लुट्—	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
लृट्—	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति

आशी०—	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
लृङ्—	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	कुर्वै	कुर्वावहै	कुर्वामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० पु०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे

म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृध्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
म०पु०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उ० पु०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि
लुट्—	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तार
लृट्—	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
आशी०—	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
लृङ्—	अकरिष्यत्	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

(९) क्र्यादिगण

१५८——इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, इस कारण इसका नाम क्र्यादिगण पड़ा। इसमें ६१ धातुएँ है। धातु और प्रत्यय के बीच में, इस गण में श्ना (ना) जोड़ा जाता है किन्हीं प्रत्ययो के पूर्व यह ना न हो जाता है, और किन्ही के पूर्व नी। धातु की उपधा में यदि वर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनुस्वार हो तो उसका लोप हो जाता है।

व्यंजनान्त धातुओं के उपरान्त आज्ञा के म० पु० एकवचन में हि प्रत्यय के स्थान में आन होता है; जैसे—मुष्+हि=मुष्+आन=मुषाण।

नीचे मुख्य धातुओं के रूप दिए जाते है।

उभयपदी

क्री—ख़रीदना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
म० पु०	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उ० पु०	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
म० पु०	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उ० पु०	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
म० पु०	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ० पु०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म० पु०	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ० पु०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः
म० पु०	चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय
उ० पु०	चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः
म० पु०	अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट
उ० पु०	अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म
लुट्—	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
लृट्—	क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति
आशी०—	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
लृङ्—	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्

क्री

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्

उ० पु०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म० पु०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० पु०	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म० पु०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
उ० पु०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
म० पु०	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्
उ० पु०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि
लुट्—	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
लृट्—	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
आशी०—	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
लृङ्—	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त

उभयपदी

ग्रह्—लेना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयु·
म० पु०	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
म० पु०	जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह

उ० पु०	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः
म० पु०	अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म
लुट्—	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
लृट्—	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति
आशी०—	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः
लृङ्—	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
म० पु०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
म० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म० पु०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्

उ० पु०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
म० पु०	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
उ० पु०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म० पु०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे,-ढ्वे
उ० पु०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
म० पु०	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीध्वम्,-ढ्वम्
उ० पु०	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीता
लृट्—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीष्यते
आशी०—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीषीष्ट
लृङ्—	प्र० पु०	एकवचन	अग्रहीष्यत

उभयपदी

ज्ञा—जानना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानाति	जानीतः	जानन्ति

म० पु०	जानासि	जानीथः	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीवः	जानीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट

उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्—	,, ,,	,,	ज्ञास्यति
आशी०—	,, ,,	,,	ज्ञेयात् ज्ञायात्
लृङ्—	,, ,,	,,	अज्ञास्यत्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ० पु०	जाने	जानीवहे	जानीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म० पु०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्

उ० पु०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
म० पु०	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्—	,, ,,	,,	ज्ञास्यते
आशी०—	,, ,,	,,	ज्ञासीष्ट
लृङ्—	,, ,,	,,	अज्ञास्यत

परस्मैपद

बन्ध्—बाँधना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बध्नाति	बध्नीत	बध्नन्ति
म० पु०	बध्नासि	बध्नीथ	बध्नीथ
उ० पु०	बध्नामि	बध्नीव	बध्नीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु

म० पु०	बधान	बध्नीतम्	बध्नीत
उ० पु०	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः
म० पु०	बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात
उ० पु०	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्
म० पु०	अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत
उ० पु०	अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः
म० पु०	बबन्धिथ, बबन्द्ध	बबन्धथुः	बबन्ध
उ० पु०	बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभान्त्सीत्	अभान्ताम्	अभान्त्सुः
म० पु०	अभान्त्सीः	अभान्तम्	अभान्त
उ० पु०	अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म

लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	बन्द्धा
लृट्—	,, ,,	,,	भन्त्स्यति
आशी०—	,, ,,	,,	बध्यात्
लृङ्—	,, ,,	,,	अभन्त्स्यत्

(१०) चुरादिगण

१५९—इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, इस कारण इसका नाम चुरादिगण पड़ा। धातुपाठ में इस गण की ४११ धातुएं पठित हैं। इसमें धातु और प्रत्यय के बीच में अय जोड़ दिया जाता है तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण हो जाता है और यदि उपधा में ऐसा अ हो जिसके अनन्तर संयुक्ताक्षर न हो तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ— चुर्+अय+ति = चोर्+अय+ति= चोरयति। तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति=ताडयति। नी+अय+ति=ने+अय+ति=नाय्+अय+ति=नाययति

नीचे चुर् धातु के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी

चुर्—चुराना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
म० पु०	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उ० पु०	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु

म० पु०	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
म० पु०	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
उ० पु०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयामास	चोरयामासतुः	चोरयामासुः
म० पु०	चोरयामासिथ	चोरयामासथुः	चोरयामास
उ० पु०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम

अथवा

प्र० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूवतुः	चोरयाम्बभूवुः
म० पु०	चोरयाम्बभूविथ	चोरयाम्बभूवथुः	चोरयाम्बभूव
उ० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूविव	चोरयाम्बभूविम

अथवा

प्र० पु०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रतुः	चोरयाञ्च[illegible]
म० पु०	चोरयाञ्चकर्थ	चोरयाञ्चक्रथुः	चोरयाञ्च[illegible]
उ० पु०	{ चोरयाञ्चकार { चोरयाञ्चकर	चोरयाञ्चकृव	चोरयाञ्चकृ[illegible]

विस्तार बताने के लिए) हिम और अरण्य के अनन्तर, ख़राब यव अर्थ में यव के अनन्तर, यवनों की लिपि का बोध कराने के लिए यवन अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर ङीप् लगने के पूर्व आनुक् (आन) जोड़ दिया जाता है—इन्द्राणी, भवानी आदि, यवानी (ख़राब जौ), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी, उपाध्यायानी।

(ग) अकारान्त[1] ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में य न हो ङीप् लगकर स्त्रीलिङ्ग होते है; जैसे—ब्राह्मणः—ब्राह्मणी, हरिणी, मृगी।

(घ) उकारान्त गुणवाची शब्दो के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीप् लगाते है, जैसे—मृदु से मृदु अथवा मृद्वी। किन्तु यदि उपधा में उ हो तो ङीप् नहीं लगेगा—पाण्डु पु० तथा स्त्री० दोनो में।

इ अथवा ई से अन्त होनेवाले गुणवाची शब्दो का पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनो मे समान रूप रहता है: जैसे—शुचि, सुधी।

---

[1] जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। ४। १। ६३।

स० व्या० प्र०—३६

त्रयोदश सोपान

अव्यय विचार

२००–अव्यय[1] ऐसे शब्द को कहते है जिसके रूप मे वे विकार न उत्पन्न हो, वह सदा एक सा रहे। जिसका खर्च न अर्थात् जो लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार घटे बढे नहीं व अव्यय है।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

उदाहरणार्थ—उच्चैः (ऊँचे), नीचैः (नीचे), अभि (चारो ओर), हा आदि।

अव्यय चार प्रकार के होगेः—(१) उपसर्ग, (२) क्रि विशेषण, (३) समुच्चयबोधक शब्द (conjunctions) त (४) मनोविकार सूचक शब्द (interjections) । इ अतिरिक्त प्रकीर्णक।

उपसर्ग

२०१–धातु या धातु से बने हुए विशेषण, जो संज्ञा अ शब्दो के पूर्व जोडे जाते हैं उनको उपसर्ग कहते हैं। इनके द धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है, इनके द्वारा ही धातु

1 स्वरादिनिपातमव्ययम्। १। १। ३७।

विविध अर्थों का प्रकाश होता है। उदाहरणार्थ कृ धातु का अर्थ है 'करना' किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगा कर अपकार, उपकार, अधिकार आदि शब्द बनते है। सिद्धान्तकौमुदीकार कहते हैः—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

किसी उपसर्ग से कभी धातु का अर्थ उलटा हो जाता है, कभी वही रहते हुए अधिक विशिष्ट हो जाता है और कभी ठीक वही। यही भाव इस श्लोक में दिया है :—

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥

उदाहरणार्थ—'जयः' का अर्थ है 'जीत' किन्तु 'पराजयः' का अर्थ हुआ 'हार' उससे बिल्कुल उलटा. भू–का अर्थ है 'होना' किन्तु 'अभिभू' का अर्थ है 'हराना'. 'प्रभु' का अर्थ है 'सामर्थ्यवान् होना'; 'कृष्' का अर्थ है 'खींचना' किन्तु 'प्रकृष्' का 'खूब ज़ोर से खींचना' इत्यादि।

नीचे उपसर्ग इन मुख्य अर्थों सहित जो बहुधा उनके साथ चलते हैं दिए जाते हैं।

---

[१] प्र परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु उद्, अभि, प्रति, परि, उप। एते प्रादयः उपसर्गाः क्रियायोगे। गतिश्च। १।४।५८—६०।

अति—का अर्थ बाहुल्य अथवा उल्लघन होता है , जैसे – अतिक्रमः-सीमा का उल्लघन, अतिनिद्रा–अधिक नींद ।

अधि—ऊपर; जैसे अधिकारः-ऊपरी काम, जिसमें दूसरे वश में हों ।

अनु—पीछे, साथ; जैसे अनुगमनम् ।

अप—दूर; जैसे अपहारः–दूर ले जाना, अपकारः ।

अपि—निकट; जैसे अपिधानम्–ढक्कन (अपि का विकल्प से अ लुप्त होजाता है—अपिधानम् , पिधानम्) ।

अभि—ओर; जैसे अभिगमनम्—किसी की ओर जाना

अव—दूर ; नीचे; जैसे अवतार—नीचे आना, अवमानः—नीचे मानना ।

आ – तक, कम ; जैसे आच्छद्—चारों ओर तक ढकना, आकम्प—कुछ काँपना ।

उद्—ऊपर, जैसे उद्गम्—ऊपर जाना (निकलना), उत्पत्—ऊपर गिरना (उड़ना) ।

उप—निकट, जैसे उपासना—निकट बैठना (प्रार्थना) ।

दुर्—बुरा, जैसे दुराचार—खराब काम ।

दुस्—कठिन; जैसे दुष्करः—करने मे कठिन, दुःसहः—सहने में कठिन ।

नि—नीचे आदि, जैसे निपत्—नीचे गिरना, निकाय—समूह ।

निर् – बाहर; जैसे निर्गम्—बाहर निकलना, निर्दोषः – दोष बाहर ।

निस्—बिना, बाहर; जैसे निःसारः—सार रहित, निःशङ्कः—शङ्का रहित ।

परा—पीछे, उल्टा, जैसे पराजयः—हार, पराभवः—हार, परागत—चला गया ।

परि—चारो ओर, जैसे परिखा—चारों ओर की खाई।

प्र—अधिक, जैसे प्रणामः—अधिक झुकना ।

प्रति—ओर, उलटा; जैसे प्रतिकारः—बदला, प्रतिगम्—किसी की ओर जाना ।

वि—बिना, अलग, जैसे विचलः— दूर चला हुआ, वियोग ।

सम्—अच्छी तरह, जैसे संस्कार—अच्छी तरह किया हुआ काम

सु—अच्छी तरह, जैसे सुकृतम्—पुण्य (अच्छी तरह किया हुआ)।

इनमें से एक या कई उपसर्ग धातु, क्रिया अथवा धातु से निर्मित अन्य शब्दों के पूर्व जुड़े मिलते हैं और भिन्न २ अर्थों में, ऊपर के अर्थ केवल निर्देशमात्र हैं ।

(ख) इनके अतिरिक्त कुछ और शब्द भी हैं उनको भी धातु आदि के पूर्व लगाते हैं, इनका नाम 'गति' है । मुख्य २ गति शब्द ये हैं :—

चमत्—जैसे चमत्कार ।

सत्—जैसे सत्कार, सद्गतिः ।

नम —(कृ के पूर्व) नमस्कार ।

साक्षात्— " " साक्षात्कार ।

[illegible] तिरोहितः—छिपा हुआ ।

अन्तर्—(गत्यर्थक धातुओं के पूर्व)—अन्तर्गतः, अन्तर्लीनः, आदि ।

आविः—(कृ, अस्, भू के पूर्व) आविष्कारः, आविर्भूतः ।

प्रादुः—(,, ,, ,,) प्रादुष्कारः, प्रादुर्भूतः ।

तिरः—(भू और धा के पूर्व) तिरोभूतः, तिरोहितः ।

पुरः—(कृ, भू, गम् के पूर्व) पुरस्कारः, पुरोगतः, पुरोभवः ।

स्वी—(कृ, के पूर्व) स्वीकारार्थ, स्वीकृतः आदि ।

न[1] (नञ्) प्रायः,सादृश्य (जैसे अब्राह्मणः—ब्राह्मण नहीं, किन्तु उसी के सदृश कोई और), अभाव (जैसे ज्ञानस्य भाव —अज्ञानम्), अन्यप्रकार (जैसे अयं अपटः—यह कपडे से भिन्न है), अल्पता (जैसे अनुदरा कन्या—कम पेटवाली), बुराई (जैसे अकार्य) अथवा विरोध (जैसे अनीति.—नीतिविरोध) का बोध उपसर्ग रूप लगकर करता है ।

कुछ अव्यय शब्द के अन्त में भी लगते है; जैसे किम् के उपरान्त चित् अथवा चन अनिश्चय का बोध कराने के लिए और वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर स्म—भूतकाल का बोध कराने के लिए लगता है ।

२०२-क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्वः आदि अव्ययो में गिनाए हुए शब्द हैं, जैसे—पृथक् विना, वृथा आदि; कुछ सर्वनामो से बनते है, जैसे —इदानीम्, यथा, तथा आदि, कुछ संख्यावाची शब्दो से बनते हैं जैसे—एकधा, द्विधा, द्विः; त्रि. आदि और कुछ संज्ञाओ में तद्धित प्रत्यय लगाकर ; जैसे—पुत्रवत्, भस्मसात् आदि । इसके अतिरिक्त

१—तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥

संज्ञाओं को द्वितीया के एकवचन में बहुधा क्रियाविशेषण स्वरूप प्रयोग में लाते हैं; जैसे सत्यम्, चिरेण, सुखम् आदि।

(क) नीचे अकारादिक्रम से मुख्य २ प्रचलित क्रियाविशेषण दिए जाते हैं—

अकस्मात्—एकबारगी
अग्रतः—आगे
अग्रे—पहले
अचिरम्— }
अचिरात्— } शीघ्र
अचिरेण— }
अजस्रम्—निरन्तर
अन्तः—अन्दर
अतः—इसलिए
अतीव—बहुत
अत्र—यहाँ
अथ—तब, फिर
अथकिम्—हाँ, तो क्या
अद्य—आज
अधः— }
अधस्तात्— } नीचे
अपरम्—और
अपरेद्युः—दूसरे दिन
अधुना—अब
अनिशम्—निरन्तर
अन्तरेण—बारे में
अन्तरा—बिना
अन्तरे—बीच में
अन्यच्च—और
अन्यत्र—दूसरी जगह
अन्यथा—दूसरी तरह
अभितः—चारों ओर, पास
अभीक्ष्णम्—निरन्तर
अर्वाक्—पहले
अलम्—बस
असकृत्—कई बार
असम्प्रति— }
असाम्प्रतम्— } अनुचित
आरात्—दूर, समीप
इतः—यहाँ से
इतस्ततः—इधर उधर
इति—इस प्रकार

इत्थम्—इस प्रकार
इदानीम्—इस समय
इह—यहाँ
ईषत्—कुछ, थोड़ा
उच्चैः—ऊँचे
उभयतः—दोनों ओर
ऋतम्—सच
ऋते—बिना
एकत्र—एक जगह
एकदा—एक बार
एकधा—एक प्रकार
एकपदे—एक साथ
एतर्हि—अब
एव—ही
एवम्—इस तरह
कच्चित्— } क्या ?
कच्चन— }
कथम्—कैसे ?
कथञ्चन— } किसी प्रकार
कथञ्चित्— }
कदा—कब
कदाचित्—कभी, शायद

कदापि—कभी
कदापि न—कभी नहीं
किञ्च—और
किन्तु—लेकिन
किम्—क्या ? क्यों ?
किमुत—और कितना ?
किम्वा—या
किल—सचमुच
कुतः—कहाँ से
कुत्र—कहाँ
कुत्रचित्—कहीं
कृतम्—बस, होगया
केवलम्—सिर्फ़
क्व—कहाँ
क्वचित्—कहीं
खलु—निश्चय करके
चिरम्—देर तक
जातु—कभी भी
झटिति—जल्दी
तत्—इसलिए
ततः—फिर
तत्र—वहाँ

तदा—तब

तदानीम्—तब

तथा—उस तरह

तथाहि—जैसे (विशद रूप से वर्णन)

तस्मात्—इसलिए

तर्हि—तब

तावत्—तब तक

तिरः— }
तिर्यक्— } —तिरछे

तूष्णीम्—चुपचाप

दिवा—दिन में

दिष्ट्या—सौभाग्य से

दूरम्—दूर

दोषा—रात को

द्राक्—शीघ्र, फौरन

ध्रुवम्—निश्चय ही

नक्तम्—रात को

न—नहीं

न परम्—परन्तु

नाना—तरह तरह से

नाम—नाम वाला, नामी

निकषा—निकट

नीचैः—नीचे

नूनम्—निश्चित

नो—नहीं

परम्—फिर परन्तु

परश्वः—परसों

परितः—चारों ओर

परेद्युः—दूसरे दिन (कल)

पर्याप्तम्—काफ़ी

पश्चात्—पीछे

पुनः—फिर

पुरत— }
पुर— } आगे
पुरस्तात्— }

पुरा—पहले

पूर्वेद्युः पहले दिन (कल)

पृथक्—अलग अलग

प्रकामम्—यथेष्ट, बहुत

प्रतिदिनम्—हर रोज़

प्रत्युत—उलटे

प्रसह्य—ज़बर्दस्ती

प्राक्—पहले

प्रातः—सवेरे

प्रायः—अक्सर

प्रेत्य—मरकर, दूसरी दुनिया में

बलात्—ज़बर्दस्ती

बहिः—बाहर

बहुधा—बहुत प्रकार से

भूयः—फिर फिर, अधिक

भृशम्—बार बार, अधिकाधिक

मनाक्—थोड़ा

मिथः—परस्पर

मिथ्या—झूठ

मुधा—बेकार

मुहुः—बार बार

मृषा—झूठ, बेकार

यत्—जो, क्योंकि

यतः—क्योंकि

यत्र—जहाँ

यथा—जैसे

यथाकथा—जैसे तैसे

यथायथा—जैसे जैसे

यदा—जब

यावत्—जब तक

युगपत्—साथ साथ, इकबारगी

विना—बिना

वृथा—बेकार

वै—निश्चय

शनैः—धीरे धीरे

श्वः—कल (आनेवाला दिन)

शश्वत्—सदा

सकृत्—एक बार

सततम्—बराबर, सब दिन

सदा—हमेशा

सद्यः—तुरन्त

सना—सब दिन

सपदि—तुरन्त, शीघ्र

समन्तात्—चारों ओर

समम्—बराबर बराबर

समया—निकट

समीपे, समीपम्—निकट

समीचीनम्—ठीक

सम्प्रति—इस समय, अभी

सम्मुखम्—सामने, मुँह दर मुँह

सम्यक्—भली प्रकार

सर्वतः—चारों ओर

सर्वत्र—सब कहीं

सर्वथा—सब प्रकार से
सर्वदा—सब दिन
सह—साथ
सहसा—एकबारगी
सहितम्—साथ
साकम्—साथ
साक्षात्—आँखों के सामने
सार्धम्—साथ
साम्प्रतम्—अब, उचित
सायम्—शाम को
सुष्ठु—अच्छी तरह
स्वस्ति—(आशीर्वाद)
स्वयम्—अपने आप
हि—इसलिये
ह्यः—कल (पूर्वदिन)

२०३—समुच्चयबोधक शब्द

च—और शब्द का अर्थ संस्कृत में बहुधा च शब्द से जतलाया जाता है, किन्तु जहाँ 'और' हिन्दी में दो जोड़े हुए शब्दों के बीच में आता है, जैसे—राम और गोविन्द, वहाँ संस्कृत में च शब्द दोनों के उपरान्त आता है, अथवा अलग अलग दोनों के उपरान्त, जैसे—रामो गोविन्दश्च अथवा रामश्च गोविन्दश्च। च को बहुधा अन्य समुच्चय बोधक शब्दों के अनन्तर भी जोड़ देते हैं, जैसे—अथच, परञ्च, किञ्च।

अथ—अथो, अथच—वाक्य के आदि में आते हैं और बहुधा 'तब' का अर्थ बताते हैं, इसके पूर्व कुछ वाक्य आचुके हुए होते हैं अथवा प्रकरण में कुछ बीत चुका होता है।

तु—तो, वाक्य के आदि में नहीं आता, स तु गतः—वह तो गया आदि। किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन।

वा—वा के अर्थ में। च की तरह इसका भी प्रयोग प्रत्येक शब्द के

उपरान्त अथवा दोनो के उपरान्त होता है, जैसे रामो गोविन्दो वा—राम या गोविन्द अथवा रामो वा गोविन्दो वा।

अथवा—इसका भी प्रयोग वा की तरह, उसी अर्थ में होता है।

चेत्, यदि—यदि, अगर।

तद्यपि—तब भी।

नोचेत्—नहीं तो।

यदि—तदि—यदि, तो

तत्—इसलिए।

हि—क्योंकि।

यावत् तावत्—जब तक-तब तक।

यदा तदा—जब-तब।

इति—वाक्य के अन्त में समाप्तिसूचक, जैसे—अहम् गच्छामि इति सोऽवदत्। इससे हिन्दी की 'कि' का बोध होता है। 'कि' का बोध यत् से भी होता है, किन्तु यह वाक्य के आदि में आता है, जैसे—सोऽवदत् यदहं गच्छामि।

२०४-मनोविकारसूचक अव्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। मुख्य मुख्य दिए जाते हैं।

हन्त—हर्षसूचक।

आ, हुम्, हम्—क्रोधसूचक।

हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक।

बत—दयासूचक।

विम्, धिक्—धिक्कार सूचक।

अङ्ग, अयि, अये, अहोवत, भोः—आदरसहित बुलाने के काम में आते हैं। अरे, रे, रेरे—अवज्ञा से बुलाने में।

२०५—प्रकीर्णक अव्यय

ऊपर[1] कह आए हैं कि जो विभक्ति लिङ्ग और वचन के अनुसार रूप परिवर्तन को प्राप्त न हो वही अव्यय है। इस गणना के अनुसार कई तद्धित प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ समासान्त अव्यय शब्द हैं।

तद्धितों[2] में—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रल् प्रत्ययान्त, दा प्रत्ययान्त, दानीम् प्रत्ययान्त, अधुना, कर्हि, यर्हि, तर्हि, सद्यः से लेकर उत्तरेद्युः तक (५ । ३ । २२), थाल् प्रत्ययान्त, दिक् और कालवाचक पुरः, पश्चात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धमुञ् प्रत्ययान्त (एकधा आदि) शस् प्रत्ययान्त (बहुशः, अल्पशः आदि), च्वि प्रत्ययान्त, साति प्रत्ययान्त, कृत्वसुच् प्रत्ययान्त ([illegible]) तथा इसके अर्थ में आने वाले।

कृदन्तों[3] में—कृदन्तों में जो म् से अन्त होनेवाले हों; जैसे—णमुल् प्रत्ययान्त (स्मारं स्मारम् आदि), तुमुन् प्रत्ययान्त तथा जो ए, ऐ, ओ औ से अन्त होनेवाले हों; जैसे जीवसे (तुमर्थ प्रत्यय असे लगा कर), पिबध्यै

---

१ अव्ययादाप्सुपः । २ । ४ । ८२ ।

२ तद्धितश्चासर्वविभक्तिः । १ । १ । ३८ ।

३ कृन्मेजन्तः । १ । १ । ३९ ।

(तुमर्थ शध्यै प्र०) ; तथा[1] क्त्वा (और क्त्वार्थ ल्यप्) में अन्त होनेवाले शब्द तथा तोसुन्, कसुन् प्रत्ययों में अन्त होनेवाले शब्द ।

अव्ययीभाव[2] समास—अधिहरि, यथाशक्ति, अनुविष्णुम् ।

---

१ क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ४० ।

२ अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ ।

१—परिशेष

संस्कृत भाषा के वैयाकरण

किसी भाषा का व्याकरण तब बनता है जब या तो भिन्न भाषाओं के बोलने वालों के निरन्तर मेल जोल से अथवा उसी भाषा की कई प्रान्तीय बोलियाँ होजाने से भाषा में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है और भाषा के ऐक्य के नष्ट होने की आशङ्का होती है।

संस्कृत भाषा के आदि ग्रन्थ वेद हैं। वैदिक भाषा में जब कुछ हेर फेर समय और स्थिति के अनुसार उच्चारण के परिवर्तन के कारण प्रारम्भ हुआ तब उसको रोकने के लिए तथा वैदिक भाषा को सुव्यवस्थित रखने के लिए वेदों के प्रातिशाख्य बने। बोल चाल की संस्कृत भाषा के नियन्त्रण करने की उस समय कोई आवश्यकता नहीं हुई। पश्चात् संभवतः ईसवी सन् के कोई सात आठ सौ वर्ष पूर्व 'भाषा संस्कृत' के भी व्याकरण बनने लगे। पाणिनि के पूर्व बहुत से व्याकरणकार हो गए हैं, यद्यपि उनके ग्रन्थ आज कल उपलब्ध नहीं हैं तथापि उनके अस्तित्व का पता पाणिनि तथा अन्य वैयाकरणों के ग्रन्थों में उल्लेख होने से चलता है।

इससे प्रतीत होता है कि 'इन्द्र' नाम के कोई देवता अथवा ऋषि थे जिन्होंने पहले पहल भाषा का विभाग करके उसका रूप दर्शाया।

व्याकरण शास्त्र का अध्ययन, भारतवर्ष में विशेषरूप से किया गया है। सैकड़ों वैयाकरण होगए है और बीसियों शाखाएं हैं। सब से प्रचलित शाखा पाणिनि मुनि की है।

पाणिनि

पाणिनि मुनि किस प्रान्त में किस समय हुए इस का निश्चित ज्ञान हम लोगों को प्राप्त नहीं है। उनके ग्रन्थ अष्टाध्यायी से उनके विषय में कुछ पता नहीं चलता। जनश्रुति से उनके विषय में दो चार बातें मालूम होती है।

कहते है कि पाणिनि का निवासस्थान शालातुर (पश्चिमोत्तर प्रदेश में अटक के पास—अब एक उजड़ा हुआ ग्राम) था, इनकी माता का नाम दाक्षी और पिता का शकट था। यह बचपन मे उपाध्याय वर्ष के पास पढ़ने गए, किन्तु थोड़े ही दिनों के अनन्तर मन्दबुद्धि होने के कारण निकाल दिए गए। इससे इनको बड़ा मानसिक कष्ट हुआ और यह जंगल में जाकर कठोर तप करने लगे। शिवजी महाराज इनकी तपस्या मे प्रसन्न हुए। उन्होंने डमरू बजाकर इनको चौदह सूत्रों का ज्ञान दिया। इन्हीं सूत्रों पर पाणिनि ने अष्टाध्यायी बनाई। इनकी मृत्यु सिंह के आक्रमण मे हुई।

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय है। हर एक अध्याय मे चार पाद हैं और हर एक पाद में सूत्र है। इसी लिए पाणिनि के व्याकरण मे

ने अवतरण देते समय तीन संख्याएं देते है, जैसे—'न निर्धारणे' ।२।२।१०। इस सूत्र का पता यह है कि यह दूसरे अध्याय के दूसरे पाद का दसवाँ सूत्र है। प्रथम संख्या अध्याय का, द्वितीय पाद का और तृतीय सूत्र का नम्बर देती है। कुल किताब में लगभग चार हज़ार सूत्र हैं। यदि केवल मूलमात्र अष्टाध्यायी छापी जाए तो छोटे साइज के २५ पृष्ठों में आसकती है। संस्कृत ऐसी जटिल और विस्तृत भाषा को इतने में ही नियन्त्रित कर देना महर्षि पाणिनि का ही काम था। संक्षेप के लिए अष्टाध्यायी भारतीय साहित्य में ही नहीं, संसार के साहित्य में अद्वितीय और अनुपम है। कहते हैं कि पाणिनि संक्षेप करने का इतना चाव रखते थे कि यदि वे एक मात्रा भी किसी सूत्र से घटा पावें तो उनको पुत्र की उत्पत्ति होने का सा आनन्द आता था। अष्टाध्यायी ने और सब व्याकरणों को परास्त कर दिया। इसके विषय मे भी एक दन्तकथा है। कहते हैं कि 'विश्वामित्र' ने सब वैयाकरणों से कहा कि मेरा नाम सिद्ध करो, सब ने कहा कि सिद्धि स्पष्ट ही है-विश्वस्य अमित्रः-विश्व का वैरी। जब पाणिनि से पूछा गया कि तुम बताओ तो वह बोले.—विश्वस्य मित्रम्=विश्वामित्र (विश्व का मित्र) और कहा कि 'मित्रे चर्षौ' ।६।३।१३०। सूत्र से-श्व का अकार दीर्घ हो जायगा। इस व्युत्पत्ति से विश्वामित्र जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हारा व्याकरण ही संसार मे विजय प्राप्त करेगा।

सुभाषितावली में इनके नाम के दो एक पद्य दिए भी हैं, किन्तु संभवतः यह कपोलकल्पित हैं।

पाणिनि के समय के विषय में बड़ा मतभेद है। कोई इनको ईसवी सन् के पूर्व आठवीं शताब्दी में रखते हैं तो कोई चतुर्थ में। प्रायः ईसा के पूर्व षष्ठ शताब्दी में इनका होना भारतीय विद्वान् बहुमत से स्वीकार करते है।

कात्यायन

कात्यायन ऋषि कम से कम पाणिनि से कोई सौ वर्ष पीछे हुए होंगे। इन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों की आलोचना की है। चार सहस्र सूत्रों में से २५०० को इन्होंने ठीक मान लिया है और शेष १५०० पर टिप्पणी करके सूत्रों का कार्यक्षेत्र परिमिति अथवा विस्तृत किया है। इनकी इस आलोचना का नाम वार्तिक है। सिद्धान्त-कौमुदी में प्रत्येक सूत्र के अनन्तर वार्तिक दे दिए गए है। वार्तिक की पहचान 'वाच्यम्' आदि कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों से होती है।

कात्यायन के समय तक भाषा में इतना हेर फेर हो गया था कि पाणिनि के कुछ सूत्र ठीक नहीं लगते थे, इसीलिए वार्तिक की उपयोगिता है।

पतञ्जलि

यह ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में हुए, इनका समय निश्चित है। इन्होंने अष्टाध्यायी पर 'महाभाष्य' बनाया। इसमें इन्होंने कात्यायन के मत की समीक्षा करके पाणिनि के मत का समाधान

किया है। शैली और भाषा-लालित्य के हिसाब से पतञ्जलि का महाभाष्य अद्वितीय ग्रन्थ है। संस्कृत व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान महाभाष्य के अध्ययन के बिना असंभव है।

पाणिनि—कात्यायन—पतञ्जलि इन तीन को वैयाकरण 'मुनित्रय' कहते हैं। इनके उपरान्त कितने ही प्रख्यात वैयाकरण टीकाकार हुए। चन्द्रगोमी ने पाणिनि के आधार पर व्याकरण बनाई। जयादित्य और वामन ने काशिका नाम की अष्टाध्यायी की टीका लिखी। जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' नाम की काशिका की टीका लिखी और हरदत्त ने पदमञ्जरी लिखी। इनके अतिरिक्त भर्तृहरि, कैयट आदि और भी कितने एक प्रसिद्ध वैयाकरण हो गए हैं।

ईसवी चौदहवीं शताब्दी से ऐसे ग्रन्थ बनने लगे जिन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी का क्रम नष्ट कर दिया। व्याकरण के विषयों के अनुसार विभाग किए गए—संज्ञा, सन्धि, कारक, समास, स्त्रीप्रत्यय इत्यादि के हिसाब से सूत्र इधर उधर लौट पौट कर रक्खे गए। इसका परिणाम यह हुआ कि अष्टाध्यायी के सूत्रों से जो सरलता से और संक्षेप में काम निकलता था वह अब कष्टसाध्य हो गया। अब व्याकरण के ज्ञान के लिये कम से कम बारह वर्ष तक अध्ययन करना आवश्यक होगया। अष्टाध्यायी के स्वतन्त्र अध्ययन का लोप होगया और इन अन्धकार फैलाने वाली कौमुदियों की शरण लेनी पड़ी।

भट्टोजिदीक्षित

इस प्रकार की पुस्तकों में सब से प्रसिद्ध भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी है।

भट्टोजि के पिता का नाम लक्ष्मीधर था और गुरु का शेषकृष्ण। भट्टोजि के एक भाई थे जिनका नाम रङ्गोजि था और एक पुत्र था जिसका नाम भानु था। सिद्धान्तकौमुदी के अतिरिक्त कई ग्रन्थ भट्टोजि ने लिखे थे। इनमें से 'शब्दकौस्तुभ' नाम की एक टीका अष्टाध्याय पर है। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी (ईसवी) का प्रथमार्ध है।

सिद्धान्तकौमुदी के दो संक्षिप्त संस्करण वरदराज ने बालकों के लिए किए हैं—एक मध्यसिद्धान्तकौमुदी और दूसरी लघु-सिद्धान्तकौमुदी। इनमें से मध्यसिद्धान्तकौमुदी का अधिक प्रचार नहीं है, हाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी ख़ूब पढ़ी जाती है।

२—परिशेष

छन्द

संस्कृत काव्य गद्य और पद्य में होता है। गद्य में पदों का विभाग पादों में नहीं होता।

प्रत्येक पद्य में चार "पाद" होते हैं। पादों की व्यवस्था या तो अक्षरों (Syllable) से या मात्राओं (Syllabic instants) से होती है।

(क) अक्षर शब्द के उस भाग को कहते है जो एक ही बार के प्रयत्न मे स्वच्छन्दता-पूर्वक उच्चारण किया जा सके। एक स्वर के साथ जो व्यञ्जन लगे होते है उन्हे मिलाकर वह स्वर अक्षर कहलाता है. जैसे—

प्र. अप्. अञ्ज् इत्यादि। यदि उसके साथ कोई व्यञ्जन न भी हो तो अकेला ही वह अक्षर कहलाएगा; जैसे—अपाद शब्द में अ।

(ख) मात्रा समय के उस परिमाण को कहते है जो कि एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने मे लगता है। इसलिए ह्रस्व स्वर एक मात्रावाला होता है। दीर्घ स्वर के उच्चारण करने में ह्रस्व से दूना समय लगता है, इसलिए उसमे दो मात्राएँ होती हैं।

अक्षर दो प्रकार के होते हैं

(१) लघु (२) गुरु। "लघु" अक्षर उसे कहते हैं जिसमें स्वर ह्रस्व हो, "गुरु" अक्षर उसे कहते है जिसमे स्वर दीर्घ हो।

ह्रस्व स्वर

अ, इ, उ, ऋ और ऌ ह्रस्व स्वर है।

दीर्घ स्वर

जैसे—" गन्ध " में " ग " दीर्घ है क्योंकि " ग " के उपरान्त संयुक्ताक्षर " न्ध " आ जाता है, इसी प्रकार " संशय " में " सं " दीर्घ है, क्योंकि "स" अनुस्वारसहित है, " रामः " में "मः " दीर्घ है; क्योंकि " मः " विसर्गसहित है।

यदि किसी पद्य में पाद के अन्तवाले अक्षर को गुरु होना चाहिए, लेकिन वह ह्रस्व है तो उसे उस स्थान पर गुरु मान लेते हैं। और यदि किसी पद्य में पाद के अन्त वाले अक्षर को ह्रस्व होना चाहिए, परन्तु वह गुरु है तो उस स्थान पर उसे आवश्यकतावशात् लघु मान लेते हैं। ऐसा सम्प्रदाय है।

किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ साँस लेने के लिए क्षणभर रुक जाते है वहाँ पद्य की ' यति ' होती है। यह यतियाँ व्यवस्थित है, जहाँ यति होती हो वहाँ शब्द का अन्त होना चाहिए, मध्य नहीं।

पद्य दो प्रकार का होता है-(१) वृत्त और (२) जाति

वृत्त

जिस पद्य की रचना अक्षरों के हिसाब से होती है उसे वृत्त कहते हैं। सुविधा के लिए तीन तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं ; जैसे :—

" कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः " इस पद्य में (१) " कश्चित्का ", (२) " न्ताविर ", (३) " हगुरु ", (४) " णास्वाधि ", (५) " कारात्प्र ", ये पांच गण हैं। यहां पर (१ में)

" क " एक अक्षर है, " श्चि " दूसरा अक्षर है, " त्का " तीसरा अक्षर है, इस प्रकार तीन अक्षरों का एक गण (कश्चित्का) हुआ । इसी प्रकार (२ में) " न्ता " एक अक्षर है " वि " दूसरा अक्षर है, " र " तीसरा अक्षर है, फिर तीन अक्षरों का एक गण (न्ताविर) हुआ ।

गण आठ होते हैं :—

(१) भगण (२) जगण (३) सगण (४) यगण
(५) रगण (६) तगण (७) मगण (८) नगण

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् ।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम् ॥

(१) भगण उसे कहते हैं जिसमें पहला अक्षर गुरु तथा द्वितीय और तृतीय लघु हों ।

(२) जगण में मध्य अक्षर गुरु होता है, शेष पहला और तीसरा लघु होते हैं ।

(३) सगण में तीसरा अक्षर गुरु होता है और शेष—पहिला और दूसरा—लघु होते हैं ।

(४) यगण में केवल पहला अक्षर लघु होता है शेष दो गुरु ।

(५) रगण में दूसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु ।

(६) तगण में केवल तीसरा अक्षर लघु होता है शेष दो गुरु ।

(७) मगण में तीनों अक्षर गुरु होते हैं ।

(८) नगण में तीनो अक्षर लघु होते है।

लघु का चिह्न ऽ अथवा ⌣ है।

गुरु का चिह्न । अथवा — है।

आठो गण चिह्नो द्वारा नीचे दिखाए जाते हैं :—

(१) भगण	।ऽऽ या —⌣⌣
(२) जगण	ऽ।ऽ या ⌣—⌣
(३) सगण	ऽऽ। या ⌣⌣—
(४) यगण	ऽ।। या ⌣——
(५) रगण	।ऽ। या —⌣—
(६) तगण	।।ऽ या ——⌣
(७) मगण	।।। या ———
(८) नगण	ऽऽऽ या ⌣⌣⌣

(२) जाति

जिस पद्य की व्यवस्था मात्राओ के हिसाब से की जाती है उसे जाति कहते है। सुविधा के लिए कभी २ मात्राओ का भी गणो में विभाग करते हैं। प्रत्येक गण चार मात्राओं का होता है। जैसे :—

' येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत " इस पद्य में " येना ", " मन्दम ", " रन्दे " गण है, क्योंकि " ये " में दो मात्राएँ हैं और " ना " में दो मात्राएँ है, इस प्रकार चार मात्राएँ हुईं, इस लिए इन चार मात्राओं का एक गण (येना) हो गया।

यहां पर इस बात को ध्यान से देखना चाहिए कि अगर यह पद्य वृत्त होता तो "येना" एक गण न माना जाता, प्रत्युत वहां "येनाम" एक गण होता।

मात्रागण सब मिल कर पाँच होते हैं :—

(१) मगण	॥	या — —
(२) सगण	SSI	या ⌣ ⌣ —
(३) जगण	SIS	या ⌣ — ⌣
(४) भगण	ISS	या — ⌣ ⌣
(५) नगण	SSSS	या ⌣ ⌣ ⌣ ⌣

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) समवृत्त—वह होता है जिसमें के चारो चरण (अथवा पाद) सम से होते हैं।

(२) अर्धसमवृत्त—वह होता है जिसमे के प्रथम तथा तृतीय

समवृत्त

समवृत्त कई प्रकार के होते है। किसी के प्रत्येक चरण में १ अक्षर (Syllable) होता है, किसी के २, किसी के ३ और किसी के ४। इसी प्रकार २६ अक्षर तक चला जाता है। यहाँ पर केवल थोड़े से ऐसे समवृत्त दिखाए जाँयगे जो बहुधा साहित्यिक प्रयोग में आते हैं

८ अक्षर वाले समवृत्त

आठ अक्षर वाले समवृत्तों में से एक समवृत्त "अनुष्टुप्" है, इसे "श्लोक" भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है :—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

अर्थात् "श्लोक" के सभी चरणों में छठवाँ अक्षर (Syllable) गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है। सातवाँ अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण में ह्रस्व होता है, और पहिले और तीसरे में दीर्घ होता है। लक्षण वाला श्लोक ही उदाहरण है।

११ अक्षरवाले समवृत्त

(१) इन्द्रवज्रा

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में दो तगण, एक जगण फिर दो गुरु अक्षर होते हैं।

	तगण			तगण			जगण		ग	ग
	—	—	⏑	—	—	⏑	⏑	—	⏑	—	—
जैसे—	स्या	दि	न्द्र।	व	ज्रा	य।	दि	तौ	ज।	गौ	ग

(२) उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण तथा दो होते हैं।

⏑ — ⏑	— — ⏑	⏑ — ⏑	— —
उ पे न्द्र	व ज्रा ज	त जा स्त	तो गौ

(३) उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ

पादौयदीयावुपजातयस्ताः

उपजाति उस वृत्त को कहते हैं जो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। उदाहरणार्थ लक्षण ही को ले लीजिए:—

जगण	तगण	जगण	ग	ग
⏑ — ⏑	— — ⏑	⏑ — ⏑	—	—
अ न न्त	रो दी रि	त ल क्ष्म	भा	जौ

तगण	तगण	जगण	ग	ग
— — ⏑	— — ⏑	⏑ — ⏑	—	—
पा दौ य	दी या वु	प जा त	य	स्ताः

इसका प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है और द्वितीय इन्द्रवज्रा का।

कहीं कहीं प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के रहते हैं, द्वितीय तथा चतुर्थ उपेन्द्रवज्रा के।

१२ अक्षरवाले समवृत्त

(१) द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक पाद में, नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं।

	⏑ ⏑ ⏑	— ⏑ ⏑	— ⏑ ⏑	— ⏑ —
जैसे—	द्रु त वि	ल म्बि त	मा ह न	भौ भ रौ

(२) भुजङ्गप्रयात

भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः

भुजङ्गप्रयात के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं।

	यगण	यगण	यगण	यगण
	⏑ — —	⏑ — —	⏑ — —	⏑ — —
जैसे—	भु ज ङ्ग	प्र या तं	च तु र्भि	र्य का रैः

१४ अक्षरवाले समवृत्त

वसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः

वसन्ततिलका के प्रत्येक पाद में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं।

	तगण	भगण	जगण	जगण	ग	ग
	— — ⏑	— ⏑ ⏑	⏑ — ⏑	⏑ — ⏑	—	—
जैसे—	उ क्ता व	स न्त ति	ल का त	भ जा ज	गौ	गः

१५ अक्षरवाले समवृत्त

मालिनी

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः

मालिनी के प्रत्येक पाद में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण होते हैं आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है।

नगण	नगण	मगण
‿ ‿ ‿	‿ ‿ ‿	— — —
उसे-न न म	य य यु	ते यं. मा

यगण	यगण
‿ — —	‿ — —
लि नी भो	गि लो कैः

१७ अक्षरवाले समवृत्त

(१) मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

मगण	भगण	नगण
— — —	— ‿ ‿	‿ ‿ ‿

तगण	तगण	ग ग
— — ‿	— — ‿	— —

चार अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर छः अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर सात अक्षर के उपरान्त यति होती है; जैसे—

— — —	— ⏑ ⏑	⏑ ⏑ ⏑	— — ⏑
क श्चि त्का	न्ता, वि र	ह गु रु	णा, स्वा धि

— — ⏑	— —
का र प्र	म त्तः ।

यहाँ पर पहिली यति "न्ता" के उपरान्त, दूसरी "णा" के उपरान्त, तीसरी अन्त में "त्तः" के उपरान्त है। इसी प्रकार चारों चरणों में यति होगी।

(२) शिखरिणी

रसैःरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी

शिखरिणी के प्रत्येक पाद में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, तदनन्तर एक लघु और एक गुरु होता है। छः अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर ग्यारह अक्षर के उपरान्त यति होती है।

यगण	मगण	नगण
⏑ — —	— — —	⏑ ⏑ ⏑
स मृ द्ध	सौ भा ग्यं,	स क ल

सगण	भगण	ल ग
⏑ ⏑ —	— ⏑ ⏑	⏑ —

यहां पर पहिली यति छठे अक्षर "ग्यं" के उपरान्त, दूसरी यति ग्यारहवें अक्षर "तन्" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है :—

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्,
महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसाम्,
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥

१९ अक्षरवाले समवृत्त

शार्दूलविक्रीडित

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण फिर एक गुरु अक्षर होता है। बारह अक्षर के उपरान्त पहिली यति, तदनन्तर फिर सातवें अक्षर के उपरान्त दूसरी यति होती है। जैसे:—

मगण	सगण	जगण	सगण
— — —	◡ ◡ —	◡ — ◡	◡ ◡ —
पा त न	प्र थ मं	व्य व स्य	ति ज लं,

तगण	तगण	ग
— — ◡	— — ◡	—
यु ष्मा स्व	पी ते षु	या.

यहां पर पहिली यति बारहवें अक्षर "लं" के उपरान्त तथा

दूसरी यति फिर सातवें अक्षर "या" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

२१ अक्षरवाले समवृत्त

स्रग्धरा

म्रभ्नै र्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्

स्रग्धरा के प्रत्येक पाद में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण यगण, यगण, होते हैं। इसमें सात सात अक्षरों पर यति होती है।

मगण	रगण	भगण	नगण
— — —	— ᴗ —	— ᴗ ᴗ	ᴗ ᴗ ᴗ

यगण	यगण	यगण
ᴗ — —	ᴗ — —	ᴗ — —

— — —	— ᴗ —	— ᴗ ᴗ
जैसे—व्या को पे	न्द्री व रा	भा, क न

ᴗ ᴗ ᴗ	ᴗ — —	ᴗ — —	ᴗ — —
क क प	ल म, र्पा	त घा साः	सु द्दा मा,

यहाँ पर पहिली यति सातवे अक्षर "भा" के उपरान्त तदनन्तर दूसरी यति फिर सातवे अक्षर "स" के बाद, तदनन्तर तीसरी यति फिर सातवे अक्षर "सा" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है :—

व्याकोपेन्दीवराभा कनककमलसत्पीतवासाः सुहासा,
पर्यन्तस्यन्दिकान्तेर्वलयितचिकुरा चारुकर्णावतंसा ।
अंसन्यासक्तवंशीध्वनिसुखितजगद्वल्लवीभिर्लसन्ती,
मूर्तिर्गोपस्य विष्णोरवतु जगति नः स्रग्धरा हारिहारा ॥

अर्धसमवृत्त

पुष्पिताग्रा

अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा

पुष्पिताग्रा के प्रथम तथा तृतीय चरण मे नगण, नगण, रगण, यगण, (इस प्रकार १२ अक्षर) और द्वितीय तथा चतुर्थ में नगण, जगण, जगण, रगण, और एक गुरु (इस प्रकार १३ अक्षर) होते हैं।

नगण	नगण	रगण	यगण
⏑ ⏑ ⏑	⏑ ⏑ ⏑	— ⏑ —	⏑ — —
			प्रथम तथा तृतीय चरण

नगण	जगण	जगण	रगण	ग
⏑ ⏑ ⏑	⏑ — ⏑	⏑ — ⏑	— ⏑ —	—

द्वितीय तथा
चतुर्थ चरण

जैसे—

⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ — —
अ थ म द न व धू रु प स वा न्त

⏑ ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ — —
व्य स न कृ शा प रि पा ल या म्ब भू व

पूरा श्लोक यों है :—

> अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं
> व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव ।
> शशिन इव दिवातनस्य लेखा
> किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ॥

विषमवृत्त

विषमवृत्त साधारण साहित्य में बहुत कम आते हैं। उदाहरणार्थ केवल उद्गता का लक्षण देते है।

⏑ ⏑ —	⏑ — ⏑	⏑ ⏑ —	⏑
प्रथमे,	सजौय,	दिसलौ,	च
⏑ ⏑ ⏑	⏑ ⏑ —	⏑ — ⏑	—
[illegible]	[illegible]	[illegible]नन्त,	रम्

—◡◡ ◡◡◡ ◡—◡ ◡—

यघध, भनज, लगाःस्यु, रथो

◡◡— ◡—◡ ◡◡— ◡—◡ —

सजसा, जगौ च, भवती, यमुग्न, ता

जाति

जैसा कि पहिले कह आए हैं, "जाति" छन्द उसे कहते हैं जिसमें के गण मात्रा (Syllabic instants) के हिसाब से व्यवस्थित किए जाते हैं। "जाति" का सब से साधारण भेद "आर्या" है, जो कि नव प्रकार की होती है :—

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च ।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या ॥

आर्या

यस्याः पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीये ऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽर्या ॥

अर्थात् आर्या के प्रथम तथा तृतीय चरण में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ होती हैं। उदाहरणार्थ लक्षण का ही पद्य है।

नोट—छन्दों के अधिक ज्ञान के लिए श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर अथवा पिङ्गलमुनि रचित छन्दसूत्र आदि पढ़ना चाहिए।

३—परिशेष

रोमन अक्षरो में संस्कृत लिखने की विधि

संस्कृत भाषा को यूरोपीय विद्वान् बडे चाव से पढ़ते है। केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, बहुत सी बातों में उन्हो ने संस्कृत ग्रन्थो से हम भारतीयो की अपेक्षा अधिक लाभ भी उठाया है। इनके आधार पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिन से हम लोगो का भी कुछ उपकार हो सकता है। बहुधा संस्कृत शब्दो को वे रोमन अक्षरो में लिखते है। हम लोगो को भी उस विधि को ज्ञान रखना आवश्यक है। पुरातत्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान का पग पग पर काम पडता है।

a	ā	i	ī	u	ū	ṛ	ṝ	ḷ	e	o	ai	au
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ए	ओ	ऐ	औ

चन्द्रबिन्दु ˘ (स्वर के ऊपर) अथवा ~

अनुस्वार m अथवा ṃ

विसर्ग h

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
k	kh	g	gh	ṅ
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
c	ch	j	jh	ñ
ट्	ठ्	[illegible]	[illegible]	[illegible]

त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	n
प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
	य्	र्	ल्	व्
	y	r	l	v
	श्	ष्	स्	ह्
	ś	ṣ	s	h

कभी २ ऋ, ॠ, ऌ को क्रम से ṛ, ṝ, ḷ; च्, छ् को ch, chh, श, ष् को s, sh भी लिखते हैं।

इस प्रकार इन अक्षरों को जोड़ कर शब्द लिखे जाते हैं, उदाहरणार्थ।

रश्मि—	rasmi
प्रद्योत—	pradyota
क्षत्रिय—	ksatriya
उदीर्णधन्वा—	udīrnadhanvā
क्लृप्त—	kḷpta
संस्कृतिः—	saṃskṛtiḥ

* समाप्त *

सामान्यभूत लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
म० पु०	अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत
उ० पु०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	" "	"	चोरयिष्यति
आशी०—	" "	"	चोर्यात्
लृङ्—	" "	"	अचोरयिष्यत्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म० पु०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ० पु०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

आज्ञा—लोट्

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म० पु०	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उ० पु०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे
म० पु०	चोरयाञ्चकृषे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चकृध्वे, ढ्वे
उ० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे
	चोरयामास	इत्यादि।	
	चोरयाम्बभूव	इत्यादि।	

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म० पु०	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
उ० पु०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	" "	"	चोरयिष्यते
आशी०—	" "	"	चोरयिषीष्ट
लृङ्—	" "	"	अचोरयिष्यत

१६०—चुरादिगण की मुख्य २ धातुओं की सूची।

उभयपदी—अर्च् (पूजा करना)

लट्—अर्चयति, अर्चयते। लोट्—अर्चयतु, अर्चयताम्। विधि—

अर्चयेत्, अर्चयेत । लङ्—आर्चयत्, आर्चयत । लिट्—अर्चयामास, अर्चयाम्बभूव, अर्चयाञ्चकार, अर्चयाञ्चक्रे ।

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	आर्चिचत्	आर्चिचताम्	आर्चिचन्
म० पु०	आर्चिचः	आर्चिचतम्	आर्चिचत
उ० पु०	आर्चिचम्	आर्चिचाव	आर्चिचाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	आर्चिचत	आर्चिचेताम्	आर्चिचन्त
म० पु०	आर्चिचथा	आर्चिचेथाम्	आर्चिचध्वम्
उ० पु०	आर्चिचे	आर्चिचावहि	आर्चिचामहि

लुट्—अर्चयिता । लृट्—अर्चयिष्यति, अर्चयिष्यते । आशी०—अर्च्यात् अर्चयिषीष्ट । लृङ्—आर्चयिष्यत्, आर्चयिष्यत ।

अर्ज् (उभयपदी—कमाना, पैदा करना) के रूप अर्च् के समान होते हैं ।

अर्थ (आत्मनेपदी—प्रार्थना करना) के रूप अर्च् के समान होते हैं । केवल सामान्यभूत (लुङ्) में भेद होता है, जो कि नीचे दिखाया जाता है ।

म० पु०	आर्तथथाः	आर्तथेथाम्	आर्तथध्वम्
उ० पु०	आर्तथे	आर्तथावहि	आर्तथामहि

उभयपदी—कथ् (कहना)

लट्—कथयति, कथयते । लोट्—कथयतु, कथयताम् । विधि—कथयेत्, कथयेत । लङ्—अकथयत्, अकथयत । लिट्—कथयामास, कथयाम्बभूव, कथयाञ्चकार, कथयाञ्चक्रे । लुट्—कथयिता । लृट्—कथयिष्यति कथयिष्यते । आशी०—कथ्यात्, कथयिषीष्ट । लृङ्—अकथयिष्यत्, अकथयिष्यत ।

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अचकथत्	अचकथताम्	अचकथन्
म० पु०	अचकथः	अचकथतम्	अचकथत
उ० पु०	अचकथम्	अचकथाव	अचकथाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	अचकथत	अचकथेताम्	अचकथन्त
म० पु०	अचकथथाः	अचकथेथाम्	अचकथध्वम्
उ० पु०	अचकथे	अचकथावहि	अचकथामहि

उभयपदी—चल् (धोना, साफ करना)

चल् के रूप चालयति, चालयते इत्यादि चलते हैं । लिट्—चालयामास चालयाम्बभूव, चालयाञ्चकार, चालयाञ्चक्रे । लुट्—चालयिता । लृट्—चालयिष्यति, चालयिष्यते । आशी०—चाल्यात्, चालयिषीष्ट । लृङ्—अचालयिष्यत्, अचालयिष्यत । लुङ्—अचिचलत अचिचलताम् आदि

लन्। अचिखलः अचिखलतम् अचिखलत । अचिखलम् अचिखलाव अचिखलाम । आत्मनेपद में—अचिखलत अचिखलेताम् इत्यादि।

उभयपदी—गण् (गिनना)

गणयति, गणयते। लिट्—गणयाम्बभूव, गणयामास, गणयाञ्चकार, गणयाञ्चक्रे। लुङ्—अजीगणत् अजीगणताम् अजीगणन् तथा अजगणत् अजगणताम् अजगणन्। अजीगणत अजीगणेताम् अजीगणन्त तथा अजगणत अजगणेताम् अजगणन्त। लुट्—गणयिता। लृट्-गणयिष्यति, गणयिष्यते। आशी०—गण्यात्, गणयिषीष्ट। लृङ्—अगणयिष्यत्, अगणयिष्यत।

उभयपदी—चिन्त् (विचारना)

लट्—चिन्तयति, चिन्तयते। लिट्—चिन्तयामास, चिन्तयाम्बभूव, चिन्तयाञ्चकार, चिन्तयाञ्चक्रे। लुङ्—अचिचिन्तत् अचिचिन्तताम् अचिचिन्तन्। अचिचिन्तत अचिचिन्तेताम् अचिचिन्तन्त। लुट्—चिन्तयिता। लृट्—चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यते। आशी०—चिन्त्यात्, चिन्तयिषीष्ट। लृङ्—अचिन्तयिष्यत्, अचिन्तयिष्यत।

उभयपदी—तड् (मारना)

उभयपदी—तुल् (तौलना)

लट्—तोलयति, तोलयते इत्यादि। लिट्—तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चक्रे। लुङ्—अतूतुलत् अतूतुलताम् अतूतुलन्। अतूतुलत अतूतुलेताम् अतूतुलन्त। लुट्—तोलयिता। लृट्—तोलयिष्यति, तोलयिष्यते। आशी०—तोल्यात्, तोलयिषीष्ट।

उभयपदी—दण्ड् (दण्ड देना)

दण्डयति, दण्डयते। लिट्—दण्डयाञ्चकार, दण्डयाञ्चक्रे, दण्डयामास दण्डयाम्बभूव। लुङ्—अददण्डत् अददण्डताम् अददण्डन्। अददण्डत अददण्डेताम् अददण्डन्त। लुट्—दण्डयिता। लृट्—दण्डयिष्यति दण्डयिष्यते।। आशी०—दण्ड्यात्, दण्डयिषीष्ट।

उभयपदी

पाल्—(पालना, रक्षा करना) लुङ् — अपीपलत्, अपीपलत।
पीड्—(दुःख देना) „ — अपिपीडत् अपीपिडत्।
अपिपीडत, अपीपिडत।
पूज्—(पूजा करना) „ — अपूपुजत्, अपूपुजत।

उभयपदी—प्री (खुश करना)

प्रीणयति, प्रीणयते इत्यादि। लुङ्— अपिप्रीणत्, अपिप्रीणत।

आत्मनेपदी—भर्त्स् (धमकाना, डाटना)

भर्त्सयते। लिट्—भर्त्सयाञ्चक्रे। लुङ्—अबभर्त्सत अबभर्त्सेताम् अबभर्त्सन्त। अबभर्त्सथाः अबभर्त्सेथाम् अबभर्त्सध्वम्। अबभर्त्से अबभर्त्सावहि अबभर्त्सामहि। लुट्—भर्त्सयिता। लृट्—भर्त्सयिष्यते। आशी०—भर्त्सयिषीष्ट।

उभयपदी—भक्ष् (खाना)

भक्षयति, भक्षयते । लिट्—भक्षयामास, भक्षयाम्बभूव, भक्षयाञ्चकार, भक्षयाञ्चक्रे । लुङ्—अबभक्षत् अबभक्षत । लुट्—भक्षयिता । लृट्—भक्षयिष्यति, भक्षयिष्यते । आशी०—भक्ष्यात्, भक्षयिषीष्ट ।

उभयपदी—भूष् (सजाना)

भूषयति, भूषयते । लिट्—भूषयामास, भूषयाम्बभूव, भूषयाञ्चकार भूषयाञ्चक्रे । लुङ्—अबुभूषत, अबुभूषत । लुट्—भूषयिता । लृट्—भूषयिष्यति, भूषयिष्यते । आशी०—भूष्यात्, भूषयिषीष्ट ।

आत्मनेपदी—मन्त्र्—(सलाह करना या सलाह देना)

मन्त्रयते । लिट्—मन्त्रयाञ्चक्रे । लुङ्—अममन्त्रत अममन्त्रेताम् अममन्त्रन्त । अममन्त्रथाः अममन्त्रेथाम् अममन्त्रध्वम् । अममन्त्रे अममन्त्रावहि अममन्त्रामहि । लुट्—मन्त्रयिता । लृट्—मन्त्रयिष्यते । आशी०—मन्त्रयिषीष्ट ।

उभयपदी—मार्ग् (खोजना)

मार्गयति मार्गयते । लिट्—मार्गयामास, मार्गयाम्बभूव, मार्गयाञ्चकार, मार्गयाञ्चक्रे । अममार्गत्, अममार्गत । लुट्—मार्गयिता । लृट्—मार्गयिष्यति, मार्गयिष्यते । आशी०—मार्ग्यात्, मार्गयिषीष्ट ।

मार्ज् (शुद्ध करना, पोछना)

मार्जयति, मार्जयते । लिट्—मार्जयामास, मार्जयाम्बभूव, मार्जयाञ्चकार मार्जयाञ्चक्रे । लुङ्—अममार्जत्, अममार्जत । लुट्—मार्जयिता । लृट्—मार्जयिष्यति, मार्जयिष्यते । आशी०—मार्ज्यात्, मार्जयिषीष्ट ।

परस्मैपदी—मान् (आदर करना)

मानयति। मानयाञ्चकार। अमीमनत् अमीमनताम् अमीमनन्।

उभयपदी —रच् (बनाना)

रचयति, रचयते। लुङ्—अररचत्, अररचत। लुट्—रचयिता। लृट्—रचयिष्यति, रचयिष्यते। आशी०—रच्यात्, रचयिषीष्ट।

उभयपदी— वर्ण् (वर्णन करना या रंगना)

वर्णयति, वर्णयते। लुङ् अववर्णत्, अववर्णत। लुट्—वर्णयिता। लृट्—वर्णयिष्यति, वर्णयिष्यते। आशी०—वर्ण्यात्, वर्णयिषीष्ट।

आत्मनेपदी—वञ्च् (धोखा देना)

वञ्चयते। लिट्—वञ्चयामास, वञ्चयाम्बभूव, वञ्चयाञ्चक्रे। लुङ्—अववञ्चत अववञ्चेताम् अववञ्चन्त। लुट्—वञ्चयिता। लृट्—वञ्चयिष्यते। आशी०—वञ्चयिषीष्ट।

उभयपदी—वृज् (छोड़ना, निकालना)

वर्जयति, वर्जयते। लुङ्—अवीवृजत् अवीवृजताम् अवीवृजन्। अववर्जत् अववर्जताम् अववर्जन्। अवीवृजत अवीवृजेताम् अवीवृजन्त। अववर्जत अववर्जेताम् अववर्जन्त।

उभयपदी—स्पृह् (चाहना)

स्पृहयति, स्पृहयते। लिट्—स्पृहयामास, स्पृहयाम्बभूव, स्पृहयाञ्चकार, स्पृहयाञ्चक्रे। लुङ्—अपिस्पृहत् अपिस्पृहताम् अपिस्पृहन्। अपिस्पृहत अपिस्पृहेताम् अपिस्पृहन्त। लुट्—स्पृहयिता। लृट्—स्पृहयिष्यति स्पृहयिष्यते। आशी०—स्पृह्यात्, स्पृहयिषीष्ट।

दशम सोपान

क्रिया विचार (उत्तरार्ध)

१६१—ऊपर (१४१ में) कह चुके है कि संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। धातुओ के कर्तृ-वाच्य के रूप दसो गणो के सभी लकारो में पिछले परिच्छेद में दिखाये जा चुके हैं। यह भी बताया जा चुका है कि कर्मवाच्य केवल सकर्मक धातुओ से और भाववाच्य केवल अकर्मक धातुओ से ही बनता है। इन दो वाच्यो के रूप केवल आत्मनेपद मे होते हैं, धातु चाहे जिस पद की हो। आत्मनेपद के जो प्रत्यय दसो लकारो के हैं वही प्रत्यय जोड़े जाते है। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप बनाते समय नीचे लिखे नियमो का पालन किया जाता है:—

(१) धातु और प्रत्ययो के बीच मे सार्वधातुक लकारो मे यक् (य) जोड़ा जाता है, जैसे—भिद् और ते के बीच मे य जोड़ कर भिद्यते रूप बनता है।

गीयते, पीयते, सीयते, हीयते। और धातुओं का वैसे ही रहता है ; जैसे—ज्ञायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते। बहुत सी धातुओं के बीच का अनुस्वार कर्मवाच्य के रूपों में निकाल दिया जाता है ; जैसे—बन्ध् से बध्यते, शंस् से शस्यते, इन्ध् से इध्यते।

(४) अन्य छः लकारों में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्तृवाच्य के ही रूप होते हैं जैसे, परोक्षभूत में—निन्ये, बभूवे, जज्ञे आदि, अथवा कृ धातु के रूप जोड़ कर, जैसे ईक्षाञ्चक्रे अथवा अस् धातु के रूप लगाकर, कथयामासे आदि।

(५) स्वरान्त धातुओं के तथा हन्, ग्रह, दृश् धातुओं के दोनों भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीर्लिङ् में वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि करके तथा प्रत्ययों के पूर्व इ जोड़ कर बनते है ; जैसे—दा से दायिता अथवा दाता। दायिष्यते अथवा दास्यते। अदायिष्यत अथवा अदास्यत। दायिषीष्ट अथवा दासीष्ट।

(क) नीचे कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप दिये जाते हैं। जैसा ऊपर नवें सोपान में बता चुके है। कर्मवाच्य की क्रिया के रूप पुरुष और वचन में कर्म के अनुसार होते है। भाववाच्य का अर्थ है केवल किसी क्रिया का होना दिखाना। यह सदा प्रथमपुरुष एक वचन में होता है, कर्ता के अनुसार इसके रूप नहीं बदलते, जैसे—तेन भूयते ताभ्याम् भूयते, तैः भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्यां भूयते, युष्माभिः भूयते, मया भूयते, आवाभ्यां भूयते, अस्माभिः भूयते। इसी प्रकार भूयताम्, भूयात, अभूयत।

१६२—मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य दे...

पठ्—लट्—पठ्यते पठ्येते पठ्यन्ते। लोट्—पठ्यताम् पठ्येताम् पठ्य... विधि—पठ्येत पठ्येयाताम् पठ्येरन्। लङ्—अपठ्यत अप... अपठ्यन्त। लिट्—पेठे पेठाते पेठिरे। लुङ्—अपाठि अपा... अपाठिषत। लुट्—पठिता पठितारौ। पठितासे। लृट्—प... आशी०—पठिषीष्ट।

मुच—लट्—मुच्यते मुच्येते मुच्यन्ते। लोट्—मुच्यताम् मुच्येता... न्ताम्। विधि—मुच्येत मुच्येयाताम् मुच्येरन्। लङ्—अमुच्य... अमुच्येताम् अमुच्यन्त।

लिट्—मुमुचे	मुमुचाते	मुमु...
मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमु...
मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमु...
लुङ्—अमोचि	अमुक्षाताम्	अमु...
अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमु...
अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमु...
लुट्—मोक्ता	मोक्तारौ	मो...
लृट्—मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मो...
आशी०—मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मु...
लृङ्—अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अ...

दा—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदायि	अदायिषाताम् / अदिषाताम्	अदायिषत / अदिषत
म० पु०	अदायिष्ठाः / अदिथाः	अदायिषाथाम् / अदिषाथाम्	अदायिध्वम् / अदिध्वम्
उ० पु०	अदायिषि / अदिषि	अदायिष्वहि / अदिष्वहि	अदायिष्महि / अदिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

अथवा

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितारः
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

अथवा

प्र० पु०	दायिष्यते	दायिष्येते	दायिष्यन्ते
म० पु०	दायिष्यसे	दायिष्येथे	दायिष्यध्वे
उ० पु०	दायिष्ये	दायिष्यावहे	दायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

अथवा

प्र० पु०	दायिषीष्ट	दायिषीयास्ताम्	दायिषीरन्
म० पु०	दायिषीष्ठाः	दायिषीयास्थाम्	दायिषीध्वम्
उ० पु०	दायिषीय	दायिषीवहि	दायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अदायिष्यत	अदायिष्येताम्	अदायिष्यन्त
म० पु०	अदायिष्यथा	अदायिष्येथाम्	अदायिष्यध्वम्
उ० पु०	अदायिष्ये	अदायिष्यावहि	अदायिष्यामहि

पा—लट्—पीयते पीयेते पीयन्ते। पीयसे पीयेथे पीयध्वे। पीये पीयावहे पीयामहे। लोट्—पीयताम् पीयेताम् पीयन्ताम्। पीयस्व पीयेथाम् पीयध्वम्। पीयै पीयावहै पीयामहै। विधि—पीयेत पीयेयाताम् पीयेरन्। पीयेथाः पीयेयाथाम् पीयेध्वम्। पीयेय पीयेवहि पीयेमहि। लङ्—अपीयत अपीयेताम् अपीयन्त। अपीयथा.

अपीयेथाम् अपीयध्वम् । अपीये अपीयावहि अपीयामहि । लिट्—पपे पपाते पपिरे । पपिषे पपाथे पपिध्वे । पपे पपिवहे पपिमहे । लुङ्—अपायि अपायिषाताम् अपायिषत । अपायिष्ठाः अपायिषाथाम् अपायिध्वम् । अपायिषि अपायिष्वहि अपायिष्महि । लुट्—पाता पातारौ पातारः । लृट्—पास्यते पास्येते पास्यन्ते । आशी०—पासीष्ट । लृङ्—अपास्यत ।

स्था अकर्मक भाववाच्य | स्थीयते स्थीयेते स्थीयन्ते इत्यादि । लोट्—स्थीयताम् । विधि—स्थीयेत । लङ्—अस्थीयत अस्थीयेताम् अस्थीयन्त । लिट्—तस्थे तस्थाते तस्थिरे । तस्थिषे तस्थाथे तस्थिध्वे । तस्थे तस्थिवहे तस्थिमहे । लुङ्—अस्थायि अस्थायिषाताम् अस्थायिषत । अस्थायिष्ठाः अस्थायिषाथाम् अस्थायिध्वम् । अस्थायिषि अस्थायिष्वहि अस्थायिष्महि । लुट्—स्थाता । लृट्—स्थास्यते । आशी०—स्थासीष्ट ।

हा—हीयते इत्यादि । लिट्—जहे जहाते जहिरे । लुङ्—अहायि अहायिषाताम् अहायिषत इत्यादि ।

ज्ञा-सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायेथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायस्व	ज्ञायेथाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायावहै	ज्ञायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेथाः	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायेताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथाः	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञायि	{ अज्ञायिषाताम् { अज्ञासाताम्	{ अज्ञायिषत { अज्ञासत
म० पु०	{ अज्ञायिष्ठाः { अज्ञास्थाः	{ अज्ञायिषाथाम् { अज्ञासाथाम्	{ अज्ञायिध्वम् { अज्ञाध्वम्
उ० पु०	{ अज्ञायिषि { अज्ञासि	{ अज्ञायिष्वहि { अज्ञास्वहि	{ अज्ञायिष्महि { अज्ञास्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता ज्ञायिता	ज्ञातारौ ज्ञायितारौ	ज्ञातारः ज्ञायितारः
म० पु०	ज्ञातासे ज्ञायितासे	ज्ञातासाथे ज्ञायितासाथे	ज्ञाताध्वे ज्ञायिताध्वे
उ० पु०	ज्ञाताहे ज्ञायिताहे	ज्ञातास्वहे ज्ञायितास्वहे	ज्ञातास्महे ज्ञायितास्महे

सामान्यभविष्य - लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यते ज्ञायिष्यते	ज्ञास्येते ज्ञायिष्येते	ज्ञास्यन्ते ज्ञायिष्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे ज्ञायिष्यसे	ज्ञास्येथे ज्ञायिष्येथे	ज्ञास्यध्वे ज्ञायिष्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये ज्ञायिष्ये	ज्ञास्यावहे ज्ञायिष्यावहे	ज्ञास्यामहे ज्ञायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ज्ञासीष्ट ज्ञायिषीष्ट	ज्ञासीयास्ताम् ज्ञायिषीयास्ताम्	ज्ञासीरन् ज्ञायिषीरन्
म० पु०	ज्ञासीष्ठाः ज्ञायिषीष्ठाः	ज्ञासीयास्थाम् ज्ञायिषीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम् ज्ञायिषीध्वम्
उ० पु०	ज्ञासीय ज्ञायिषीय	ज्ञासीवहि ज्ञायिषीवहि	ज्ञासीमहि ज्ञायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अज्ञास्यत अज्ञायिष्यत	अज्ञास्येताम् अज्ञायिष्येताम्	अज्ञास्यन्त अज्ञायिष्यन्त

म० पु०	अज्ञास्यथा / अज्ञायिष्यथाः	अज्ञास्येथाम् / अज्ञायिष्येथाम्	अज्ञास्यध्वम् / अज्ञायिष्यध्वम्
उ० पु०	अज्ञास्ये / अज्ञायिष्ये	अज्ञास्यावहि / अज्ञायिष्यावहि	अज्ञास्यामहि / अज्ञायिष्यामहि

ध्यै—लट्—ध्यायते ध्यायेते ध्यायन्ते। लोट्—ध्यायताम् ध्यायेताम् ध्यायन्ताम्। विधि—ध्यायेत ध्यायेयाताम् ध्यायेरन्। लङ्—अध्यायत अध्यायेताम् अध्यायन्त। लिट्—दध्ये दध्याते दध्यिरे। लुङ्—अध्यायि अध्यायिषाताम् अध्यासाताम् अध्यायिषत अध्यासत। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यते।

चि—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीयै	चीयावहै	चीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथाः	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथाः	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचायि	अचायिषाताम् अचेषाताम्	अचायिषत अचेषत
म० पु०	अचायिष्ठाः अचेष्ठाः	अचायिषाथाम् अचेषाथाम्	अचायिध्वम् अचेध्वम्
उ० पु०	अचायिषि अचेषि	अचायिष्वहि अचेष्वहि	अचायिष्महि अचेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	चेता चायिता	चेतारौ चायितारौ	चेतारः चायितारः
म० पु०	चेतासे चायितासे	चेतासाथे चायितासाथे	चेताध्वे चायिताध्वे
उ० पु०	चेताहे चायिताहे	चेतास्वहे चायितास्वहे	चेतास्महे चायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	चेष्यते / चायिष्यते	चेष्येते / चायिष्येते	चेष्यन्ते / चायिष्यन्ते
म० पु०	चेष्यसे / चायिष्यसे	चेष्येथे / चायिष्येथे	चेष्यध्वे / चायिष्यध्वे
उ० पु०	चेष्ये / चायिष्ये	चेष्यावहे / चायिष्यावहे	चेष्यामहे / चायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चेषीष्ट / चायिषीष्ट	चेषीयास्ताम् / चायिषीयास्ताम्	चेषीरन् / चायिषीरन्
म० पु०	चेषीष्ठाः / चायिषीष्ठाः	चेषीयास्थाम् / चायिषीयास्थाम्	चेषीध्वम् / चायिषीध्वम्
उ० पु०	चेषीय / चायिषीय	चेषीवहि / चायिषीवहि	चेषीमहि / चायिषीमहि

लृङ्

प्र० पु०	अचेष्यत / अचायिष्यत	अचेष्येताम् / अचायिष्येताम्	अचेष्यन्त / अचायिष्यन्त
म० पु०	अचेष्यथाः / अचायिष्यथाः	अचेष्येथाम् / अचायिष्येथाम्	अचेष्यध्वम् / अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	अचेष्ये / अचायिष्ये	अचेष्यावहि / अचायिष्यावहि	अचेष्यामहि / अचायिष्यामहि

जि—लट्—जीयते जीयेते जीयन्ते। लोट्—जीयताम् जीयेताम् जीयन्ताम्
विधि—जीयेत जीयेयाताम् जीयेरन्। लङ्—अजीयत अजीयेताम्
अजीयन्त। लिट्—जिग्ये जिग्याते जिग्यिरे। जिग्यिषे जिग्याथे जिग्यिध्वे
जिग्ये जिग्यिवहे जिग्यिमहे। लुङ्—अजायि अजायिषाताम्-अजेषाताम्

अजायिषत-अजेषत । अजायिष्ठाः-अजेष्ठाः अजायिषाथाम् अजेषाथाम् अजायिध्वम्-अजेध्वम् । अजायिषि-अजेषि अजायिष्वहि-अजेष्वहि अजायिष्महि अजेष्महि । लुट्-जेता-जायिता । लृट्—जेष्यते जायिष्यते । आशी०—जेषीष्ट-जायिषीष्ट । लृङ्—अजेष्यत अजायिष्यत ।

श्रि- लट्—श्रीयते श्रीयेते श्रीयन्ते। लोट्—श्रीयताम् श्रीयेताम् श्रीयन्ताम् विधि—श्रीयेत। लङ्—अश्रीयत अश्रीयेताम् अश्रीयन्त । लिट्—शिश्रिये शिश्रियाते शिश्रियिरे। शिश्रियिषे शिश्रियाथे शिश्रियिध्वे शिश्रिये शिश्रियिवहे शिश्रियिमहे। लुङ्— अश्रायि अश्रायिषाताम् अश्रयिषाताम् अश्रायिषत-अश्रयिषत। अश्रायिष्ठा -अश्रयिष्ठाः अश्रायिषाथाम्-अश्रयिषाथाम्। लुट्—श्रयिता-श्रायिता। लृट्—श्रयिष्यते श्रायिष्यते । आशी०—श्रयिषीष्ट-श्रायिषीष्ट । लृङ्—अश्रयिष्यत अश्रायिष्यत ।

नी - सकर्मक - कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नीयते	नीयेते	नीयन्ते
म० पु०	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे
उ० पु०	नीये	नीयावहे	नीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्
म० पु०	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्
उ० पु०	नीयै	नीयावहै	नीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
म० पु०	नीयेथाः	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
उ० पु०	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म० पु०	अनीयथाः	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
उ० पु०	अनीये	अनीयावहि	अनीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनायि	अनायिषाताम् / अनेषाताम्	अनायिषत / अनेषत
म० पु०	अनायिष्ठा / अनेष्ठाः	अनायिषाथाम् / अनेषाथाम्	अनायिध्वम् / अनेध्वम्
उ० पु०	अनायिषि / अनेषि	अनायिष्वहि / अनेष्वहि	अनायिष्महि / अनेष्महि

अनद्यतनभविष्य – लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

तथा

प्र० पु०	नायिष्यते	नायिष्येते	नायिष्यन्ते
म० पु०	नायिष्यसे	नायिष्येथे	नायिष्यध्वे
उ० पु०	नायिष्ये	नायिष्यावहे	नायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

तथा

प्र० पु०	नायिषीष्ट	नायिषीयास्ताम्	नायिषीरन्
म० पु०	नायिषीष्ठाः	नायिषीयास्थाम्	नायिषीध्वम्
उ० पु०	नायिषीय	नायिषीवहि	नायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथा	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

तथा

प्र० पु०	अनायिष्यत	अनायिष्येताम्	अनायिष्यन्त

म० पु०	अनायिष्यथाः	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यध्वम्
उ० पु०	अनायिष्ये	अनायिष्यावहि	अनायिष्यामहि

कृ—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे-ध्वे

उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकारि	अकारिषाताम् अकृषाताम्	अकारिषत अकृषत
म० पु०	अकारिष्ठा: अकृथा:	अकारिषाथाम् अकृषाथाम्	अकारिध्वम् अकृध्वम्
उ० पु०	अकारिषि अकृषि	अकारिष्वहि अकृष्वहि	अकारिष्महि अकृष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	कर्ता कारिता	कर्तारौ कारितारौ	कर्तारः कारितार:
म० पु०	कर्तासे कारितासे	कर्तासाथे कारितासाथे	कर्ताध्वे कारिताध्वे
उ० पु०	कर्ताहे कारिताहे	कर्तास्वहे कारितास्वहे	कर्तास्महे कारितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

तथा

प्र० पु०	कारिष्यते	कारिष्येते	कारिष्यन्ते
म० पु०	कारिष्यसे	कारिष्येथे	कारिष्यध्वे
उ० पु०	कारिष्ये	कारिष्यावहे	कारिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	कृषीष्ट कारिषीष्ट	कृषीयास्ताम् कारिषीयास्ताम्	कृषीरन् कारिषीरन्
म० पु०	कृषीष्ठाः कारिषीष्ठाः	कृषीयास्थाम् कारिषीयास्थाम्	कृषीध्वम् कारिषीध्वम्
उ० पु०	कृषीय कारिषीय	कृषीवहि कारिषीवहि	कृषीमहि कारिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अकरिष्यत अकारिष्यत	अकरिष्येताम् अकारिष्येताम्	अकरिष्यन्त अकारिष्यन्त
म० पु०	अकरिष्यथाः अकारिष्यथा	अकरिष्येथाम् अकारिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम् अकारिष्यध्वम्
उ० पु०	अकरिष्ये अकारिष्ये	अकरिष्यावहि अकारिष्यावहि	अकरिष्यामहि अकारिष्यामहि

धृ—लट्—ध्रियते ध्रियेते ध्रियन्ते। लोट्—ध्रियताम् ध्रियेताम् ध्रियन्ताम्। विधि—ध्रियेत ध्रियेयाताम् ध्रियेरन्। लङ्—अध्रियत अध्रियेताम् अध्रियन्त। लिट्—दध्रे दध्राते दध्रिरे। लुङ्—अधारि अधारिषाताम्—अधृषाताम् अधारिषत—अधृषत। लुट्—धर्ता—धारिता। लृट्—धरिष्यते—धारिष्यते। आशी०—धृषीष्ट धारिषीष्ट। लृङ्—अधरिष्यत—अधारिष्यत।

भृ - भ्रियते इत्यादि। लिट्—बभ्रे बभ्राते बभ्रिरे।

लङ—अभारि, अभारिषाताम् अभृषाताम्, अभारिषत अभृषत।

हृ— ह्रियते, इत्यादि ।

वच्—	उच्यते	।	लङ्	—	औच्यत ।
वद्—	उद्यते	।	लङ्	—	औद्यत ।
वप्—	उप्यते	।	लङ्	—	औप्यत ।
वस्—	उष्यते	।	लङ्	—	औष्यत ।
वह्—	उह्यते	।	लङ्	—	औह्यत ।

चुरादि गण की धातुओं का गुण तथा वृद्धि जो कि लट्, लोट्, विधि और लङ् में साधारणतः होता है कर्मवाच्य मे भी बना रहता है ।

इस गण का अय् लट्, लोट्, विधि और लङ् तथा लुङ् के प्रथम पुरुष के एकवचन में निकाल दिया जाता है, लिट् में बना रहता है और शेष लकारो में विकल्प करके निकाल दिया जाता है। जैसे चुर् का—

चोर्यते चोर्येते चोर्यन्ते ।

लिट्— चोरयाञ्चक्रे । चोरयाम्बभूवे । चोरयामासे। लुङ् अचोरि, अचोरिषाताम्—अचोरयिषाताम्, अचोरिषत—अचोरयिषत । अचोरिष्ठा — अचोरयिष्ठाः, अचोरिषाथाम्— अचोरयिषाथाम्, अचोरिध्वम्—अचोरयिध्वम्। अचोरिषि—अचोरयिषि, अचोरिष्वहि—अचोरयिष्वहि, अचोरिष्महि—अचोरयिष्महि ।

लुट्— चोरिता—चोरयिता। लृट् चोरिष्यते—चोरयिष्यते ।

आशी०— चोरिषीष्ट—चोरयिषीष्ट। लृङ् - अचोरिष्यत—अचोरयिष्यत ।

प्रत्ययान्त धातुएँ

१६३—धातुओ मे विशेष प्रत्यय जोड़कर धातु के अर्थ के

साथ साथ और अर्थ का भी बोध हो जाता है। जैसे हिन्दी में '
जाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मैं जा
चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे। इस में दो धातु
(जाना—और चाहना—) का प्रयोग हुआ, किन्तु संस्कृत में
धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड़ कर चाहने का अर्थ निक
लिया जाता है; जैसे गम्—जाना, जिगमिष्—जाने की इ
करना (अहं गच्छामि—अहं जिगमिषामि)। जिगमिष्—
सन् प्रत्ययान्त धातु कहेंगे। सन् आदि प्रत्यय धातु और ति
प्रत्ययों के बीच में जोड़े जाते हैं तब क्रिया की सिद्धि होती है।

प्रत्ययान्त धातुएं चार प्रकार की होती हैः—

(१) णिजन्त—णिच् प्रत्यय में अन्त होने वाली।

(२) सन्नन्त—सन् प्रत्यय में अन्त होने वाली।

(३) यङन्त—यङ् प्रत्यय में अन्त होने वाली तथा

(४) नामधातु—किसी संज्ञा को धातु रूप देकर बनाई हु
धातु।

णिजन्त धातु

१६४—किसी धातु में जब प्रेरणा का अर्थ लाना हो तो णि
प्रत्यय जोड़ देते है। करना से कराना, पढ़ना से पढ़ाना, पकाना
पकवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ है। सादी धा
में जो कर्ता रहता है वह प्रेरणार्थक धातु में स्वयं कार्य न कर
किसी दूसरे से कार्य कराता है; जैसे 'राम पकाता है' इ
वाक्य में राम स्वयं पकाने का कार्य करता है 'किन्तु राम पकवात

स वाक्य मे राम स्वयं नहीं पकाता, पकाने का काम किसी
: से कराना है। णिच् प्रत्यय लग कर अकर्मक धातु कभी कभी
कर्मक भी हो जाती है, और कभी कभी उसके अर्थ में परि-
न भी हो जाता है।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के
मान चलते हैं: धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में अय् जोड़ दिया
ाता है।

तथा नियम १५६ मे उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है .
जैसे—

(१) बुध्	(बोधति)	से	प्रेरणार्थक	बोधयति
(२) अद्	(अत्ति)	से	,,	आदयति
(३) हु	(जुहोति)	से	,,	हावयति
(४) दिव्	(दीव्यति)	से	,,	देवयति
(५) सु	(सुनोति)	से	,,	सावयति
(६) तुद्	(तुदति)	से	,,	तोदयति
(७) रुध्	(रुणद्धि)	से	,,	रोधयति
(८) तन	(तनोति)	से	,,	तानयति
(९) अश्	(अश्नाति)	से	,,	आशयति
(१०) चुर्	(चोरयति)	से	,,	चोरयति

चुरादिगण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक मे भी वैसे ही होते है
जैसे साधारण मे।

(ख) कुछ धातुओं के साथ ऊपर लिखे हुए सभी परिवर्तन नहीं होते। मुख्य मुख्य धातुओं का भेद यह है:—

अम् में अन्त होने वाली धातुओं मे (अम्, कम्, चम्, शम् और यम् को छोड कर) उपधा के अकार को वृद्धि नही होती, जैसे—गम् से गमयति; किन्तु कम् से कामयते होता है।

बहुधा आकारान्त (और ऐसी ए, ऐ, ओ में अन्त होने वाली धातुएँ जो आकारान्त हो जाती हैं) धातुओं के अनन्तर अय् के पूर्व प् जोड दिया जाता है, जैसे—दा से दापयति, स्ना से स्नापयति, गै से गापयति। मि, मी, दी, जि, क्री मे भी प् जोड दिया जाता है और इकार का आकार हो जाता है, जैसे—मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति।

(ग) नीचे लिखी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप इस प्रकार चलते हैं:—

इण् (जाना) से गमयति।

अधि+इड् से अध्यापयति,—प्रत्यायति।

चि (इकट्ठा करना) से चाययति-ते, चापयति-ते।

जागृ (जागना) से जागरयति।

दुष् (दोषी होना) से दूषयति-ते, दोषयति-ते।

प्री (प्रसन्न होना) से प्रीणयति।

रुह् (उगना) से रोहयति-ते, रोपयति-ते।

वा (डोलना) से वापयति, वाजयति

हन् (मारना) से घातयति।

(घ) प्रेरणार्थक धातुओं के रूप चुरादिगणी धातुओं के समान दसों लकारों, तीनों वाच्यों और दोनों पदों में चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् धातु के रूप प्रथम पुरुष एक वचनमें दियाजा

जाते हैं। कर्तृवाच्य में—लट्—बोधयति, बोधयते । लोट्—बोधयतु बोधयताम् । विधि—बोधयेत्, बोधयेत । लङ्—अबोधयत् अबोधयत । लिट्—बोधयाञ्चकार, बोधयाम्बभूव, बोधयामास बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे । लुङ्—अबूबुधत्, अबूबुधत । लुट्—बोधयिता बोधयिता । लृट्—बोधयिष्यति, बोधयिष्यते । आशी० बोध्यात् बोधयिषीष्ट । लृङ्—अबोधयिष्यत्, अबोधयिष्यत ।

कर्मवाच्य मे—लट्—बोध्यते । लोट्—बोध्यताम् । विधि—बोध्येत । लङ्—अबोध्येत । लिट्—बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे । लुङ्—अबोधि । लुट्—बोधिता । लृट्—बोधिष्यते । आशी०—बोधिषीष्ट । लृङ्—अबोधिष्यत ।

सन्नन्त धातु

१६५-[1]किसी कार्य के करने की इच्छा करने का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—मैं जाना चाहता हूँ। यहाँ मैं जाने की इच्छा करना है इस लिए जाने का बोध कराने वाली धातु के अनन्तर संस्कृत मे सन् प्रत्यय जोड़ कर 'जाना चाहता हूँ' यह अर्थ निकल आएगा (गम्—से जिगमिष्)। जो कर्ता जाने की क्रिया का होगा वही इच्छा करने वाला होना चाहिए, यदि दूसरा

१ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा। ३। १। ७॥

कर्त्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं लग सकता, जैसे 'मैं इच्छा करता हूँ कि वह जावे', इस वाक्य में इच्छा करने वाला मैं हूँ और जाने वाला वह, यहाँ सन् लगाना असम्भव होगा किन्तु मैं उसे पढ़ाना चाहता हूँ, इस वाक्य में सन् लग सकता है; क्योंकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनों क्रियाओं का कर्ता एक ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेरणार्थक धातु के अनन्तर भी सन् लग सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला एक ही व्यक्ति हो।

सन् प्रत्यय लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है। यदि न लगाना चाहे तो यही अर्थ इष्, अभिलष् आदि चाहने का अर्थ बतलाने वाली क्रियाओं के प्रयोग से भी लाया जा सकता है; जैसे—'मैं जाना चाहता हूँ' का अनुवाद चाहे 'अहं जिगमिषामि' करें चाहे 'अहं गन्तुमिच्छामि' या 'अहं गन्तुमभिलषामि' आदि से करें, दोनों ढंग ठीक होंगे।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इच्छा करने की क्रिया कर्म स्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नहीं। ऊपर 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य में 'चाहता हूँ' क्रिया का 'जाना' कर्म है तभी सन् प्रत्यय लगाया जा सका है। यदि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे खाने से बल बढ़े' इस प्रकार का वाक्य हो जहाँ 'खाने से' करण कारक है तो ऐसी दशा में 'खाने' की धातु के अनन्तर सन् लगा कर इच्छा का बोध नहीं कराया जा सकता।

(क) सन् प्रत्यय का स् धातु में जोड़ा जाता है, यह स् सन्धि के (२६वें) नियम के अनुसार कहीं कहीं ष् हो जाता है। स् जोड़ने के पूर्व

धातु को पृष्ठ ३१९ मे उल्लेख किये हुए नियमों के अनुसार अभ्यस्त कर देना आवश्यक है। अभ्यास में यदि अकार हो तो उसका इकार हो जाता है, जैसे—पठ्+सन्=पठ्+पठ्+सन्=प+पठ्+स=पिपठ्+ष् धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व बहुधा इकार आ जाता है परन्तु कभी कभी किसी किसी धातु में नही भी आता, यदि वेट् हो तो बहुधा इच्छानुसार इकार आता है, और यदि अनिट् हो तो बहुधा नही आता; जैसे—सेट् पठ् धातु का सन्नन्त रूप पिपठ्+इ+ष्=पिपठिष् हुआ, किन्तु सेट् भू धातु का बुभूष्—हुआ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई सन्नन्त धातु के रूप धातु के पद के अनुसार दसो लकारो में चलते हैं। परोक्षभूत में आम् जोड कर कृ, भू और अस् धातुओ के रूप जोड दिए जाते हैं।

उदाहरणार्थ बुध् धातु के प्रथम पुरुष एक वचन के रूप दिए जाते हैं।

	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
लट्	बुबोधिषति	बुबोधिषते	बुबोधिष्यते
लोट्	बुबोधिषतु	बुबोधिषताम्	बुबोधिष्यताम्
विधि	बुबोधिषेत्	बुबोधिषेत	बुबोधिष्येत
लङ्	अबुबोधिषत्	अबुबोधिषत	अबुबोधिष्यत
लिट्	बुबोधिषाञ्चकार	बुबोधिषाञ्चक्रे	बुबोधिषाञ्चक्रे
	बुबोधिषाम्बभूव	बुबोधिषाम्बभूवे	बुबोधिषाम्बभूवे
	बुबोधिषामास	बुबोधिषामासे	बुबोधिषामासे
लुङ्	अबुबोधिषीत्	अबुबोधिषिष्ट	अबुबोधिषि

लुट्	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता
लृट्	बुबोधिषिष्यति	बुबोधिषिष्यते	बुबोधिषिष्यते
आशी०	बुबोधिष्यात्	बुबोधिषिषीष्ट	बुबोधिषिषीष्ट
लृङ्	अबुबोधिषिष्यत्	अबुबोधिषिष्यत	अबुबोधिषिष्यत

यङन्त धातु

१६६–व्यञ्जन[1] से आरंभ होने वाली किसी भी एकाच् ध के अनन्तर क्रिया को वार वार करने अथवा क्रिया को .खूब क का बोध कराने के लिए यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। प्रत्यय दसवें गण की (सूच्, सूत्र, मूत्र्, अट्, ऋ, अश् और उ को छोड़कर) किसी धातु के अनन्तर नहीं लगता, केवल प्र नौ गणों की धातुओं के उपरान्त लग सकता है, जैसे – नेनीयते- वार वार ले जाता है। देदीयते—.खूब देता है।

यङ् प्रत्यय धातु में दो प्रकार से जोडा जाता है, एक को जोड़ने परस्मैपद में रूप चलते है, और दूसरे के जोडने से आत्मनेपद में। परस्मै वाले रूप बहुधा वैदिक संस्कृत में मिलते हैं इस लिए उस का उल्लेख य अनावश्यक है। आत्मनेपद के यङन्त रूपों का दिग्दर्शन कराया जाता है

(क) धातु में पहले यङ् का य् जोड़ा जाता है, जैसे—नी+यङ् नीय, भूय, नन्द्य। नियम १६१ (३) में उल्लिखित किसी किसी धातु व

---

१ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् । ३ । १ । २२ । पौन पुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारः । तस्मिन्द्योत्ये यङ् स्यात् ।

विकृत रूप यहाँ भी हो जाता है, जैसे—दा + यङ् = दीय, बन्ध् + यङ् = बध्य ।

इस प्रकार से प्राप्त हुए यङन्त रूप का अभ्यास पृ० ३१५ पर लिखे हुए नियमों के अनुसार किया जाता है, केवल अभ्यस्त अक्षर के अ का आ, इ अथवा ई का ए तथा उ अथवा ऊ का ओ हो जाता है; जैसे —व्रज् + यङ् = वव्रज्य = वाव्रज्य, दीय = देदीय, नेनीय, बोभूय ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई धातु के आत्मनेपद में दसों लकारों मे रूप चलते हैं । उदाहरणार्थ बुध् धातु के यङन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन में दिए जाते हैं :—

लकार	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
लट्	बोबुध्यते	बोबुध्यते
लोट्	बोबुध्यताम्	बोबुध्यताम्
विधि	बोबुध्येत	बोबुध्येत
लङ्	अबोबुध्यत	अबोबुध्यत
लिट्	बोधाञ्चक्रे	बोधाञ्चक्रे
लुङ्	अबोबुधिष्ट	अबोबुधि
लुट्	बोबुधिता	बोबुधिता
लृट्	बोबुधिष्यते	बोबुधिष्यते
आशी०	बोबुधिषीष्ट	बोबुधिषीष्ट
लृङ्	अबोबुधिष्यत	अबोबुधिष्यत

नामधातु

१६७—जब किसी सुबन्त (संज्ञा आदि) के अनन्तर कोई प्रत्यय जोड़ कर उसे धातु बना लेते हैं तो उसे नामधातु कहते हैं। नाम संज्ञा को ही कहते हैं इसीलिए यह नाम पड़ा। नामधातुओं के विशेष २ अर्थ होते हैं; जैसे—पुत्रायति (पुत्र+क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णाति (कृष्ण+क्विप्)—कृष्ण के समान आचरण करता है। लोहितायते (लोहित+क्यष्)—लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड+णिच्)—मूंडता है, इत्यादि।

नामधातुओं के रूप सभी लकारों में चल सकते हैं, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमान काल में ही होता है।

नीचे नाम धातुओं के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जाते हैं।

१६८—क्यच् प्रत्यय।

(क) जिस[1] वस्तु की इच्छा करे उस वस्तु के सूचक शब्द के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगाया जाता है।

(ख) क्यच् (य) जुड़ने के पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर में परिवर्तन हो जाता है, अ, आ का ई, इ का ई, उ का ऊ, ऋ का री, ओ का अव् और औ का आव्। अन्तिम ङ्, ञ्, ण्, न् का लोप कर दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर का ऊपर लिखे नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। मकारान्त शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर क्यच जुड़ता ही नहीं। उदाहरणार्थ—

१—सुप आत्मनः क्यच्। ३। १। ८॥

पुत्रम् आत्मनः इच्छति = पुत्रीयति (पुत्र + क्यच्)—अपने लिये पुत्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मनः इच्छति = गङ्गीयति (गङ्गा + क्यच्) —अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है। इसी प्रकार कवीयति (कवि + क्यच्) नदीयति (नदी + क्यच्), विष्णूयति (विष्णु + क्यच्), वधूयति (वधू + क्यच्), कर्त्रीयति (कर्तृ + क्यच्), गव्यति (गो + क्यच्), नाव्यति (नौ + क्यच्), राजीयति (राजन् + क्यच्) इत्यादि।

(ग) क्यच्[1] प्रत्यय किसी चीज़ को कुछ समझने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इस दशा में जो समझा जाय अर्थात् जो उपमान हो उस के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगता है, जैसे वह विद्यार्थी को पुत्र समझता है अर्थात् उसके साथ पुत्र का सा व्यवहार करता है। यहाँ पुत्र के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगेगा। (गुरुः छात्रं पुत्रीयति), विष्णूयति द्विजम्—ब्राह्मण को विष्णु के समान समझता है। प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः—भिखारी कुटी को महल समझता है, कुटीयति प्रासादे राजा—राजा महल को कुटी समझता है।

(घ) क्यच् में अन्त होने वाली धातु के रूप परस्मैपद में सब लकारों में चलते हैं, यदि प्रत्यय के य के पूर्व में व्यंजन हो तो लिट्, लोट्, विधि और लट् को छोड़कर शेष लकारों में यकार का लोप कर दिया जाता है, जैसे = समिध्यति, समिधिष्यति आदि।

१—उपमानादाचारे। ३।१।१०। अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम्।

१६९—क्यङ्

(क) किसी सुबन्त के अनन्तर 'जैसा वह करता है वैसा ही यह करता है'[1] इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ् (य) प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाते है।

(ख) इसके रूप आत्मनेपद मे चलते है, इस प्रत्यय के य के पूर्व सुबन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर जैसे क्यच् के पूर्व (१६८ ख) बदलते है वैसे ही बदलते है। शब्द के अन्तिम स् का विकल्प मे (किन्तु ओजस् और अप्सरस् का नित्य) लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ—

कृष्ण इवाचरति = कृष्णायते—कृष्ण के समान आचरण करता है। इसी प्रकार ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है; गर्दभी अप्सरायते—गदही अप्सरा के समान आचरण करती है। यशायते अथवा यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है। विद्वायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान के समान आचरण करता है।

(ग) स्त्री प्रत्ययान्त शब्द का (यदि वह का मे अन्त न होता हो) स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष मे क्यङ् जुडता है; जैसे—कुमारी आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते।

पदव्यवस्था

१७०—ऊपर नियम १४० (ख) मे बता चुके है कि संस्कृत भाषा मे धातुएँ दो पदो मे रक्खी जाती है—परस्मैपद और आत्मनेपद

१ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च । ३ । १ । ११ । ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया । वा० ।

नेपद। कुछ एक पद की ही होती है, कुछ दूसरे की ही और कोई कोई दोनो पदों की। किन दशाओं में धातु एक पद को छोड़कर दूसरे की हो जाती है, यह यहाँ दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य मे धातु केवल आत्मनेपद मे रहती है—कर्तृवाच्य में चाहे वह परस्मैपद में हो चाहे आत्मनेपद में।

दो चार मोटे २ नियम यहाँ दिए जाते हैं।

(क) अधिपूर्वक इङ् धातु का, जन धातु का, द्रु धातु का, बुध तथा युध् का णिजन्त प्रयोग हो तो ये परस्मैपदी होती हैं; जैसे—छात्रः अधीते, गुरु छात्रमध्यापयति, जनयति, द्रावयति, बोधयति और योधयति।

(ख) कृ[1] धातु उभयपदी है। परन्तु यदि 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग लगा हो तो केवल परस्मैपद में होती है (अनुकरोति पराकरोति)। नीचे लिखी दशाओं में वह केवल आत्मनेपद में होती है :—

'अधि' उपसर्ग लगाकर क्षमा करने या अधिकार कर लेने के अर्थ में (शत्रुनधिकुरुते—वैरी को क्षमा कर देता है अथवा उस पर क़ब्ज़ा कर लेता है) 'वि' उपसर्ग लगाकर अकर्मक बनाने के अर्थ में (छात्रा विकुर्वते—विकार लभन्ते) अथवा जब गन्धन (हिंसा, हानि पहुँचाना) अवक्षेपण (निन्दा, भर्त्सना) सेवन, साहसिक कर्म प्रतियत्न (किसी गुण का आधान), प्रकथन अथवा धर्मार्थ में लग जाने का बोध कोई उपसर्ग जोड़ कर कराया जाय जैसे —

---

[1] अनुपराभ्यां कृञः। १। ३।७९ ॥ अधेः प्रसहने। वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्च। १। ३। ३३–३५ ॥ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः। १। ३। ३२ ॥

उत्कुरुते (सूचना देता है—सूचना देकर हानि पहुँचाता है)। श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते (बाज़ बटेर को डराता है)। हरिमुपकुरुते (विष्णु की सेवा करता है)। परदारान् प्रकुर्वते (वे पराई स्त्रियों पर साहस से अत्याचार करते हैं)। एधः उदकस्य उपस्कुरुते (ईंधन पानी में गरमी पहुँचाता है। गाथाः प्रकुरुते (गाथाएँ कहता है)। शतं प्रकुरुते (सौ रुपए धर्मार्थ लगाता है)।

(ग) [1] क्रम धातु उभयपदी है, किन्तु उप और परा के साथ बिना रोक टोक के चलने, बढ़ने और उत्साह के अर्थ में (उपक्रमते, पराक्रमते), आङ् के साथ, सूर्य आदि के निकलने के अर्थ मे (सूर्य आक्रमते), प्र और उप के साथ आरम्भ करने के अर्थ मे (वक्तु प्रक्रमते उपक्रमते)—आत्मनेपद मे ही होती है।

(घ) [2] क्री के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते।

(ङ) [3] क्रीड् धातु के पूर्व यदि अनु, आ परि अथवा सम् में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है ; अनु परि-आ-स-क्रीडते।

---

१ वृत्तिसर्गतायनेषु। उपपराभ्याम्। आङ् उद्गमने। (ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्)। १।३।३८–४०। प्रोपाभ्या समर्थाभ्याम्। १।३।४२।

२ परिव्यवेभ्यः क्रियः। १।३।१८।

३ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च। १।३।२१॥

(च) क्षिप्[1] के पूर्व यदि अभि प्रति, अति में से कोई उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है : अभि अति-प्रति-क्षिपति ।

(छ) गम्[2] के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और मिलने, तथा उपयुक्त होने का अर्थ दिखाना हो तो आत्मनेपदी हो जाती है। सखीभि सङ्गच्छते—सखियों से मिलती है। इयं वार्ता सङ्गच्छते—यह बात ठीक है ।

(ज) चर्[3] के पूर्व यदि उद् उपसर्ग हो और धातु सकर्मक हो जाय अथवा सम् पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—धर्ममुच्चरते—धर्म के विपरीत करता है, किन्तु वाष्पमुच्चरति—आंसू निकलता है रथेन सञ्चरते (रथ पर चलता है) ।

(झ) जि[4] के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'परा' हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, शत्रून् विजयते, पराजयते वा, अध्ययनात् पराजयते—पढ़ने से हार जाता है ।

(ञ) ज्ञा[5] धातु सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी हो जाती है (जिज्ञासते)। नीचे लिखी दशाओं में भी वह आत्मनेपदी होती है:—

---

१ अभिप्रत्यतिभ्य क्षिप । १ । ३ । ८० ॥

२ समो गम्यृच्छिभ्याम् । १ । ३ । २९ ।

३ उदश्चर सकर्मकात् । समस्तृतीयायुक्तात् । १। ३ । ५३—५४ ॥

४ विपराभ्यां जे । १ । ३ । १९ ॥

५ अपह्नवे ज्ञ । अकर्मकाच्च। सम्प्रतिभ्यामनाध्याने १।३ ४४—४६॥

यदि अकर्मक हो (सर्पिषो जानीते), यदि 'अप'-पूर्वक अपह्नव (इनकारी) का अर्थ बताती हो (शतमपजानीते—सौ (रुपयों) से इनकार करता है), यदि 'प्रति' पूर्वक प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो (शतं प्रतिजानीते—सौ रुपए की प्रतिज्ञा करता है), 'सम्' पूर्वक आशा करने के अर्थ में (शतं सञ्जानीते—सौ रुपए की आशा करता है)।

(ट) दा[1] के पूर्व यदि आङ् उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है (आदत्ते ; नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्)।

(ठ) दृश्[2] सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी होती है (दिदृक्षते) तथा 'सम्' पूर्वक यदि अकर्मक हो तब भी आत्मनेपदी होती है (सम्पश्यते—भली प्रकार सोचता है)।

(ड) नी[3] धातु से जब सम्मान करने, उठाने, उपनयन करने, ज्ञान, वेतन देकर काम में लगाने, कर (टैक्स) आदि अदा करने (चुकाने) अथवा भले कार्य में ख़र्च करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है; जैसे (क्रम से) शास्त्रे शिष्यं नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है—इससे उसका सम्मान होगा)। दण्डमुन्नयते (डंडा ऊपर उठाता है) माणवकमुपनयते (लड़के का उपनयन करता है) तत्त्वं नयते (तत्त्व का

१—आङो दोऽनास्यविहरणे । १ । ३ २० ॥

२—अर्ति श्रु दृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । वा ।

३—सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञान भृतिविगणनव्ययेषु नियः । १ । ३ । ३६ ।

निश्चय करता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता है), कर्मकरानुपनयते (मजदूर लगाता है) करं विनयते (टैक्स चुकाता है), तथा शतं विनयते (सौ रुपए अच्छी तरह ख़र्च करता है) ।

(ट) प्रच्छ्[1] धातु के पूर्व 'आ' लगाकर जब अनुमति लेने का अर्थ निकालना हो तो यह धातु आत्मनेपदी हो जाती है: जैसे—आपृच्छस्व प्रियसखममुम् (इस प्रियमित्र से जाने की अनुमति ले लो) । 'सम्' लगा कर जब यह धातु अकर्मक होती है तब भी आत्मनेपदी हो जाती है (सम्पृच्छते) ।

(ण) भुज्[2] धातु रक्षा करने के अर्थ में परस्मैपदी होती है और सब अर्थों में आत्मनेपदी। महीं भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है) । महीं बुभुजे (पृथ्वी का भोग किया)

(त) रम्[3] आत्मनेपदी धातु है किन्तु वि, आङ्, परि और उप उपसर्गों के अनन्तर आत्मनेपदी हो जाती है : जैसे – वत्सैतस्माद्विरम, आरमति, परिरमति, यज्ञदत्त उपरमति (रमयति) ।

(थ) वद्[4] नीचे लिखे अर्थों में आत्मनेपदी होती है:—

१—आङि नुप्रच्छ्योः । वा० ॥

२ – भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

३—व्याङ्परिभ्यो रमः । उपाच्च । १ ३ । ८३—८४ ॥

४—भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः । १ । ३ । ४७ ॥ व्यक्तवाचां समुच्चारणे । १ । ३ । ४८ ॥ अपाद्वदः । १ । ३ । ७३ ॥

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र में चमकता है, अर्थात् इतना विद्वान् है कि चमकता है), उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, शान्त करना)—भृत्यानुपवदते (नौकरों को समझा कर शान्त करता है), ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है), यत्न—क्षेत्रे वदते (खेत में उद्योग करता है) विमति (झगड़ा)—परस्परं विवदन्ते स्मृतयः (स्मृतियाँ परस्पर झगड़ा करती हैं), उपमन्त्रण (खुशामद करना)—दातारं उपवदते (दाता की प्रशंसा करता है), अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ में—अपवदते—निन्दा करता है।

(द) विश्[1] धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है , जैसे—निविशते, अभिनिविशते।

(ध) श्रु[2] धातु के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और अच्छी तरह सुनने का अर्थ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, संशृणुते (अच्छी तरह सुनता है), सशृणोति (सुनता है)। सन्नन्त श्रु आत्मनेपदी होती है (शुश्रूषते) किन्तु 'आ' अथवा 'प्रति' के अनन्तर परस्मैपदी ही रहती है (आशुश्रूषति प्रतिशुश्रूषति)।

(न) स्था[3] धातु के पूर्व यदि सम्, अव, प्र और वि में से कोई

---

१ नेर्विशः । १ । ३ ।१७।।

२ अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । वा० ।

३ समवप्रविभ्यः स्थः ।१।३।२२।। आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् । वा० । उदोऽनूर्ध्वकर्मणि । १ । ३ । २४ ।। उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् । वा० । वा लिप्सायाम् । वा० ।

उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, संतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते और वितिष्ठते। प्रतिज्ञा करनेके अर्थ में 'आङ्' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, शब्दं नित्यम् आतिष्ठते (शब्द नित्य है यह प्रतिज्ञा करता है)। 'उद्' पूर्वक स्था धातु का यदि ऊपर उठना अर्थ न हो तो, तथा 'उप' पूर्वक देवपूजा, मिलने, मित्र बनाने, सड़क के जाने तथा लिप्सा के अर्थों आत्मनेपदी होती है।

मुक्तावुत्तिष्ठते, किन्तु पीठादुत्तिष्ठति, आदित्यमुपतिष्ठते (सूर्य को ता है), गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है), रथिकानु-तिष्ठते (रथवालो से मित्रता करता है), पन्थाः काशीमुपतिष्ठते, ास्ता काशी को जाता है), भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा (भिखारी ालिक के पास—लालच से—आता है)।

एकादश सोपान

कृदन्त विचार

५७१-धातु[1] में जिस प्रत्यय को जोड कर संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय बनता है, उसको कृत् प्रत्यय कहते है और इसके द्वारा जो शब्द सिद्ध होता है उसको कृदन्त (जिसके अन्त में कृत् हो) कहते हैं. जैसे—कृधातु से तृच् प्रत्यय जोड़कर 'कर्तृ' शब्द बना।

---

१ धातोः। ३। १। ९१।

यहां तृच् कृत् प्रत्यय है और 'कर्तृ' कृदन्त है, यह संज्ञा है और इसके रूप अन्य संज्ञाओं की तरह विभक्तियों में चलेंगे।

कृत्[1] और तिङ् प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृदन्त संज्ञा विशेषण अथवा अव्यय होते है—क्रिया नहीं, किन्तु तिङन्त सदा क्रिया ही होते है। कृत् और तद्धित में यह अन्तर है कि तद्धित सदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोड़कर अन्य संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिये होता है किन्तु कृत् धातु में ही जोड़ा जाता है।

जो कृदन्त संज्ञा अथवा विशेषण होते है उनके रूप चलते है, जो अव्यय होते है वे एकरूप रहते है, जैसे—गम् धातु से तृच् लगाकर गन्तृ बना, इसके रूप चलेंगे, किन्तु क्त्वा लगाकर गत्वा बनने पर यह सर्वदा एकरूप रहेगा।

कोई कोई कृदन्त भी कभी कभी क्रिया का काम देता है, जैसे—स गतः (वह गया) में 'गतः' शब्द। वस्तुतः यह विशेषण है और इस वाक्य में क्रिया छिपी हुई है स गतः (अस्ति)।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैः— कृत्य, कृत् और उणादि

कृत्य प्रत्यय

१७२—कृत्य[2] प्रत्यय सात है—तव्यत्, तव्य अनीयर्, केलिमर्

1. कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ।
2. कृत्याः । ३ । १ । ९५ ।

यत्, क्यप्, ण्यत् । ये प्रत्यय सदा भाववाच्य[1] और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते है, कर्तृवाच्य में नहीं।[2] अंगरेज़ी में जो काम पोटेंशल् पार्टिसिप्ल् (Potential Participle) से लिया जाता है वही काम संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द करते है । इनको संज्ञाओ के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग में लाते है, जैसे—पक्तव्याः माषाः—जो उरद पकाने चाहिए वे ; कर्तव्यं कर्म—वह काम जो करना चाहिए, [प्राप्त]व्या सम्पत्तिः –वह संपत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए, गन्तव्या [नग]री—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए, स्नानीयं चूर्णम्, दानीयो विप्रः [इत्]यादि इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में जो अर्थ, 'चाहिए' [यो]ग्य' द्वारा प्रकट किया जाता है वह संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त [शब्]द द्वारा होता है । चाहिये वाला भाव कर्तृवाच्य में बहुधा विधि[लि]ङ् से भी सूचित होता है, जैसे—रामः सीतां पुनः गृह्णीयात्—[र]ाम को चाहिए कि सीता को फिर ग्रहण करे अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करे । भृत्यः स्वामिनं सेवेत—नौकर मालिक की सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिए अथवा करनी योग्य है, इत्यादि । यदि इस प्रकार की विधिलिङ् की क्रिया को कर्तृवाच्य से भाववाच्य मे पलटना हो तो कृत्यान्त शब्द प्रयोग मे लाना चाहिए, जैसे रामेण सीता पुनर्ग्रहीतव्या, भृत्येन स्वामी सेवनीय आदि । ऊपर कह आये है कि कृदन्त क्रिया

---

१. कर्तरि कृत् । ३ । ४ । ६७ । तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ।३।४ । ७० ।
२ कृत्यल्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ ।

नहीं होते, इन प्रयोगो में भी ग्रहीतव्या और सेवनीयः क्रिया नहीं हैं, किन्तु विशेषण। अंगरेज़ी में इनको प्रेडिकेटिव् ऐड्जेक्टिव् (Predicative adjective कहते है। कृन्यान्त शब्दों के रूप संज्ञाओं की तरह तीनो लिङ्गो में चलते हैं—पुंलिङ्ग और नपुंसक में अकारान्त, और स्त्री लिङ्ग में आकारान्त।

१७३—तव्यत्[1] (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिमर् (एलिम) ये प्रायः सब धातुओं में लगाए जा सकते है। तव्यत् और तव्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है, तव्यत् के त् से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते है, इसी प्रकार 'अनीयर्' के र् से सूचित होता है कि अनीयर् में अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते है। किन्तु स्वर की बारीकियाँ केवल वैदिक संस्कृत में काम आती है भाषा की संस्कृत में नहीं, इस लिये तव्यत् और तव्य को बराबर ही समझना चाहिए और अनीयर् को 'अनीय'। केलिमर् के क और र् का लोप हो जाता है और केवल 'एलिम' धातुओं में जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय प्रायः कुछ सकर्मक धातुओं में ही जुड़ा हुआ प्रयोग में मिलता है।

इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर अथवा यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधा वाले ह्रस्व स्वर का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते है। जो धातुएँ सेट् होती हैं उनमें प्रत्यय और धातु के बीच में इ आ जाती है, जो अनिट् होती हैं उनमें

---

१ तव्यत्तव्यानीयरः। ३। १। ९६। केलिमर उपसंख्यानम्। वा०।

हीं और जो वेट् होती है उनमें विकल्प से लगती है। उदाहरणार्थ
कुछ रूप दिए जाते है।

धातु	तव्य	अनीय	एलिम
पठ्	पठितव्य	पठनीय	
भू	भवितव्य	भवनीय	
गम्	गन्तव्य	गमनीय	
नी	नेतव्य	नयनीय	
चि	चेतव्य	चयनीय	
चर्	चरितव्य	चरणीय	
दा	दातव्य	दानीय	
भुज्	भोक्तव्य	भोजनीय	
अद्	अत्तव्य	अदनीय	
भक्ष्	भक्षितव्य	भक्षणीय	
शंस्	शंसितव्य	शंसनीय	
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	
छिद्	छेत्तव्य	छेदनीय	छिदेलिम
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम
पच्	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम
कथ्	कथितव्य	कथनीय	
चुर्	चोरितव्य	चोरणीय	
पूज्	पूजितव्य	पूजनीय	

जिगमिष्	जिगमिष्टव्य	जिगमिषणीय
बुबोधिष्	बुबोधिष्टव्य	बुबोधिषणीय इत्यादि।

१७४-कृत्य प्रत्यय यत्[1] (य) केवल ऐसी धातुओं में—जिनके अन्त में कोई स्वर हो अथवा ऐसी धातुओं में जिनके अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो और उपधा में अकार हो—जोड़ा जाता है।

यत्[2] के पूर्व स्वर को गुण होता है, यदि आ हो तो उसके स्थान पर पहले ई हो जाती है और फिर गुण (ए) होता है। यत् के पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ए, ऐ, ओ, अथवा औ, हो तो वह ई हो जाता है और फिर गुण होता है; जैसेः—

दा+यत्	=	द्+ई+य	=	द्+ए+य	=	देय
धे+यत्	=	धी+य	=	धे+य	=	धेय
गै+यत्	=	गी+य	=	गे+य	=	गेय
छो+यत्	=	छी+य	=	छे+य	=	छेय
चि+यत्	=	चे+य			=	चेय
नी+यत्	=	ने+य			=	नेय
शप्+यत्	=	शप्+य			=	शप्य
जप्+यत्	=	जप्+य			=	जप्य
लप्+यत्	=	लप्+य			=	लप्य

१ अचो यत्। ३। १। ९७। पोरदुपधात्। ३। १। ९८।

२ ईद्यति। ६। ४। ६५।

लभ्+यत् = लभ्+य = लभ्य

लम्भ्+यत् = लम्भ+य = लम्भ्य

(यदि लभ् धातु के पूर्व आ उपसर्ग हो अथवा उप उपसर्ग हो (प्रशंसा वाचक) तो बीच में नुम् (न्=म्) आ जाता है)।[1]

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जनान्त धातुओ में लगता है जिनमें मुख्य ये हैं :—[2]

शस्—शस्य । यत्—यत्य । जन्—जन्य ।

हन्—वध्य (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है)

शक्—शक्य । सह्—सह्य। चर्—चर्य । यम्—यम्य ।

१७५—क्यप् (य) कुछ धातुओं में ही लगता है, इसके पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त, अर्थात् धातु और प्रत्यय के बीच में त् आ जाती है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य । और इसके साथ गुण नहीं होता ।

जिन[1] धातुओं में क्यप् लगता है उनमें ये मुख्य हैं :—

इ (जाना)+क्यप् = इत्य

---

१ आङो यि । उपात्प्रशंसायाम् । ७ । १ । ६५—६६ ।

२ तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्य । वा० । हनो वा यद्वधश्चवक्तव्यः । वा० । शकिसहोश्च । ३ । १ । ९९ । गदमदचरयमश्चानुपसर्गे । ३ । १ । १०० ।

१ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् । ३ । १ । १०९ । मृजेर्विभाषा

स्तु	,,	=	स्तुत्य	
शास्	,,	=	शिष्य	
वृ	,,	=	वृत्य	
दृ	,,	=	दृत्य	
जुष्	,,	=	जुष्य	
मृज्	,,	=	मृज्य	विकल्प से
भृ	,,	=	भृत्य (नौकर)	,,
कृ	,,	=	कृत्य	,,
वृष्	,,	=	वृष्य	,,

१७६—ऐसी धातुएँ[1] जिनका अन्तिम वर्ण ऋकार अथवा व्यञ्जन हो उनके उपरान्त कृत्य प्रत्यय ण्यत् (य) लगता है, इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि हो जाती है। यदि उपधा में अकार हो तो उसकी (आ) वृद्धि हो जाती है और[2] यदि कोई और स्वर हो तो बहुधा गुण को प्राप्त होता है। इसके पूर्व के च् और ज् के स्थान में क् और ग् यथाक्रम हो जाते है, किन्तु यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो (जैसे गर्ज्) तो यह परिवर्तन न होगा।

। ३ । १ । ११३ । भृञोऽसंज्ञायाम् । ३ । १ । ११२ । विभाषा कृवृषोः । ३ । १ । १२० ।

१ ऋहलोर्ण्यत् । ३ । १ । १२४ ।

२ चजोः कुघिण्यतोः । ७ । ३ । ५२ । नक्वादेः । ७ । ३ । ५९ ।

यत् का विचार करते समय कह आए हैं कि स्वरान्त धातुओं के अनन्तर यत् लगता है, किन्तु यहाँ ऋकारान्त धातुओं के उपरान्त ण्यत् लगता है ऐसा नियम रक्खा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऋकारान्त धातुओं को छोड़ कर अन्य स्वरान्त धातुओं में यत् लगता है ऋकारान्त में ण्यत्। उसी प्रकार उन व्यजनान्त धातुओं को छोड़ कर जिनमें यत् और क्यप् लगता है, शेष मे ण्यत् लगता है। उदाहरणार्थः—

कृ+ण्यत्=क्+आर्(वृद्धि)+य=कार्य

पठ्+ण्यत्=प्+आ+ठ्+य=पाठ्य (उपधा के अ को वृद्धि)

वृष्+ण्यत्=व्+अर्+ष्+य=वर्ष्य (उपधा के ऋ को गुण)

पच्+ण्यत्=प्+आ+क्+य=पाक्य (उपधा के अ की वृद्धि और च् को क्)

मृज्+ण्यत्=म्+आर्+ग्+य=मार्ग्य (उपधा के अ की वृद्धि, और ज् को ग्)

[१] च्, ज्, का क्, ग् हो जाने वाला नियम यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, त्यज् धातुओं में नही लगता—याज्य, याच्य, रोच्य, प्रवाच्य, त्याज्य। भुज् के दोनो रूप बनते हैं—भोग्य (भोग करने योग्य) और भोज्य (खाने योग्य), पच् के दोनो—पाच्य (अवश्य पकाने योग्य) और पाक्य; वच् के भी वाच्य—(कहने योग्य) और वाक्य, दो रूप होते हैं।

---

१ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च। ७। ३। ६६। त्यजेश्च।

उकारान्त अथवा ऊकारान्त धातुओं के अनन्तर भी ण्यत् प्रत्यय लगता है यदि आवश्यकता का बोध कराना हो तो; जैसे :—[1]

श्रु + ण्यत् = श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)

पू + ण्यत् = पाव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य)

यु + ण्यत् = याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)

लू + ण्यत = लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

१७७—ऊपर कह आए हैं कि कृत्य प्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयोग मे आते है किन्तु थोड़े से ऐसे शब्द हैं जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते है। वे ये हैं:—[2]

वस् + तव्य = वास्तव्यः (बसने वाला)—इस अर्थ में णिच् भी लग जाता है जिसके कारण वृद्धि रूप वास् हो गया।

भू + यत् = भव्यः (होने वाला)

गै + यत् = गेय. (गाने वाला)

प्रवच् + अनीयर् = प्रवचनीयः (व्याख्यान करने वाला)

उपस्था + अनीयर् = उपस्थानीयः (निकट खड़ा होने वाला)

जन् + यत् = जन्य (पैदा करने वाला)

प्लु + ण्यत् = प्लाव्य (पैरने वाला)

आपत् + ण्यत् = आपात्य (गिरने वाला)

---

१ ओरावश्यके । ३ । १ । १२५ ।

२ वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च । वा० । भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा । ३ । ४ । ६८ ।

कृत् प्रत्यय

१७८–यद्यपि कृत् से कृत्य, कृत् और उणादि तीनो प्रकार के प्रत्ययो का बोध होता है तथापि कृत्य और उणादि के अलग होने के कारण, शेष कृत् प्रत्ययो को ही भेद प्रकट करने के लिए कभी २ कृत् कहते है। इन कृत् प्रत्ययो में कुछ ऐसे है जिनके रूप चलते हैं, कुछ के नहीं। जिनके रूप नही चलते उनके विषय में ऐसा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा, शेष के रूप चलते है ऐसा समझना चाहिए।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय

१७९–भूतकाल के कृत् प्रत्ययो को अँगरेज़ी में पास्ट् पार्टिस्प्ल (Past Participle) कहते हैं। इस[1] अर्थ में प्रधान दो प्रत्यय है—क्त (त) और क्तवतु (तवत्). इन दोनो प्रत्ययो को "निष्ठा" कहते हैं। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है 'समाप्ति', क्त और क्तवतु किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते है इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते है, जैसे—'तेन भुक्तम्'—यहाँ भुज् धातु में क्त प्रत्यय लगाने से यह तात्पर्य निकला कि भोजनं का कार्य समाप्त हो गया। सोऽपराधं कृतवान्—यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला—करने का कार्य समाप्त हो गया। सारांश यह कि क्त और क्तवतु समाप्तिबोधक

---

१. भूते। ३। २। ८४। क्तक्तवतू निष्ठा। १। १। २६।

प्रत्यय हैं। ये दोनो प्रत्यय प्रायः सभी धातुओ के अनन्तर भूत-काल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। इन में के क् और उ का लोप हो जाता है और त तथा तवत् शेप रह जाते हैं। इनके रूप तीनो लिङ्गो में और सातो विभक्तियो में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुंलिङ्ग हुआ तो पुंलिङ्ग, स्त्री० तो स्त्री० और नपुंसक० तो नपुंसक०। क्त प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त, और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त होते हैं। क्तवतु में अन्त होने वाले शब्द पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में नकारान्त (श्रीमत् के समान) और स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त (नदी के समान) होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ धातुओ के क्तान्त और क्तवत्वन्त रूप तीनो लिङ्गो में प्रथमा के एक वचन में दिए जाते हैं।

क्तप्रत्ययान्त

पुं०	न०	स्त्री०
पठ्—पठितः	पठितं	पठिता
स्ना—स्नातः	स्नातं	स्नाता
पा—पातः	पात	पाता
भू—भूतः	भूत	भूता
कृ—कृतः	कृतं	कृता
त्यज्—त्यक्तः	त्यक्तं	त्यक्ता
तृप्—तृप्तः	तृप्त	तृप्ता
शक्—शक्तः	शक्तं	शक्ता
सिच्—सिक्तः	सिक्तं	सिक्ता

क्तवतुप्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नानवती
पातवान्	पातवत्	पातवती
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती

(१) निष्ठा प्रत्ययो के पूर्व जिन धातुओं में संप्रसारण[१] होता है उनमें सप्रसारण हो जाता है, अर्थात् यदि प्रथम वर्ण य र ल व हों तो इनके स्थान में क्रम से इ ऋ लृ उ हो जाते हैं, जैसे वद्+क्त=उक्त, वद्+क्तवतु=उक्तवत्, वस्+क्त=उषित, वस्+क्तवतु=उषितवत्।

(२) यदि निष्ठा[२] प्रत्यय ऐसी धातु के उपरान्त आवे जिसके अन्त में र् अथवा द् हो (और निष्ठा तथा धातु के बीच में सेट् अथवा वेट् की इ न आवे—जैसे चर्+क्त (त)=चर्+इ+त=चरित) तो निष्ठा के त् के स्थान में न हो जाता है, और उसके पूर्व के द को न् हो

१ इग्यण सम्प्रसारणम्। १। १। ४५।

२ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः। ८। २। ४२।

जाता है, जैसे—शॄ से शीर्ण, शीर्णवत्, जॄ से जीर्ण, जीर्णवत्, छिद् से छिन्न, छिन्नवत्, भिद् से भिन्न, भिन्नवत्।

[1] संयुक्ताक्षर से आरम्भ होने वाली और आकार में अन्त होने वाली तथा कहीं न कहीं य्, र्, ल्, व् में से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है, जैसे—म्लान, ग्लान, स्त्यान, गान, ध्यान। किन्तु कुछ में नहीं भी होता–ख्यात, ध्यात आदि।

[2] १८०—क्तवतु प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सदा कर्तृवा में प्रयोग में आते हैं, अर्थात् कर्ता (Agent) के विशेषण होते स भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु इत्यादि। क्त प्रत्यय कर्मवाच्य भाववाच्य में प्रयुक्त होता है, अर्थात् कर्म (Object) का वि षण होता है, तेन भुक्तम्, रामेण सीता त्यक्ता, तेन गतम् दत्तधनं दिया हुआ धन। परन्तु गत्यर्थक धातुओं में तथा अकर्मक धातु में का क्त कर्तृवाच्य के अर्थ में भी प्रयोग में आता है, जैसे स ग चलितः। श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस् धातुओं के क्तान्त शब्द कर्तृवाच्य का बोध कराते है—लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः = हरि लक्ष्मी का आलिङ्गन किया, हरिः शेषमधिशयितः—हरि शेष (ना पर सोये। हरिः वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपासितः। (हरि ने) शि

१ संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः। ८। २। ४३।

२ कर्तरि कृत्। ३। ४। ६७। तयोरेवकृत्यक्तखलर्थाः। ३। ४। ७०। गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च। ३। ४। ७२।

को पूजा। बालः रामनवमीमुपोषितः—लड़के ने रामनवमी को उपवास किया।

नपुंसक लिङ्ग मे क्तान्त शब्द कभी २ उस क्रिया से बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्बल् नाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग में आता है। तस्य गतं वरं (उसका चला जाना अच्छा है)। यहाँ गतं—गमनं के अर्थ में आया है। इसी प्रकार पठितं=पठनं. सुप्तं=स्वापः, इत्यादि।

लिट् (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय क्वसु (वस) और कानच् (आन) हैं, क्वसु परस्मैपद की धातु के अनन्तर जोड़ा जाता है, और कानच् आत्मनेपदी धातु के अनन्तर। इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः वैदिक संस्कृत मे ही मिलते हैं, किन्तु कभी कभी भाषा संस्कृत में भी प्रयोग में आते दिखाई पड़ते हैं।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व धातु का जो रूप होता है (जैसे गम् का लिट् अन्यपुरुष के बहुवचन में रूप हुआ जग्मुः इस में जग्म्—धातु का रूप हुआ—इसी प्रकार ददुः से दद्—इत्यादि) उसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते है यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हो जाती है, उदाहरणार्थ—

---

[1] नपुंसके भावे क्तः। ३। ३। ११४।

[2] लिटः कानज्वा। क्वसुश्च। ३। २। १०६—७।

	क्वसु	कानच्
गम्—	जग्मिवस्	
नी—	निनीवस्	निन्यान
दा—	ददिवस्	ददान
वच्—	ऊचिवस्	ऊचान
कृ—	चकृवन्	चक्राण
दृश्—	ददृश्वस्	

इनके रूप तीनो लिङ्गों में अलग २ संज्ञाओ के समान चलते हैं। स जग्मिवान्—वह गया। तं तस्थिवासं नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खडे हुए उस को; श्रेयासि सर्वाण्यधिजग्मिवान्स्त्वम्—तुम को सब अच्छी बातें प्राप्त हुई थीं।

वर्तमानकाल के कृत् प्रत्यय

१८१—इनको अँगरेज़ी में प्रेज़ेंट पार्टिस्पल (Present Participle) कहते हैं। इस अर्थ का बोध कराने के लिए[1] शतृ और शानच् (आन) मुख्य हैं। इन दोनो को संस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते हैं। सत् का अर्थ है 'विद्यमान' 'वर्तमान'। ये दोनो प्रत्यय किसी धातु में जुड़ कर उस धातु द्वारा सूचित वर्तमान काल की क्रिया का बोध विशेषण रूप से कराते हैं, जैसे सः गच्छन्—वह जाता हुआ

१ लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ । तौ सत् । ३ । २ । १२७ ।

(है) अर्थात् वह जारहा है. सः पठन् (अस्ति)—वह पढ़ रहा है। इन प्रयोगो से सूचित होता है कि क्रिया अभी जारी है। क्रिया के जारी रहने का ही अर्थ सत् प्रत्ययो से सूचित किया जाता है।

१८२–शतृ परस्मैपदी धातुओ के अनन्तर तथा शानच् आत्मनेपदी धातुओ के अनन्तर जोड़ा जाता है। धातुओ का वर्तमान कालके अन्यपुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे गच्छन्ति—गच्छ। ददति—दद् आदि) उसी मे सत् प्रत्यय जोडे जाते है। यदि धातु के रूप के अन्त में अ हो तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप हो जाता है। यदि[1] शानच् के पूर्व अकारान्त धातुरूप आवे तो शानच् (आन) के स्थान पर ' मान ' जुड़ता है, अन्यथा ' आन '। नीचे कुछ रूप उदाहरणार्थ दिए जाते हैं:—

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठत्	पठमान	पठ्यमान
कृ	कुर्वत्	कुर्वाण	क्रियमाण
गम्	गच्छत्		गम्यमान
नी	नयत्	नयमान	नीयमान
दा	ददत्	ददमान	दीयमान
चुर	चोरयत्	चोरयमाण	चोर्यमाण

1 आने मुक्। ७। २। ८२।

पिपठिष् पिपठिषत् पिपठिषमाण पिपठिष्यमाण
(सन्नन्त)

आस्[1] धातु के उपरान्त शानच् आने से शानच् के 'आन' को 'ईन' हो जाता है ; आस+शानच्=आसीन ।

सत् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में अलग २ चलते हैं ।

(क) चानश्[2] (आन) प्रत्यय परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में किसी की आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए जोड़ा जाता है, जैसे -भोगं भुञ्जानः भोग भोगने की आदत वाला । कवचं बिभ्राणः—कवच धारण करने की अवस्था वाला (अर्थात् तरुण) । शत्रु निघ्नानः—शत्रु को मारने वाला (अर्थात् मारने की शक्ति रखने वाला) ।

भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१८३[3]—भविष्यकाल के प्रत्यय जिनको अंगरेज़ी में फ्यूचर् पार्टिसिप्ल (Future Participle) कहते हैं संस्कृत में दो हैं—वही सत् प्रत्यय जो वर्तमान के हैं । अन्तर केवल इतना है कि यह

---

१ ईदासः । ७ । २ । ८३ ।

२ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् । ३ । २ । १२९ ।

भविष्य (लृट्) के अन्यपुरुष के बहुवचन में जो धातुरूप होता है उसके अनन्तर जोडे जाते है, जैसे—भविष्यन्ति के भविष्य्—में अत् और मान जोड़कर भविष्यत् और भविष्यमाण रूप बनते है। इसी कारण भविष्यकाल के इन प्रत्ययो को कभी कभी ष्यत् और ष्यमाण भी कहते है। उदाहरणार्थ कुछ रूप देते हैः—

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठिष्यत्	पठिष्यमाण	पठिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
गम्	गमिष्यत्	गमिष्यमाण	गमिष्यमाण
नी	नेष्यत्	नेष्यमाण	नेष्यमाण
दा	दास्यत्	दास्यमान	दास्यमान
चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यत्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण

इन प्रत्ययो से अन्त होने वाले शब्दो के रूप भी तीनो लिङ्गो में अलग २ संज्ञाओ के समान चलते हैं।

तुमुन् प्रत्यय

१८४—जब कोई दूसरी क्रिया करने के लिए कोई क्रिया करता है तब जिस क्रिया के लिए क्रिया की जाती है उस की धातु में तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है, जैसे—कृष्णं द्रष्टुं याति—कृष्ण को

[1] तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्। ३। ३। १०।

देखने के लिए जाता है। इस वाक्य में दो क्रियायें है—देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। जाने का प्रयोजन देखना है, इसलिए दृश में तुमुन् (तुम्) जोड़ कर द्रष्टुं बनाया गया। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है उसकी अपेक्षा तुमुनन्त क्रिया सदा बाद की होती है, जैसे ऊपर के उदाहरण में देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इसी प्रकार 'कृष्णं द्रष्टुमगमत्' इस वाक्य में जाने की क्रिया की समाप्ति के उपरान्त ही देखने की क्रिया हो सकती है, इसीलिए तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य में होती है।

तुमुनन्त क्रिया के अर्थ का बोध अँगरेज़ी में जेरण्डियल् इन्‌फिनिटिव्(Gerundial Infinitive) से होता है, जैसे-He goes to see Krishna वाक्य में to see का अर्थ है ' देखने के लिए '। किन्तु अंगरेज़ी में इन्‌फिनिटिव् संज्ञा की तरह भी प्रयोग में आता है और तब उसको नाउन् इन्‌फिनिटिव् या सिम्पल इन्‌फिनिटिव् कहते है। संस्कृत की तुमुनन्त क्रिया नाउनइन्‌फिनिटिव की तरह कभी भी प्रयोग में नहीं आती इतना ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे To go to see Krishna is bad—कृष्ण को देखने के लिए जाना बुरा है। इस वाक्य में तीन क्रियाएं हैं-देखना, जाना, है। इन में से दो के लिए अंगरेज़ी में इन् फिनिटिव् प्रयोग मे आया है, एक का अर्थ है ' जाना ' दूसरे का ' देखने के लिए '। इनमें से 'देखने के लिए ' इस अर्थ के लिए संस्कृत मे तुमुनन्त क्रिया आवेगी ' जाना ' के वास्ते कोई संज्ञा। संस्कृत अनुवाद यह होगा—कृष्णं

द्रष्टुं गमनं वरमास्ति। इस वाक्य में 'द्रष्टुं' तुमुनन्त क्रिया है और 'गमनं' संज्ञा। इस प्रकार, नाउन इन्फिनिटिव् की तरह, संस्कृत के तुमुनन्त शब्द को प्रयोग में नहीं ला सकते। ला सकते है तो केवल जेरण्डियल् इन्फिनिटिव् की तरह।

(क) जिस[1] क्रिया के साथ तुमुनन्त शब्द आता है उस क्रिया का तथा तुमुनन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न कर्ता होने से तुमुनन्त शब्द प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, जैसे रामः पठितु विद्यालयं गच्छति। यहाँ 'पठितु' और 'गच्छति' दोनो का कर्ता राम ही है, यदि दोनो का कर्ता अलग अलग होता तो तुमुनन्त शब्द प्रयोग मे न आता।

(ख) कालवाची[2] शब्दो (काल समय, वेला) के साथ एक कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग मे आता है, जैसे—गन्तुम् कालोऽयमस्ति-यह जाने के लिए समय है। यहाँ दो शब्द क्रियावाचक हैं 'है' और 'जाने के लिए'। 'है' का कर्ता है 'कालः' और 'जाने के लिए' का कर्ता कोई और, किन्तु यहाँ तब भी तुमुनन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार, भोक्तुं-वेला, अध्येतु समय, द्रष्टु कालः इत्यादि प्रयोग होते हैं।

तुमुनन्त[3] शब्द अव्यय होता है इसके रूप नहीं चलते।

---

१ समानकर्तृकेषु तुमुन्। ३। ३। १५८।

२ कालसमयवेलासु तुमुन्। ३। ३। १६७।

३ कान्तत्वादव्ययत्वम्। सि० कौ०।

पूर्वकालिक क्रिया

१८५—जब[1] किसी क्रिया के हो जाने पर दूसरी क्रिया आरम्भ होती है तब होगई हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में इसका बोध 'कर' अथवा 'करके' लगा कर होता है; जैसे राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया—(रामः रावणं हत्वा विभीषणाय राज्यं ददौ) इस वाक्य में राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्व-कालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया का और उसके साथ वाली क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'ददौ' और 'हत्वा' दोनो का कर्ता 'रामः' है। भिन्न कर्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नहीं हो सकता, जैसे—'लक्ष्मणः मेघनादं हत्वा, रामः विभीषणाय राज्यं ददौ'—'लक्ष्मण ने मेघनाद को मार कर, राम ने विभीषण को राज्य दिया' यह वाक्य अशुद्ध है क्योंकि मारने की क्रिया का कर्ता लक्ष्मण, देने की क्रिया के कर्ता राम से भिन्न है।

पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए संस्कृत में दो प्रत्यय हैं—क्त्वा (त्वा) और ल्यप् (य)। ल्यप्[2] प्रत्यय केवल ऐसी धातुओं के उपरान्त जोड़ा जाता है जिनके पूर्व में कोई उपसर्ग

१. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले। ३। ४। २१।

२ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्। ७। १। ३७।

नम् , यम् , रम् , के म् रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि दो दो रूप होते है।

णिजन्त[1] और चुरादिगण की धातुओ की उपधा में यदि ह्रस्वस्वर जैसे प्रणम्-(णिजन्त) हो तो उनमें ल्यप् के पूर्व अय् जोड़ा जाता है अन्यथा नहीं; यथा—प्रणम्+अय्+ल्यप् (य) =प्रणमय्य, किन्तु चोर्+य=चोर्य (चोरय्य नहीं होता)।

(ख) पूर्वकालिक[2] क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यबन्त) जब अलम् शब्द और खलु शब्द के साथ आती है तब पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है. जैसे—अलं कृत्वा—बस, मत करो. पीत्वा खलु—मत पियो, विजित्य खलु—बस न जीतो; अवमत्यालम्—बस अपमान न करो।

णमुल् प्रत्यय

१८६—जब[3] किसी क्रिया को बार बार करने का भाव सूचित करना हो तो क्त्वाप्रत्ययान्त शब्द अथवा णमुल्[4]प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है,और यह शब्द दो बार रक्खा जाता है, जैसे–घह बार

---

१ ल्यपि लघुपूर्वात् । ६ । ४ । ५६ ।

२ अलंखल्वोःप्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३ । ४ । १८ ।

३ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च । ३ । ४ । २२ ।

४ नित्यवीप्सयोः । ८ । १ ।४।

वार याद करके शिव को प्रणाम करता है, यहाँ याद करने की क्रिया वार वार होती है, इस लिए संस्कृत में कहेंगे सः स्मारं स्मारं प्रणमति शिवम्, अथवा सः स्मृत्वा स्मृत्वा प्रणमति शिवम्। याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व होती है। इसी प्रकार:—

पी पीकर	अर्थात् वार वार—	पायं पायं	अथवा पीत्वा पीत्वा	—पा
खा खाकर	,, ,,	भोजं भोजं	भुक्त्वा भुक्त्वा	—भुज्
जा जाकर	,, ,,	गामं गामं	गत्वा गत्वा	—गम्
जग जगकर	,, ,,	जागरं जागरं	जागरित्वा जागरित्वा	—जागृ
पा पाकर	,, ,,	लाभं लाभं	लब्ध्वा लब्ध्वा	—लभ्
सुन सुनकर	,, ,,	श्रावं श्रावं	श्रुत्वा श्रुत्वा	—श्रु

णमुल् प्रत्यय का 'अम्' धातु में जोड़ा जाता है, यदि इसके पूर्व धातु का—आ आवे तो बीच में य् और आजाता है; जैसे—दा+अम्=दायं दायं, पायं पायं, स्नायं स्नायं, प्रत्यय में ण् होने के कारण पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है—जैसे स्मृ अम्=स्मारम्, श्रु+अम्=श्रौ+अम्=श्राव्+अम्=श्रावम् इत्यादि। णमुलन्त शब्द के रूप नहीं चलते। वह अव्यय है।

बहुत से[1] स्थलों में णमुल् से वार वार क्रिया होने का बोध नहीं भी होता है, ऐसे स्थलों में णमुलन्त शब्द दो बार नहीं रक्खा जाता, जैसे—कन्यादर्शं वरयति—जिस कन्या को देखता है उसी से व्याह कर लेता है।

[1] वर्णेरि दर्शिविदो साकल्ये। ३। ४। २९।

यहाँ सभी कन्याओं से ब्याह कर लेता है यह अर्थ है। अन्यथा,[1] एवं, कथं, इत्थ शब्द जब कृ धातु के पूर्व आवें और कृ धातु का अर्थ वाक्य में आवे तो भी णमुल् का प्रयोग होता है, जैसे अन्यथाकारं ब्रूते—वह दूसरी ही तरह बोलता है, यहाँ कृ का कुछ अर्थ न निकला, वह बेकार है। इसी प्रकार एवङ्कारं—इस तरह; कथङ्कारं—किसी तरह, इत्थङ्कारं – इस तरह।

णमुलन्त शब्द प्राय समास के अन्त में आने पर बार बार के भाव को नहीं सूचित करता, जैसे—सा वन्दिग्राहं गृहीता—वह कैदी करके पकड़ ली गई, अर्थात् कैद कर ली गई, समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः—मानी पुरुष शत्रुओं को जड़ से उखाड़े बिना उन्नति नहीं करते।

१८७–कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

(क) किसी भी धातु[2] के अनन्तर ण्वुल् (वु=अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय धातु से सूचित कार्य्य के करने वाले (Agent) के अर्थ में लगाए जाते हैं। जैसे—कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ 'करना' अब 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ+ण्वुल्=कृ+अक='कारक' शब्द हुआ और कृ+तृच्=कृ+तृ=कर्तृ शब्द हुआ। कारक, कर्तृ=करनेवाला, इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठितृ, दा से दायक, दातृ, पच से पाचक, पक्तृ, हृ से

१ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्। ३। ४। २७।

२ ण्वुल्तृचौ। ३। १। १३३। तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायां। ३। ३। १०।

हारक, हर्तृ, इत्यादि। ण्वुल् के पूर्व धातु में वृद्धि तथा तृच् के पूर्व धातु में गुण भाव होता है, यह ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है।

नोट—ण्वुल् प्रत्यय तुमुन् (१=४) की तरह क्रियार्थ भी प्रयोग में आता है; जैसे—कृष्णं दर्शको याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

(ख) नन्दि[1] आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि इनके णिजन्त रूप से) धातुओं के अनन्तर ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी—ये इस प्रकार बने मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर णिनि (इन्); तथा पच् आदि (पचः, वचः वदः, चलः, पतः, जरः मरः, क्षमः, सेवः, व्रणः, दर्शः, सर्पः, आदि मुख्य शब्द इस गण के हैं) धातुओं के अनन्तर अच् (अ) लगाकर कर्तृवाचक शब्द बनाए जाते हैं, जैसे—नन्द् + ल्यु = नन्दनः (नन्दयतीति नन्दनः) इसी प्रकार वाशनः, मदनः, दूषणः, साधनः, वर्धनः, शोभनः, रोचनः। गृह्णातीति ग्राही (ग्रह + इन् = ग्राहिन्) पच् + अच् (अ) = पचः (पचतीति पचः)।

(ग) ऐसी[2] धातुएँ जिनकी उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में से कोई स्वर हो उनके अनन्तर तथा ज्ञा (जानना), प्री (प्रसन्न करना) और कॄ (बखेरना) के अनन्तर कर्तृवाचक क (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—क्षिप् + क = क्षिपः (क्षिपतीति क्षिपः—फेंकनेवाला), इसी प्रकार

---

१ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। ३। १। १३४।

२ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। ३। १। १३५।

लिखः (लिखनेवाले), बुध (समझनेवाला), कृशः (दुबला), ज्ञः (जाननेवाला), प्रियः (प्रसन्न करनेवाला), किरः (बखेरनेवाला)।

आकारान्त[1] धातु के (तथा ए, ऐ, ओ, औ मे अंत होनेवाली जो धातु आकारान्त हो जाती है उसके) पूर्व यदि उपसर्ग हो तब भी 'क' प्रत्यय लगता है; जैसे—पजानातीति प्रज्ञ. (प्रज्ञा+क); आह्वयतीति आह्वः (आह्वे+क)

(घ) यदि[2] कर्म के योग में धातु आवे तो कर्तृवाचक अण् (अ) प्रत्यय होता है ; जैसे कुम्भ करोतीति—कुम्भकार (कुम्भ+कृ+अण्); भारं हरतीति भारहारः (भार+हृ+अण्) । अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है ।

नोट—कर्म के योग मे अण् प्रत्यय क्रियार्थ तुमुन् की तरह प्रयोग में आता है, जैसे—कम्बलदायो याति—कम्बल देने के लिए जाता है ।

परन्तु[3] यदि धातु आकारान्त हो और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न हो तो कर्म के योग में उस धातु के अनन्तर क (अ) प्रत्यय लगेगा, अण् नही, जैसे—गां ददातीति गोदः (गो+दा+क); किन्तु गाः सन्ददातीति—गोसन्दायः (गो+सम्+दा+अण्) ।

इसके[4] अतिरिक्त मूलविभुज, नखमुच, काकग्रह, कुमुद, महीध्र, कुध्र गिरिध्र आदि कुछ शब्दों के अनन्तर भी क प्रत्यय इसी अर्थ में लगता है ।

---

१ आतश्चोपसर्गे । ३ । १ । १३६ ।

२. कर्मण्यण् । ३ । २ । १ । अण् कर्मणि च । ३ । ३ । १२ ।

३ आतोऽनुपसर्गे कः । ३ । २ । ३ ।

४ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् । वा० ।

[1] कर्म के योग में अर्ह धातु के अनन्तर अच् (अ) प्रत्यय लगता है; जैसे—पूजामर्हतीति पूजार्हः ब्राह्मणः (पूजा + अर्ह + अच्) ।

[2] चर् के पूर्व यदि अधिकरण का योग हो और धातु से कर्तृवाचक शब्द बनाना हो तो ट (अ) प्रत्यय लगाते हैः जैसे—कुरुषु चरतीति—कुरुचर (कुरु + चर् + ट) ।

[3] अथवा यदि चर् के पूर्व भिक्षा, सेना, आदाय इन शब्दों में से किसी का योग हो तब भी ट प्रत्यय लगेगा, भिक्षां चरतीति, भिक्षाचरः (भिक्षा + चर् + ट), सेना चरति प्रविशतीति, सेनाचरः, आदाय – गृहीत्वा चरति गच्छतीति, आदायचरः ।

(ट) कृ[4] धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो किन्तु धातु से हेतु, आदत (ताच्छील्य) अथवा अनुलोम्य (अनुकूलता) का बोध हो, तो अण् (कर्मण्यण) प्रत्यय न लगकर ट प्रत्यय लगता है, जैसे—यशः करोतीति यशस्करी विद्या—यश पैदा करनेवाली विद्या; यहाँ विद्या यश की हेतु है, इस लिए ट प्रत्यय हुआ, श्राद्धं करोतीति श्राद्धकरः (श्राद्ध करने की आदत वाला), वचनं करोतीति वचनकरः (वचनानुकूल कार्य करने वाला) ।

---

१ अर्हः । ३ । २ । १२ ।

२ चरेष्टः । ३ । २ । १६ ।

३ भिक्षासेनादायेषु च । ३ । २ । १७ ।

४ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु । ३ । २ । २० ।

[1] यदि कृ धातु के पूर्व दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, लिवि, बलि, भक्ति कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या, संख्यावाचक शब्द, जङ्घा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, धनुर् (धनुष्) अरुष् शब्द कर्म रूप में आवे तो ट प्रत्यय लगता है, अण् नहीं। दिवाकरः, विभाकरः, निशाकरः, इत्यादि।

(च) [2] एज् धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो तो खश् (अ) प्रत्यय लगता है; जैसे—जनम् एजयतीति (जन+एज्+खश्)।

[3] अरुष्, द्विषत् तथा अकारान्त (यदि अव्यय न हों) शब्दों के अनन्तर यदि ख में अन्त होने वाला शब्द आवे तो बीच में एक म् आ जाता है; जैसे—जन शब्द अकारान्त है इसके अनन्तर एजयः शब्द आया जिसमें खश् प्रत्यय लगा है इसलिए खिदन्त है, अतः बीच में म् आवेगा—जन+म्+एजयः=जनमेजयः।

(छ) [4] वद् धातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्म रूप में आवें तो वद् धातु में खच् (अ) प्रत्यय लगता है,—प्रियं वदतीति प्रियंवदः (प्रिय+म्+वद्+खच्), वशंवदः (वश+म्+वद+खच्)।

---

१ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ३ । २ । २१ ।

२ एजेः खश् । ३ । २ । २८ ।

३ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ ।

४ प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ ।

(ञ) भृ[1], तृ, वृ, जि, धृ, सह्, तप्, दम् धातुओ के योग मे तथा गम् धातु के योग में यदि कर्मरूप कोई शब्द आवे, और पूरा शब्द किसी का नाम हो तो खच् (अ) प्रत्यय लगता है; जैसे—विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (विश्व+म्+भृ+खच्+टाप्)—पृथ्वी का नाम, रथं तरतीति रथन्तरम् (रथ+म्+तृ+खच्)—साम का नाम; पतिं वरतीति पतिंवरा—कन्या का नाम शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जयः—एक हाथी का नाम; युगन्धरः—पर्वत का नाम, शत्रुसहः—राजा का नाम, परन्तपः—राजा का नाम; अरिन्दम.—राजा का नाम। सुतङ्गमः।

(झ)[2] दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद्, तद्, यद् एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य, समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके अनन्तर कञ् (अ) प्रत्यय लगता है जैसे—तद्+दृश्+कञ्=तादृशः (वैसा); त्यादृशः, यादृशः, एतादृशः, सदृशः, अन्यादृशः।

इसी अर्थ में क्विन् प्रत्यय तथा क्स भी लगते हैं। क्विन् का लोप हो जाता है, धातु में कुछ नहीं जुड़ता, क्स का स जुड़ता है; जैसे—तादृश् (तद्+दृश्+क्विन्), तादृक्ष (तद्+दृश्+क्स), अन्यादृश् (अन्य+दृश्+क्विन्), अन्यादृक्ष (अन्य+दृश्+क्स) इत्यादि।

---

[1] संज्ञायाम्भृतृवृजिधारिसहितपिदमः। ३। २। ४६।

[2] त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च। ३। २। ६०। समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्। वा०। क्सोऽपि वाच्य.। वा०।

सम्पादन इन तीन में से किसी भी बात का भाव लाने के लिए तृन् (तृ) प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—कृ+तृन्=कर्तृ—कर्ता कटम्—जो चटाई बनाया करता है, अथवा जिसका धर्म चटाई बनाना है, अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है ये तीनो अर्थ इससे सूचित हो सकते है।

(ख)[1] अलङ्कृ, निराकृ, प्रजन्, उत्पच्, उत्पत्, उन्मद् रुच्, अपत्रप्, वृत्, वृध्, सह्, चर् इन धातुओं के अनन्तर इसी अर्थ में इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय लगता है। अलङ्करिष्णुः (अलङ्कृत करने वाला), निराकरिष्णु (अपमान करने वाला), प्रजनिष्णु (पैदा करने वाला), उत्पचिष्णुः (पकाने वाल); उत्पतिष्णुः (ऊपर उठने वाला), उन्मदिष्णुः (उन्मत्त होने वाला); रोचिष्णु. (अच्छा लगने वाला); अपत्रपिष्णु. (लज्जा करने वाला ; वर्तिष्णु· (विद्यमान रहने वला), वर्धिष्णुः (बढ़ने वाला), सहिष्णुः (सहनशील), चरिष्णु. (भ्रमणशील)।

(ग)[2] शील, धर्म तथा भलीप्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने के लिए निन्द्, हिंस्, क्लिश्, खाद्, विनाश्, परिक्षिप्, परिरट्, परिवद्, व्ये, भाष्, असूय् इन धातुओ के अनन्तर वुञ् (अक) प्रत्यय लगता है। निन्दक हिंसक, क्लेशक, खादकः, विनाशक, परिक्षेपक, परिरटकः, परिवादकः, व्यायकः, भाषकः, असूयक· ।

---

१ अलङ्कृञ् निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप वृतुवृधुसहचरइष्णुच् ।३।२।१३६।

२ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयोवुञ् ।३ ।२।१४६।

(घ) चलना, शब्द करना, अर्थवाली अकर्मक धातुओं के अनन्तर[1] । क्रोध करना, आभूषित करना इन अर्थों वाली धातुओं के अनन्तर शील दि अर्थ में युच् (अन) प्रत्यय लगता है । चलितु शीलमस्य सः चलनः चल्+युच्), कम्पनः, शब्दं कर्त्तुं शीलमस्य सः शब्दनः । खगः पठिता ाम् यहाँ सकर्मक धातु होने के कारण युच् न लगकर साधारण तृन् लगा) धनः, रोषणः, मण्डनः, भूषण । ये सब मनुष्यवाचक शब्द हैं ।

(ट) जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट् (अलग करना काटना,) लुण्ट् (लूटना)[2] ौर वृ (चाहना) इनके अनन्तर शील, धर्म और साधुकारिताद्योतक ाकन् (आक) प्रत्यय लगता है । जल्पाकः (बहुत बोलने वाला), भिक्षाक (भिखारी), कुट्टाक (काटने वाला), लुण्टाकः (लूटने वाला), वराकः (बेचारा) ।

(ध) स्पृह्, गृह्, पत्, दय्, शी धातुओं के अनन्तर तथा निद्रा,[3] तन्द्रा, श्रद्धा के अनन्तर आलुच् (आलु) जोड़ा जाता है—स्पृहयालु, गृहयालु, पतयालु, दयालु, शयालुः, निद्रालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः ।

---

१ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् । ३ । २ । १४८ । क्रुधमण्डनार्थेभ्यश्च । ३ । २ । १५१ ।

२ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् । ३ । २ । १५५ ।

३ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् । ३ । २ । १५८ । शीङो वाच्य । वा० ।

(छ)[1] सन्नन्त (इच्छावाची) धातुओं तथा आशंस् और भिक्ष् के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है; जैसे—कर्तुमिच्छति चिकीर्षुः, आशंसुः, भिक्षुः।

(ज)[2] भ्राज्, भास्, धुर्, विद्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु, ग्रावस्तु—इन धातुओं के अनन्तर तथा औरों के भी अनन्तर क्विप् प्रत्यय होता है; जैसे—विभ्राट्, भाः, धूः, विद्युत्, ऊर्क्, पूः, जूः, ग्रावस्तुत्, छित्, भित्, श्रीः, धीः, प्रतिभू इत्यादि।

भावार्थ कृत् प्रत्यय

(क)[3] भाव का अर्थ जतलाने के लिए धातु के अनन्तर घञ् (अ) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जब कोई बात सिद्ध हो जाय, पूरी हो जाय तब भाव कहलाता है, जैसे—पाकः—पकजाना (पच् + घञ्)। लाभः, कामः।

[यदि[4] कोई ञ अथवा ण वाला प्रत्यय लगाना हो तो धातु की उपधा का अ वृद्ध हो जाता है। घ[5] वाले तथा ण्य वाले प्रत्यय के पूर्व च् ज् का क् ग् हो जाता है]

१ सनाशंसभिक्ष उः। ३। २। १६८।

२ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्। ३।२।१७७। अन्येभ्योऽपि दृश्यते। ३। २। १७८।

३ भावे। ३। ३। १८।

४ अत उपधायाः। ७। २। ११५।

५. चजोः कु घिण्ण्यतोः। ७। ३। ५२।

(ख) इकारान्त[1] धातुओ में अच (अ) जोड़ा जाता है; जैसे—जि+अच्=जयः, चयः, नयः, भि+अच्=भयम्।

(ग) ऋकारान्त[2] और उकारान्त धातुओ में अप् लगता है; जैसे कॄ+अच्=करः,—बखेरना। गरः—विष। शरः। यु+अप्=यवः—जोड़ना। लवः—काटना। स्तवः। पवः—पवित्र करना। इसके अतिरिक्त[3] ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम्, वश, रण् में भी अप् लगता है, ग्रहः, वरः, दरः, निश्चयः, गमः, वशः, रणः।

(घ) यज्[4], याच्, यत, विच्छ् (चमकना) प्रच्छ्, रक्ष् इनमें भावार्थक नङ् (न) प्रत्यय लगता है, यज्ञः, याच्ञा, यत्नः, विश्नः, प्रश्न, रक्ष्णः।

उपसर्गसहित[5] घुसञ्ज्ञक धातुओं (दा, दो—खंडन करना, दे—प्रत्यर्पण करना, रक्षा करना, धा—धारण करना, धे—पीना) के अनन्तर भावार्थ कि (इ) होता है। प्रधिः (प्रधा+कि—आतो लोप इटि च। ६। ४। ६४। से आकार का लोप हुआ), अन्तर्धिः। अधिकरणवाचक

---

१ एरच्। ३। ३। ५६।

२ ऋदोरप्। ३। ३। ५७।

३ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। ३। ३। ५८। वशिरण्योरुपसंख्यानम्। वा०।

४ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्। ३। ३। ९०।

५ उपसर्गे घोः किः। कर्मण्यधिकरणे च। ३। ३। ९२-९३।

शब्द बनाना हो तो भी धु धातुओं से, कर्म के योग में कि प्रत्यय लगता है, जैसे—जलधिः, नीरधिः (जलानि धीयन्ते अस्मिन्निति)।

(ङ) स्त्रीलिङ्ग[1] भाववाचक शब्द धातुओं में क्तिन् (ति) जोड़कर बनाए जाते हैं। कृतिः, धृतिः, मतिः, स्तुतिः, चिति.। ऋकारान्त[2] धातुओं तथा लू आदि धातुओं के अनन्तर ति जोड़ने पर जो विकार निष्ठा प्रत्यय जोड़ने में होता है वही होता है। कॄ+ति=कीर्णिः, गीर्णिः, लूनिः, धूनिः इत्यादि।

(च) सम्पद्[3], विपद्, आपद्, प्रतिपद्, परिपद् इन में क्विप् और क्तिन् दोनों भावार्थ प्रत्यय लगाए जाते हैं, सम्पत्, विपत् आपत्, प्रतिपत्, परिपत्, सम्पत्तिः, विपत्तिः, आपत्तिः, प्रतिपत्तिः, परिपत्तिः।

(छ) ऐसी[4] धातुएँ जिनमें कोई प्रत्यय पहले से ही लगा हो (जैसे सन्नन्त, यङन्त आदि) उनसे स्त्रीलिङ्ग के भाववाचक शब्द बनाने के लिए अ प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे—कृ से सन् लगाकर चिकीर्ष् धातु, उससे भाववाचक अ प्रत्यय जोड़ा तो चिकीर्ष शब्द बना, फिर स्त्रीलिङ्ग का टाप् (आ) प्रत्यय लगाकर चिकीर्षा (करने की इच्छा) बना, इसी प्रकार जिगमिषा, बुभुक्षा, पिपासा, पुत्रकाम्या आदि।

---

१ स्त्रियां क्तिन् ३ । ३ । ९४ ।

२ ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः । वा० ।

३ सम्पदादिभ्यः क्विप् । वा० । क्तिन्नपीष्यते । वा० ।

४ अ प्रत्ययात् । ३ । ३ । १०२ ।

यदि[1] धातु हलन्त हो किन्तु उसमे कोई गुरु अक्षर (संयुक्त व्यञ्जन अथवा दीर्घ स्वर) हो तब भी क्तिन् न लगाकर अ लगता है, जैसे ईह्— ईहा, ऊहा।

(ज) चिन्त्[2], पूज्, कथ्, कुम्ब्, चर्च् धातुओं में तथा उपसर्ग सहित आकारान्त धातुओं में अङ् प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनते हैं, चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा, श्रद्धा, अन्तर्धा।

(झ) णिजन्त[3] (प्रेरणार्थक) धातुओं में तथा आस्, श्रन्थ्, घट्ट्, वन्द्, विद् से भावार्थ स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय युच् (अन) लगता है; जैसे— कारणा (कृ+णिच्+युच्+टाप्), इसी प्रकार हारणा, दारणा, आस्+युच्+टाप्=आसना, श्रन्थना, घटना, वन्दना, वेदना।

(ञ) नपुंसकलिङ्ग[4] भाववाचक शब्द बनाने के लिए कृत् प्रत्यय (निष्ठा वाला) अथवा ल्युट् (यु) धातुओं में लगाया जाता है; जैसे—हसितम्, हसनम्, गतम्, गमनम्; कृतं, करणं; हृतम्, हरणम्; इत्यादि।

---

१ गुरोश्च हलः। ३। ३। १०३।

२ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च। ३। ३। १०५। आतश्चोपसर्गे। ३। ३। १०६।

३ ण्यासश्रन्थो युच्। ३। ३। १०७। घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम्। वा०।

४ नपुंसके भावे क्तः। ल्युट् च। ३। ३। ११४—११५।

(ट) पुंलिङ्ग[1] नाम शब्द बनाने के लिए प्रायः धातुओं में घ प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—आकृ+घ=आकरः (खान), आखनः (फावड़ा), आपणः (बाज़ार), निकषः (कसौटी), गोचरः (चरागाह), सञ्चरः, वहः, निगमः आदि। परन्तु[2] हलन्त धातुओं में प्रायः घञ् लगता है, घ नहीं, जैसे—रामः ; अपामार्गः (एक ओषधि का नाम)।

खलर्थ कृत् प्रत्यय

१९०–(क) कठिन[3] (इसलिए दुःखात्मक) और सरल (अत एव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के अनन्तर खल् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है। यह भाव दिखाने के लिए सु और ईषत् शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दुःखार्थ) धातु के पूर्व जुडे रहते है, जैसे—सुखेन कर्तुं योग्यः—सुकरः (सुकृ+खल्); सुकरः कटो भवता—चटाई आप से आसानी से बन सकती है, ईषत्करः, ईषत्करः कटो भवता—चटाई आप से ज़रा में ही (अनायास ही) बन सकती है। दुःखेन कर्तुं योग्यः—दुष्कर (दुष्कृ+खल्), दुष्करः कटो भवता—चटाई आप से मुश्किल से (दुःख से) बन सकती है। इसी प्रकार दुःशासनः, दुर्योधनः,

---

१ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। ३। ३। ११८।

२ हलश्च। ३। ३। १२१।

३ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्। ३। ३। १२६।

दुर्वहः, सुवहः, ईषद्वहः इत्यादि, तथा स्त्रीलिङ्ग दुष्करा; दुर्वहा, नपुं० दुष्करं, दुर्वहं आदि रूप होते है।

(ख) आकारान्त[1] धातुओं के अनन्तर खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय होता है खल् नहीं. जैसे—सुखेन पातुं योग्यः सुपानः, ईषत्पानः; इसी प्रकार दुष्पानः।

(ग) खल्[2] और खलर्थ प्रत्यय कर्म की सूचना देते हैं, कर्ता की नहीं इस लिए कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नहीं।

उणादि प्रत्यय

१९१—कृत् प्रत्ययो के दो भेदों (कृत्य और कृत्) का व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है। बाकी रहे उणादि। उणादि[3] का अर्थ है उण् आदि प्रत्यय। अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला प्रत्यय उण् है। ये प्रत्यय बड़े टेढे हैं और बड़ी जोड़ तोड़ से धातुओं में शब्द बनाने के लिए लगाए जाते हैं, इनका[4] प्रयोग भी बहुल है—कभी किसी अर्थ में, कभी किसी अर्थ मे। महर्षि पाणिनि ने इनके द्वारा संस्कृत के शेष ऐसे शब्दो की सिद्धि की है जो और किसी वर्ग के प्रत्ययो से सिद्ध नहीं होते। उदाहरणार्थ—करोतीति कारु—शिल्पी कारकश्च (कृ+उण्),

१ आतो युच्। ३। ३। १२८।

२ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः। ३। ४। ७०।

३ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्।

४ उणादयो बहुलम्। ३। ३। १।

पस्यम् (पृ+उपच्),[1] नहुषः, (नह्+उपच्), कलुषम् (कल्+उपच्) इत्यादि।

द्वादश सोपान

लिङ्ग विचार

१९२—हिन्दी में दो लिङ्ग होते हैः—स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग, और सारे पदार्थवाचक शब्द चाहे चेतन हो अथवा अचेतन इन्हीं दो लिङ्गो में विभक्त होते है। जैसे—लड़की जाती है, गाड़ी आती है; आदमी आया, रथ चला आदि। संस्कृत में इन दो लिङ्गो के अतिरिक्त एक और होता है, जिसे नपुंसकलिङ्ग कहते है। सारी संज्ञाएं इन्हीं तीन लिङ्गो में विभक्त हैं; कोई पुंलिङ्ग, कोई स्त्रीलिङ्ग और कोई नपुंसकलिङ्ग। एक ही वस्तु का वोध कराने वाला कोई शब्द पुंलिङ्ग में है तो कोई स्त्रीलिङ्ग में अथवा नपुंसकलिङ्ग में, जैसे—तनुः (स्त्री०), देहः (पुं०) और शरीरम् (नपुं०) सभी शरीरवाची है। दाराः शब्द पुंलिङ्ग में होते हुए भी स्त्री का अर्थ वताता है; देवता शब्द स्त्री लिङ्ग में होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ वताता है। इस प्रकार यह विदित है कि संस्कृत भाषा में लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नहीं है, यदि सारे अचेतन पदार्थवाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते, पुरुष वाची शब्द पुंलिङ्ग में और स्त्रीवाची स्त्रीलिङ्ग में तो कहा जा

---

[1] पृनहिकलिभ्य उपच्।

सकता कि लिङ्ग प्रकृति के क्रम से है। परन्तु बात इससे उलटी है। इसी कारण संस्कृत की संज्ञाओं का लिङ्ग जानना बड़ा कठिन है। उसका ज्ञान कोषों से तथा काव्यग्रन्थों के अध्ययन से जाना जाता है।

व्याकरण के कुछ मोटे मोटे नियम हैं उन से भी कुछ सहायता मिल सकती है।

१९३—स्त्रीलिङ्ग शब्द

(क)[१] अनि, ऊ, मि, नि, क्तिन् (ति) और ई प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। क्रम से उदाहरण—अवनिः, चमूः, भूमिः, ग्लानिः, कृतिः और लक्ष्मीः। परन्तु वह्नि, वृष्णि, अग्नि पुंलिङ्ग में होते हैं तथा अशनि, भरणि, अरणि, श्रोणि, योनि और ऊर्मि पुंलिङ्ग और स्त्री लिङ्ग दोनों में होते हैं।

(ख)[२] टाप् प्रत्यय में अन्त होने वाले सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं; जैसे—विद्या, अजा, कन्या आदि।

(ग)[३] एकाक्षर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं; जैसे श्रीः, भूः आदि। एकाक्षर न होने से पुंलिङ्ग भी हो सकते हैं; जैसे—पृथुश्रीः, प्रतिभूः आदि।

---

१ अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः। अशनिभरण्यरणयः पुंसि च। मिन्यन्तः। वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि। श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि च। क्तिन्नन्तः। ईकारान्तश्च। लिङ्गानुशासनम् ४—८०

२ ऊङाबन्तश्च। लिङ्ग० ११। ३ यवन्तमेकाक्षरम्। लिङ्ग० १२।

(घ) तल्[1] प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे पवित्रता जनता आदि।

(ङ)[2] १९ (एकोनविंशतिः) से लेकर ९९ (नवनवतिः) तक के संख्यावाची सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं।

(च) भूमि[3], विद्युत्, सरित्, लता और वनिता इन शब्दों का अर्थ रखने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं; जैसे—पृथिवी, तडित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि।

(छ) ऋकारान्त[4] शब्दों में केवल मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पोतृ और ननान्दृ ही स्त्रीलिङ्ग के होते हैं।

१९४–पुंलिङ्ग शब्द

(क) भावार्थक[5] घञ्, भावार्थक अप्, तथा घ, अच् नङ्, आकारान्त (घुसंज्ञक) धातुओं के उपरान्त कि प्रत्यय, इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द पुलिङ्ग के होते हैं; उदाहरणार्थ—

---

१. तलन्तः। लि० १७।

२. विंशत्यादिरानवतेः। लि० १३।

३ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि। लि० १८।

४ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दरः। लि० ३।

५ घञबन्तः। घाजन्तश्च। भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके। नङन्त याच्ञा स्त्रियाम्। क्यन्तो घुः। लिङ्ग० ३६—४१।

घञन्त—पाक, त्यागः।

अबन्त—करः, गरः।

घान्त - विस्तरः, गोचर।

अजन्त—चयः, जयः [भय, लिङ्ग, भग, पद ये शब्द नपुं०लि० में होते हैं]

नङन्त—यज्ञः, यत्नः [याच्ञा स्त्रीलिङ्ग में]

क्यन्त—जलधिः, निधिः, आधिः।

(ख) न् [1] तथा उ में अन्त होने वाले शब्द प्रायः पुंलिङ्ग के होते हैं; जैसे—राजन् (राजा), तक्षन् (तक्षा), प्रभुः, इक्षुः। [कुछ नकारान्त शब्द चर्मन् आदि नपुंसक होते हैं। धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु ये उकारान्त स्त्रीलिङ्ग में, और श्मश्रु, जानु, वसु (धन), स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु दारु, कसेरु, वस्तु और मस्तु नपुंसक लिङ्ग में होते हैं]।

(ग) [2] ऐसे शब्द जिनकी उपधा में क्, ट, ण्, थ्, न्, प्, भ्, म्, य्, र्, ष्, स् में से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हों तो प्रायः पुलिङ्ग होते हैं, जैसे–स्तबकः, कल्कः, घटः, पटः; गुणः, गणः, पाषाणः, रथः; [किन्तु काष्ठ,

---

1 नान्तः। लि० ४८ उकारान्तः। लि० ५१।

2 कोपधः। ६१। टोपधः। ६४। णोपधः। ६७। थोपधः। ७०। नोपधः। ७४। पोपधः। ७७। भोपधः। ८०। मोपधः। ८३। योपधः। ८९। रोपधः। ८१। षोपधः। ९६। सोपधः। ९९।

पृष्ठ, सिक्थ, उक्थ नपुंसक होते हैं ;] इन', फेनः [जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न, चिह्न नपुंसक में होते हैं]; यूप , दीपः [पाप, रूप उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप नपुंसक में]; स्तम्भः, कुम्भः, सोमः, भीमः; समयः; हयः [किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुंसक में]; क्षुरः, अङ्कुरः [द्वार आदि बहुत से शब्द नपुंसक लिङ्ग के होते हैं]; वृषः, वृक्षः; वत्सः, वायसः, महानसः ।

(घ) देव[1], असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर, पङ्क, क्रतु, पुरुष, कपोल गुल्फ मेघ, रश्मि, दिवस— ये शब्द तथा इनका अर्थ बतानेवाले शब्द प्रायः पुंलिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—देव —सुरः; असुरः—दैत्य , आत्मा—क्षेत्रज्ञ , स्वर्गो—नाकः, गिरिः—पर्वतः, समुद्रो—अब्धिः, नख.—कररुहः, केशाः—शिरोरुहाः, दन्तः —दशन., स्तनः—कुचः, भुजः—दोः, कण्ठः—गलः, खड्गः—असिः, शरः बाणः, पङ्कः—कर्दमः, क्रतु —अध्वरः, पुरुषः—नरः, कपोलः—गण्डः. गुल्फः—प्रपद , मेघ —नीरदः , रश्मिः—मयूख , दिवसः—घस्रः (दिन और अहन् नपुंसक में होते हैं) ।

(ङ) दार[2], अक्षत, लाज, असु ये पुंलिङ्ग में तथा सदा बहुवचन में होते हैं—दाराः, अक्षताः, लाजाः, असवः ।

---

१. देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्काभिधानानि ।४३। क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि । ४१ । रश्मिदिवसाभिधानानि ।१००। २ दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वञ्च । १०६ ।

१९५—नपुंसकलिङ्ग शब्द

(क) [१] भावार्थक ल्युट्, भावार्थक क्त तथा भावार्थ और कर्मार्थ ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ्, छ इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। उदाहरणार्थ—

ल्युट्—हसनम् (यदि ल्युट् भावार्थ में न होगा तो नपुं० नहीं होगा, पचनः—पकाने वाला),

क्त—गतम्, यातम्,

त्व—शुक्लत्वम्,

ष्यञ्—चातुर्यम्, ब्राह्मण्यम्, यत्—स्तेयम्, य—सख्यम्, ढक्—कापेयम्, यक्—आधिपत्यम्, अञ्—औष्ट्रम्, अण्—द्वैहायनम्, वुञ्—पैतापुत्रकम्, छः—अच्छावाकीयम्।

(ख) [२] अव्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सर्वदा तथा द्विगु विकल्प से नपुंसकलिङ्ग में होते हैं; जैसे—अधिस्त्रि, पाणिपादम्, त्रिभुवनम्।

(ग)—[३] इस्, उस् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, जैसे—हवि, धनु।

---

१ भावे ल्युडन्तः। ११९। निष्ठा च।१२०। त्वष्यञौ तद्धितौ।१२१। कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः। १२२। यद्यड्ढग्यगञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि। १२३।

२ अव्ययीभावः। द्वन्द्वैकत्वम्। १२४। द्विगुः स्त्रियां च। १३३।

३ इसुसन्तः। १६४।

(घ)—मन्[1] में अन्त होनेवाला शब्द यदि दो स्वरों वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुंसक होगा ; जैसे—चर्म, वर्म; किन्तु अणिमा ; क्योंकि यह दो स्वरों वाला नहीं; दामा (देने वाला) क्योंकि यह कर्तृवाचक है ।

(ङ) असू[2] में अन्त होने वाले दो स्वरों वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं ; मनः, यशः, तपः आदि ।

(च)—त्र[3] में अन्त होनेवाले शब्द प्रायः नपुंसक होते हैं ; छत्रम्, पत्रम् आदि; किन्तु यात्रा, मात्रा भस्त्रा, दंष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग के हैं ।

(छ) जिन[4] शब्दों की उपधा में ल हो वे प्रायः नपुंसक होते हैं, कुलम् स्थलम्, कूलम् ।

(ज) शत[5] से आरम्भ करके ऊपर की संख्या नपुंसक होती हैं, केवल शत, प्रयुत, अयुत पुंलिङ्ग में भी होते हैं, लक्षा और कोटि स्त्रीलिङ्ग में तथा शङ्कुः पुंलिङ्ग में होते हैं ।

---

१ मन् द्व्यच्कोऽकर्तरि । १४८ ।

२ असन्तो द्व्यच्क. । १५१ ।

३ त्रान्तः । १५३ ।

४ लोपध. । १४१ ।

५ शतादि. संख्या । शतायुतप्रयुताः पुंसि च । लक्षाकोटिः स्त्रियाम् । शङ्कुः पुंसि । १४४-४७ ।

(क)[1] मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः नपुंसक होते हैं। मुखम्—आननम्, नयनम्—नेत्रम्, लोहम्—कालम्, वनम्—गहनम्, मांसम्—आमिषम्, रुधिरम्—रक्तम्, कार्मुकम्—शरासनम्, विवरम्—बिलम्, जलम्—वारि, हलम्—लाङ्गलम्, धनम्—द्रविणम्, अन्नम्—अशनम्, बलम्—वीर्यम्, कुसुमम्—पुष्पम्, शुल्वम्—ताम्रम्, पत्तनम्—नगरम्, रणम्—युद्धम्।

(ख)[2] फलों की जाति बताने वाले शब्द नपुंसक होते हैं, आम्रम्, आमलकम्।

स्त्री-प्रत्यय

१९६–कुछ संज्ञाएँ ऐसी होती हैं जिनके जोड़े के शब्द होते हैं–एक पुरुष और एक स्त्री। इस प्रकार की पुंलिङ्ग संज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार संज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें स्त्रीप्रत्यय कहते हैं, जैसे—अज से टाप् लगाकर अजा स्त्रीलिङ्ग का शब्द बना। इस प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए बहुधा नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते हैं।

---

1 मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि । १२६ । बलकुसुमशुल्वपत्तनरणाभिधानानि । १२७ ।

2 फलजाति । १६१ ।

१९७–टाप्

नोट—टाप् प्रत्यय के ट और प् का लोप होकर केवल आ शेष रह जाता है, वह आ पुल्लिङ्ग शब्द में जोड़ा जाता है।

(क) अजा आदि[1] [अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, होडा, पाकी, वत्सा, मन्दा, विलाता, पूर्वापिहाणा, अपरापहाणा, कुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, दंष्ट्रा] शब्दों में तथा अकारान्त शब्दों में स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय लगता है , जैसे—अज + आ = अजा, एडक + आ = एडका; अश्व + आ = अश्वा, बाल + आ = बाला, उष्णिह् + आ = उष्णिहा, देव विश् + आ = देवविशा । भुञ्जान + आ = भुञ्जाना, गङ्ग + आ = गङ्गा इत्यादि।

(ख) टाप् के जोडने के पूर्व यदि शब्द में क अन्त में आवे और उसके पूर्व अ हो तो अ के स्थान में इ हो जाती है[2]। परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब क किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व सुप् प्रत्ययों में से कोई न लगे हों, जैसे—मूषक + टाप् (आ) = मूषिक + आ = मूषिका ; कारक + टाप् (आ) = कारिक + आ = कारिका; सर्वक + टाप् = सर्वक + आ = सर्विक + आ = सर्विका; मामक + टाप् = मामक + आ = मामिक + आ = मामिका, दाक्षिणात्यिका, पाश्चात्यिका । यदि क किसी प्रत्यय का न होगा तो यह नियम नहीं लगेगा, जैसे—शङ्क + आ = शङ्का । यहाँ 'क' धातु का है किसी प्रत्यय का नहीं ।

---

१ अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।

२ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ।७।३।४४॥

१९८—ङीप्

(क) ऋकारान्त[1] और नकारान्त पुलिङ्ग शब्दो के अनन्तर ङीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाया जाता है ; जैसे —कर्तृ—कर्त्री, दण्डिन्—दण्डिनी, राज्ञी, शुनी।

नोट—ङीप् की ई जुड़ने के पूर्व प्रातिपदिक में नीचे लिखे अनुसार हेर फेर कर लिया जाता है।

व्यञ्जनान्त शब्द का वह रूप ले कर जो तृतीया के एकवचन में होता है, उसका अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है और शतृ, स्यतृ प्रत्ययान्त शब्दों में त के पूर्व न् जोड़ दिया जाता है ; जैसे—(राजन् का तृ० ए० व० राज्ञा है इसका आ गिराकर राज्ञ्—हुआ, इससे ई जोड़ कर राज्ञी बना, इसी प्रकार शुनी आदि , पचता से पचत्+ई=पचन्ती)। स्वरान्त शब्दों का अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है (गौर+गौर्+ई=गौरी)।

(ख) नीचे[2] लिखे शब्दो के अनन्तर ङीप् लगाया जाता है:—कर में अन्त होने वाले—भोगकरः—भोगकरी।

नद, चोर, देव, ग्राह, गर, प्लव—नदी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, प्लवी।

ट, अण्, अञ्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, और क्वरप् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द—औपगः=औपगी, कुम्भकारः=कुम्भकारी, यादृशः=यादृशी, द्वितय=द्वितयी, आक्षिक=आक्षिकी, इत्वर=इत्वरी।

---

[1] ऋन्नेभ्यो ङीप्। ४।१।५।

[2] टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। ४।१।१५।

(ग) प्रथम[1] वयस् (अन्तिम अवस्था को छोड़कर) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर ङीप् लगता है; जैसे—कुमारः कुमारी, किशोरी वधूटी; किन्तु वृद्धा, स्थविरा ।

१९९–ङीष्

(क) षित्[2] शब्दों (नर्तक, खनक, रञ्जक, रजक आदि) तथा गौरादिगण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, बदर, उभय, भृङ्ग, अनडुह्, नट, मङ्गल, मण्डल, बृहत्, महत् ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर ङीष् (ई) जोड़ा जाता है; जैसे—नर्तकी, रजकी, गौरी आदि ।

—ई जुड़ने के पूर्व १९८ नोट में लिखे परिवर्तन शब्द में हो जाते हैं ।

(ख) पुंलिङ्ग[3] शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिए ङीष् जोड़ा जाता है, किन्तु—पालक शब्द में अन्त होनेवाले शब्दों के अनन्तर नहीं ; जैसे—गोपः गोपी, शूद्रः शूद्री , किन्तु गोपालकः से गोपालिका ।

इन्द्र[4], वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य इनके अनन्तर तथा

---

१ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० । वयस्य चरम इति वाच्यम् ।

२. षिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ।

३. पुंयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ । पालकान्तान्न । वा० ।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् । ४ । १ । ४९ । हिमारण्ययोर्महत्त्वे । यवाद्दोषे । यवनाल्लिप्याम् । वा० ।